

MAPH-108 (N)

समकालीन भारतीय दर्शन

खण्ड-01 विवेकानन्द

- इकाई-1 भक्ति योग
- इकाई-2 ज्ञान योग
- इकाई-3 राज योग

खण्ड-2 श्री अरविंद

- इकाई-4 विकासवाद
- इकाई-5 अतिमानस

खण्ड-3 जे० कृष्णमूर्ति

- इकाई-6 जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण
- इकाई-7 बुद्धि की सीमाएं

खण्ड-4 कृष्णचंद भट्टाचार्य

- इकाई-8 विषयिता का सिद्धान्त
- इकाई-9 स्वतंत्रता का क्रमिक अनुभूति

खण्ड-5 मानवेन्द्र नाथ राय

- इकाई-10 दर्शन का कार्य
- इकाई-11 नव मानववाद

खण्ड-6 पं. दीनदयाल उपाध्याय

- इकाई-12 एकात्ममानववाद
- इकाई-13 सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

खण्ड-7 बी.आर. अम्बेडकर

- इकाई-14 सामाजिक दर्शन
- इकाई-15 धार्मिक राजनैतिक चिन्तन

खण्ड-8 महात्मा गांधी

- इकाई-16 सत्य अहिंसा
- इकाई-17 सत्याग्रह
- इकाई-18 सर्वोदय

MAPH-108 (N)

समकालीन भारतीय दर्शन

खंड 01- विवेकानंद

खण्ड परिचय-

प्रस्तुत खण्ड में हम प्रथम इकाई में भक्ति योग पर विवेकानंद की व्याख्या , विवेकानंद के अनुसार भक्ति का सार , भक्ति योग में प्रेम की भूमिका , आत्म-साक्षात्कार का मार्ग के रूप में भक्ति विवेकानंद के भक्ति योग के प्रमुख सिद्धांत , सार्वभौमिक प्रेम और स्वीकृति ईश्वर के प्रति समर्पण, निस्वार्थ सेवा , ईश्वर के लिए तीव्र लालसा, विवेकानंद के भक्ति योग में अभ्यास , प्रार्थना और ध्यान , जप (भगवान के नाम का दोहराव) , कीर्तन (भक्ति गायन) , शास्त्रों का अध्ययन, भक्ति योग और अन्य योगिक मार्ग , ज्ञान योग के साथ संबंध , कर्म योग के साथ संबंध , राज योग के साथ संबंध आधुनिक संदर्भ में विवेकानंद का भक्ति योग , समकालीन समाज में प्रासंगिकता , दैनिक जीवन में अनुप्रयोग , भक्ति योग के माध्यम से आधुनिक चुनौतियों का समाधान विवेकानंद का भक्ति योग बनाम पारंपरिक भक्ति , विभिन्न धार्मिक परंपराओं में भक्ति योग का अध्ययन करेंगे।

द्वितीय इकाई में हम ज्ञान योग को समझने का प्रयास करेंगे , परिभाषा और मूल सिद्धांत, विवेकानंद द्वारा ज्ञान योग की व्याख्या , योग के चार मार्ग , ज्ञान के मार्ग के रूप में ज्ञान योग, विवेकानंद के ज्ञान योग में प्रमुख अवधारणाएँ , वास्तविकता की प्रकृति , आत्मा और अनात्मा , माया और भ्रम , ब्रह्म की अवधारणा

ज्ञान योग में अभ्यास और विधियाँ , आत्म-जांच , ध्यान और चिंतन , शास्त्रों का अध्ययन, ज्ञान योग पर विवेकानंद की शिक्षाएँ , व्याख्यान और लेखन , प्रमुख उद्धरण और उनकी व्याख्याएँ, आधुनिक समय में ज्ञान योग की प्रासंगिकता , दैनिक जीवन में अनुप्रयोग , ज्ञान योग और मानसिक स्वास्थ्य, आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में ज्ञान योग, अन्य योगिक मार्गों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण का अध्ययन करेंगे।

तृतीय इकाई में हम राज योग को समझने का प्रयास करेंगे राजयोग के आठ अंग -यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि, विवेकानंद की व्याख्या और योगदान राज योग के व्यावहारिक अनुप्रयोग, आधुनिक विश्व में राज योग आलोचनात्मक विश्लेषण और दार्शनिक निहितार्थ का अध्ययन करेंगे।

इकाई 1 भक्ति योग

विषयसूची

1. प्रस्तावना
2. उद्देश्य
3. स्वामी विवेकानंद: एक संक्षिप्त जीवनी
4. भक्ति योग को समझना
 - 4.1 परिभाषा और अवधारणा
 - 4.2 ऐतिहासिक संदर्भ
 - 4.3 भारतीय दर्शन में भक्ति योग
5. भक्ति योग पर विवेकानंद की व्याख्या
 - 5.1 विवेकानंद के अनुसार भक्ति का सार
 - 5.2 भक्ति योग में प्रेम की भूमिका
 - 5.3 आत्म-साक्षात्कार का मार्ग के रूप में भक्ति
6. विवेकानंद के भक्ति योग के प्रमुख सिद्धांत
 - 6.1 सार्वभौमिक प्रेम और स्वीकृति
 - 6.2 ईश्वर के प्रति समर्पण
 - 6.3 निस्वार्थ सेवा
 - 6.4 ईश्वर के लिए तीव्र लालसा
7. विवेकानंद के भक्ति योग में अभ्यास
 - 7.1 प्रार्थना और ध्यान
 - 7.2 जप (भगवान के नाम का दोहराव)
 - 7.3 कीर्तन (भक्ति गायन)
 - 7.4 शास्त्रों का अध्ययन
8. भक्ति योग और अन्य योगिक मार्ग
 - 8.1 ज्ञान योग के साथ संबंध
 - 8.2 कर्म योग के साथ संबंध
 - 8.3 राज योग के साथ संबंध
9. आधुनिक संदर्भ में विवेकानंद का भक्ति योग
 - 9.1 समकालीन समाज में प्रासंगिकता

- 9.2 दैनिक जीवन में अनुप्रयोग
- 9.3 भक्ति योग के माध्यम से आधुनिक चुनौतियों का समाधान
- 10. समीक्षा
 - 10.1 दार्शनिक बहस
 - 10.2 सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण
- 11. तुलनात्मक विश्लेषण
 - 11.1 विवेकानंद का भक्ति योग बनाम पारंपरिक भक्ति
 - 11.2 विभिन्न धार्मिक परंपराओं में भक्ति योग
- 12. सारांश
- 13. बोध प्रश्न एवं आत्म-मूल्यांकन प्रश्न
- 14. उपयोगी पुस्तकें

1. प्रस्तावना

स्वामी विवेकानंद की भक्ति योग की व्याख्या और शिक्षाओं पर इस स्व-अधिगम सामग्री में आपका स्वागत है। यह स्व-अधिगम सामग्री एमए दर्शनशास्त्र के छात्रों के लिए डिज़ाइन की गई है जो भारतीय दर्शन और आध्यात्मिकता के इस महत्वपूर्ण पहलू की समझ को स्पष्ट करना चाहते हैं।

स्वामी विवेकानंद, पश्चिमी दुनिया में वेदांत और योग के भारतीय दर्शन को पेश करने वाले एक प्रमुख व्यक्ति थे, जिन्होंने भक्ति योग की व्याख्या करने और इसे वैश्विक दर्शकों के सामने पेश करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भक्ति योग पर उनका अनूठा दृष्टिकोण, जो भारत की प्राचीन परंपराओं में निहित है, फिर भी आधुनिक दुनिया के लिए प्रासंगिक है, दर्शनशास्त्र के छात्रों के लिए अध्ययन का एक आकर्षक विषय प्रदान करता है।

इस सामग्री में, हम विवेकानंद द्वारा प्रतिपादित भक्ति योग की अवधारणा का अन्वेषण करेंगे, इसके दार्शनिक आधारों, व्यावहारिक अनुप्रयोगों और समकालीन समाज में प्रासंगिकता की जांच करेंगे। हम विवेकानंद के जीवन और शिक्षाओं, भक्ति योग के ऐतिहासिक संदर्भ, इसके मूल सिद्धांतों और अन्य योगिक मार्गों के साथ इसके संबंधों पर गहराई से विचार करेंगे।

जैसे-जैसे आप इस सामग्री के माध्यम से आगे बढ़ेंगे, आपको अपने सीखने के अनुभव को बढ़ाने के लिए डिज़ाइन किए गए विभिन्न अनुभाग मिलेंगे। इनमें विस्तृत स्पष्टीकरण, उदाहरण, केस स्टडी, आत्म-मूल्यांकन प्रश्न और आगे पढ़ने के लिए सुझाव शामिल हैं। इस अध्ययन के अंत तक, आपको भक्ति योग के प्रति विवेकानंद के दृष्टिकोण और भारतीय दर्शन के व्यापक संदर्भ में इसके महत्व की व्यापक समझ होनी चाहिए। आइये, हम भारत के सबसे प्रभावशाली आध्यात्मिक नेताओं में से एक के नजरिए से भक्ति योग की गहराई को जानने के लिए इस बौद्धिक यात्रा पर चलें।

2. उद्देश्य

इस स्व-अधिगम सामग्री के अंत तक, आप निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम हो जायेंगे:

1. स्वामी विवेकानंद के जीवन और दार्शनिक योगदान को समझने में।
2. भारतीय दर्शन के संदर्भ में भक्ति योग की अवधारणा को परिभाषित और व्याख्या करने में।
3. भक्ति योग और उसके प्रमुख सिद्धांतों की विवेकानंद की अनूठी व्याख्या का विश्लेषण करने में।
4. भक्ति की पारंपरिक अवधारणाओं के साथ विवेकानंद के भक्ति योग की तुलना और अन्तर बताने में।

5. विवेकानंद द्वारा सिखाए गए भक्ति योग से जुड़ी विभिन्न प्रथाओं की पहचान करने और उनका वर्णन करने में।
6. भक्ति योग और अन्य योगिक मार्गों (ज्ञान, कर्म और राज योग) के बीच संबंध का मूल्यांकन करने में।
7. समकालीन समाज में विवेकानंद के भक्ति योग की प्रासंगिकता और अनुप्रयोग का आकलन करने में।
8. भक्ति योग की विवेकानंद की व्याख्या के आसपास के दार्शनिक वाद-विवाद और विवादों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने में।
9. भक्ति योग के सिद्धांतों को केस स्टडी और उदाहरणों के माध्यम से वास्तविक जीवन की स्थितियों में लागू करने में।
10. भारतीय दर्शन और वैश्विक आध्यात्मिकता के व्यापक संदर्भ में भक्ति योग के महत्व पर एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण विकसित करने में।

3. स्वामी विवेकानंद: संक्षिप्त जीवनी

स्वामी विवेकानंद, जिनका जन्म 12 जनवरी, 1863 को नरेंद्रनाथ दत्त के रूप में कलकत्ता (अब कोलकाता), भारत में हुआ था, पश्चिमी दुनिया में वेदांत और योग के भारतीय दर्शन को पेश करने में एक प्रमुख व्यक्ति थे। उनके जीवन और शिक्षाओं का भारतीय और वैश्विक विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा है, जिससे वे दर्शनशास्त्र के छात्रों के लिए अध्ययन का एक आवश्यक विषय बन गए हैं।

विवेकानंद का जन्म एक कुलीन बंगाली परिवार में हुआ था। बचपन से ही उनमें तीव्र बुद्धि और प्रश्न पूछने की क्षमता थी। वे अपने पिता के जीवन के प्रति तर्कसंगत दृष्टिकोण और अपनी माँ की धार्मिक भक्ति से बहुत प्रभावित थे, जिसने उनके भविष्य के आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रयासों की नींव रखी।

अपने कॉलेज के वर्षों के दौरान, विवेकानंद को पश्चिमी दर्शन से परिचित कराया गया, जिसका उन्होंने भारतीय दर्शन के साथ अध्ययन किया। इस व्यापक संपर्क ने उन्हें एक अनूठा दृष्टिकोण विकसित करने की अनुमति दी जिसने पूर्वी और पश्चिमी विचारों को जोड़ा। यह इस अवधि के दौरान था कि उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व पर सवाल उठाना शुरू कर दिया और ब्रह्मो समाज, एक सुधारवादी हिंदू आंदोलन से जुड़ गए।

विवेकानंद के जीवन में महत्वपूर्ण मोड़ तब आया जब उनकी मुलाकात प्रसिद्ध रहस्यवादी और आध्यात्मिक नेता श्री रामकृष्ण से हुई। शुरू में रामकृष्ण की शिक्षाओं पर संदेह करने वाले

विवेकानंद अंततः उनके सबसे प्रमुख शिष्य बन गए। रामकृष्ण के मार्गदर्शन में, विवेकानंद ने आध्यात्मिक जागृति का अनुभव किया और अद्वैत वेदांत दर्शन की गहरी समझ विकसित की।

1886 में रामकृष्ण की मृत्यु के बाद, विवेकानंद ने एक घुमक्कड़ साधु की भूमिका निभाई और पूरे भारत में व्यापक रूप से यात्रा की। इन यात्राओं ने उन्हें भारत में गरीबी और सामाजिक असमानता की कठोर वास्तविकताओं से अवगत कराया, जिसने बाद में उनकी शिक्षाओं और सामाजिक सुधार प्रयासों को गहराई से प्रभावित किया।

विवेकानंद की अंतरराष्ट्रीय ख्याति 1893 में शिकागो में विश्व धर्म संसद में उनके अभूतपूर्व भाषण से शुरू हुई। उनके करिश्माई व्यक्तित्व और हिंदू दर्शन की वाक्पटु प्रस्तुति ने पश्चिमी दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। उन्होंने अगले कई साल संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप में व्याख्यान देने, वेदांत सोसाइटी की स्थापना करने और प्रमुख शिष्यों को प्राप्त करने में बिताए।

1897 में भारत लौटने पर विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जो समाज सेवा और आध्यात्मिक विकास के लिए समर्पित एक संगठन था। उन्होंने 4 जुलाई, 1902 को 39 वर्ष की आयु में अपनी मृत्यु तक भारत और विदेशों में लोगों को लिखना, व्याख्यान देना और प्रेरित करना जारी रखा।

विवेकानंद की शिक्षाओं की विशेषता व्यावहारिक आध्यात्मिकता, सामाजिक सुधार और विभिन्न धार्मिक परंपराओं के सामंजस्य पर उनका जोर था। उन्होंने पारंपरिक भारतीय दार्शनिक अवधारणाओं की व्याख्या इस तरह से की कि वह पूर्वी और पश्चिमी दोनों दर्शकों के लिए सुलभ थी। भक्ति योग के प्रति उनका दृष्टिकोण, जिसे हम इस सामग्री में गहराई से समझेंगे, इस आध्यात्मिक पथ की आधुनिक समझ को आकार देने में विशेष रूप से प्रभावशाली था।

विवेकानंद की विरासत दुनिया भर में लाखों लोगों को प्रेरित करती है। दर्शन और योग के विभिन्न पहलुओं पर उनके लेखन, जिनमें "राज योग", "कर्म योग", "भक्ति योग" और "ज्ञान योग" शामिल हैं, भारतीय दर्शन और तुलनात्मक धर्म के क्षेत्रों में अत्यधिक प्रभावशाली बने हुए हैं।

जैसे-जैसे हम भक्ति योग की विवेकानंद की व्याख्या में गहराई से उतरते हैं, उनके जीवन के अनुभवों के संदर्भ, पूर्वी और पश्चिमी दोनों तरह के विचारों से उनके संपर्क और भारतीय दर्शन को सार्वभौमिक, व्यावहारिक तरीके से प्रस्तुत करने के उनके मिशन को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। यह पृष्ठभूमि हमें भक्ति योग की अवधारणा में उनके द्वारा लाए गए अद्वितीय दृष्टिकोण को बेहतर ढंग से समझने में मदद करेगी।

4. भक्ति योग को समझना

4.1 परिभाषा और अवधारणा

भक्ति योग, जिसे अक्सर "भक्ति का योग" या "प्रेम का योग" के रूप में स्वीकार किया जाता है, हिंदू दर्शन में प्राथमिक आध्यात्मिक मार्गों में से एक है। "भक्ति" शब्द संस्कृत मूल "भज" से लिया गया है, जिसका अर्थ है "साझा करना", "भाग लेना", या "संबंधित होना।" संक्षेप में, भक्ति योग ईश्वर के प्रति भक्ति प्रेम का अभ्यास है, जिसका अंतिम लक्ष्य सर्वोच्च सत्ता के साथ मिलन प्राप्त करना है।

अपने मूल में, भक्ति योग आध्यात्मिकता के प्रति एक गहन व्यक्तिगत और भावनात्मक दृष्टिकोण है। यह आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के प्राथमिक साधन के रूप में प्रेम और भक्ति की अभ्यास पर जोर देता है। ज्ञान योग (ज्ञान का मार्ग) या शारीरिक रूप से कठिन राज योग (ध्यान और नियंत्रण का मार्ग) जैसे बौद्धिक रूप से अधिक कठोर मार्गों के विपरीत, भक्ति योग को अक्सर सबसे सुलभ मार्ग माना जाता है, क्योंकि यह भावनात्मक जुड़ाव बनाने की प्राकृतिक मानवीय प्रवृत्ति का उपयोग करता है।

भक्ति योग की अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि ईश्वर के प्रति अटूट प्रेम और भक्ति के माध्यम से, व्यक्ति अहंकार की सीमाओं से परे जा सकता है और ब्रह्मांड के साथ एकता की गहन भावना का अनुभव कर सकता है। यह भक्ति केवल एक बौद्धिक अभ्यास नहीं है, बल्कि हृदय, मन और आत्मा को शामिल करते हुए ईश्वर के प्रति अपने आप को पूर्ण रूप से समर्पित करना है।

भक्ति योग में, ईश्वर को विभिन्न रूपों में माना जा सकता है - एक व्यक्तिगत ईश्वर, एक अवतार, एक गुरु या यहाँ तक कि निराकार निरपेक्ष (ब्रह्म) के रूप में। भक्ति की वस्तु में लचीलापन भक्ति योग को हिंदू धर्म और उससे परे विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक ढाँचों के अनुकूल बनाता है।

4.2 ऐतिहासिक संदर्भ

भक्ति योग की जड़ें प्राचीन भारतीय ग्रंथों, खास तौर पर वेदों और उपनिषदों में पाई जा सकती हैं। हालाँकि, इसे भक्ति आंदोलन के दौरान प्रमुखता मिली, जो 6 वीं और 17 वीं शताब्दी के बीच पूरे भारत में फैल गया।

भक्ति आंदोलन की विशेषता यह थी कि यह धार्मिक व्यवहार में कठोर कर्मकांड और जाति-आधारित प्रतिबंधों से दूर चला गया। इसने व्यक्तिगत भक्ति और ईश्वर के प्रत्यक्ष अनुभव पर जोर दिया, जिससे आध्यात्मिकता आम जनता के लिए अधिक सुलभ हो गई। इस अवधि में कई कवि-संतों का उदय हुआ जिन्होंने स्थानीय भाषाओं में भक्ति भजनों की रचना की, जिससे भक्ति मार्ग और अधिक लोकप्रिय हुआ।

भक्ति योग को संहिताबद्ध करने और प्रचारित करने में मदद करने वाले प्रमुख ग्रंथों में शामिल हैं:

1. भगवद् गीता: इसे प्रायः भक्ति योग का प्राथमिक ग्रंथ माना जाता है, यह भक्ति को आध्यात्मिक प्राप्ति के मुख्य मार्गों में से एक के रूप में प्रस्तुत करता है।
2. नारद भक्ति सूत्र: ऋषि नारद द्वारा रचित एक संक्षिप्त ग्रन्थ, जो भक्ति योग के दर्शन और अभ्यास को व्यवस्थित रूप से रेखांकित करता है।
3. भक्ति रसामृत सिंधु: गौड़ीय वैष्णव परंपरा के एक प्रमुख व्यक्ति रूप गोस्वामी द्वारा रचित यह ग्रंथ भक्ति के चरणों और प्रकारों का विस्तृत विश्लेषण प्रदान करता है।

4.3 भारतीय दर्शन में भक्ति योग

भारतीय दर्शन के व्यापक संदर्भ में, भक्ति योग आध्यात्मिक प्राप्ति के अन्य प्रमुख मार्गों के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शास्त्रीय भारतीय दार्शनिक प्रणालियाँ अक्सर चार मुख्य योगों या मार्गों को मान्यता देती हैं:

1. ज्ञान योग: ज्ञान और बुद्धि का मार्ग
2. कर्म योग: निस्वार्थ कर्म का मार्ग
3. राज योग: ध्यान और मन पर नियंत्रण का मार्ग
4. भक्ति योग: भक्ति और प्रेम का मार्ग

यद्यपि इन मार्गों को प्रायः अलग-अलग दृष्टिकोणों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन विवेकानंद सहित कई दार्शनिक और आध्यात्मिक शिक्षक इनके परस्पर संबंध और एकीकरण की क्षमता पर जोर देते हैं।

भारतीय दर्शन के भीतर, भक्ति योग ईश्वरवादी विचारधाराओं, विशेष रूप से वैष्णववाद, शैववाद और शक्तिवाद से निकटता से जुड़ा हुआ है। इन परंपराओं ने भक्ति की अवधारणा के इर्द-गिर्द समृद्ध धार्मिक और दार्शनिक रूपरेखाएँ विकसित की हैं, जो इसकी प्रकृति, चरणों और अंतिम लक्ष्य की खोज करती हैं।

हालाँकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि भक्ति योग आस्तिक दर्शन तक सीमित नहीं है। यहाँ तक कि गैर-द्वैतवादी (अद्वैत) परंपराओं में भी, जो अंततः वास्तविकता को गैर-द्वैत और ईश्वर की व्यक्तिगत अवधारणाओं से परे मानते हैं, भक्ति को अक्सर एक मूल्यवान आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में मान्यता दी जाती है। इन संदर्भों में, भक्ति को मन को शुद्ध करने और उसे गैर-द्वैत जागरूकता की उच्चतम प्राप्ति के लिए तैयार करने के साधन के रूप में देखा जाता है। भक्ति योग के दार्शनिक आधार कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते हैं जिन पर भारतीय दार्शनिकों के बीच सदियों से बहस होती रही है:

1. भक्त और भगवान के बीच संबंध की प्रकृति

2. आध्यात्मिक अनुभूति में अनुग्रह की भूमिका
3. तर्कसंगत जांच के साथ गहन भावनात्मक भक्ति की अनुकूलता
4. अद्वैतवादी दर्शन में भक्ति का स्थान

ये दार्शनिक विचार, भक्ति योग की विवेकानंद की अद्वितीय व्याख्या को समझने के लिए एक समृद्ध पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं, जिसका हम अगले अनुभागों में अध्ययन करेंगे।

जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं, ध्यान रखें कि भक्ति योग के प्रति विवेकानंद का दृष्टिकोण पारंपरिक भारतीय दर्शन में उनकी पकड़, पश्चिमी विचारों से उनका परिचय और हिंदू अवधारणाओं को सार्वभौमिक, व्यावहारिक तरीके से प्रस्तुत करने के उनके मिशन से आकार लेता था। उनकी व्याख्या भारतीय दर्शन में भक्ति की इस लंबी और विविध परंपरा से प्रेरित थी और इसमें योगदान भी देती थी।

5. भक्ति योग पर विवेकानंद की व्याख्या

भक्ति योग की स्वामी विवेकानंद की व्याख्या इसकी सार्वभौमिकता, व्यावहारिकता और अन्य योगिक मार्गों के साथ एकीकरण के लिए उल्लेखनीय है। भक्ति योग पर उनकी शिक्षाएँ केवल पारंपरिक अवधारणाओं की पुनरावृत्ति नहीं थीं, बल्कि एक ताज़ा, आधुनिक व्याख्या थी जिसने इस प्राचीन मार्ग को सभी पृष्ठभूमि के लोगों के लिए सुलभ और प्रासंगिक बना दिया।

5.1 विवेकानंद के अनुसार भक्ति का सार

विवेकानंद के लिए भक्ति योग का सार किसी विशेष धार्मिक परंपरा या पूजा पद्धति तक सीमित नहीं था। उन्होंने भक्ति को "ईश्वर के प्रति गहन प्रेम" के रूप में परिभाषित किया, लेकिन ईश्वर के बारे में उनकी अवधारणा व्यापक और समावेशी थी। विवेकानंद ने कहा:

"भक्ति-योग ईश्वर की सच्ची खोज है, एक ऐसी खोज जो प्रेम से शुरू होती है, जारी रहती है और प्रेम पर ही समाप्त होती है। ईश्वर के प्रति अत्यन्त प्रेम के पागलपन का एक क्षण भी हमें शाश्वत स्वतंत्रता प्रदान करता है।"

विवेकानंद ने इस बात पर जोर दिया कि ईश्वर के प्रति यह प्रेम ईश्वर के किसी भी रूप या अवधारणा के प्रति निर्देशित किया जा सकता है जो व्यक्ति के साथ प्रतिध्वनित होता है। उनका मानना था कि सभी ईमानदार आध्यात्मिक मार्ग, चाहे उनके बाहरी रूप कुछ भी हों, भक्ति की वैध अभिव्यक्ति हैं यदि उन्हें सच्चे प्रेम और भक्ति के साथ अपनाया जाए।

भक्ति की विवेकानंद की व्याख्या के प्रमुख पहलू इस प्रकार हैं:

1. सार्वभौमिकता: विवेकानंद ने भक्ति योग को एक सार्वभौमिक मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया, जो किसी विशेष धर्म या संस्कृति तक सीमित नहीं है। उनका मानना था कि भक्ति का सार धार्मिक सीमाओं से परे है।

2. तर्कसंगतता: कुछ पारंपरिक दृष्टिकोणों के विपरीत जो अंधविश्वास पर जोर देते हैं, विवेकानंद ने भक्ति के लिए एक तर्कसंगत दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया। उनका मानना था कि भक्ति समझ और तर्क पर आधारित होनी चाहिए।

3. व्यावहारिक आध्यात्मिकता: विवेकानंद ने दैनिक जीवन में आध्यात्मिक सिद्धांतों को लागू करने के महत्व पर जोर दिया। उनके लिए, सच्ची भक्ति केवल अनुष्ठान या भावनात्मक अनुभवों के बारे में नहीं थी, बल्कि प्रेम और सेवा का जीवन जीने के बारे में थी।

4. अन्य मार्गों के साथ सामंजस्य: विवेकानंद ने भक्ति योग को एक पृथक मार्ग के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञान (ज्ञान), कर्म (क्रिया) और राज (ध्यान) योग जैसे अन्य योगिक दृष्टिकोणों के पूरक के रूप में देखा।

5.2 भक्ति योग में प्रेम की भूमिका

भक्ति योग के बारे में विवेकानंद की समझ का केंद्र प्रेम की अवधारणा थी। उन्होंने प्रेम को मानवीय अनुभव में सबसे शक्तिशाली शक्ति और आध्यात्मिक परिवर्तन की कुंजी के रूप में देखा। विवेकानंद अक्सर "शुद्ध प्रेम" विकसित करने की आवश्यकता के बारे में बात करते थे, जिसे उन्होंने बिना किसी स्वार्थ के प्रेम के रूप में वर्णित किया।

भक्ति योग पर अपने व्याख्यान में विवेकानंद ने समझाया:

"इस प्रेम की पहली अभिव्यक्ति यह है कि हम अपने हृदय को शुद्ध होते हुए महसूस करना शुरू करते हैं। अगली अभिव्यक्ति यह है कि हम अपने हृदय को पिघलता हुआ महसूस करते हैं। फिर हम स्वयं को विस्तृत होते हुए महसूस करते हैं, और अंत में हम स्वयं को अनंत के साथ एक होते हुए महसूस करते हैं।"

विवेकानंद के लिए यह प्रेम महज एक भावना नहीं थी बल्कि एक परिवर्तनकारी शक्ति थी जो उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति की ओर ले जा सकती थी। उनका मानना था कि शुद्ध प्रेम की खेती के माध्यम से, कोई भी व्यक्ति ईश्वर के प्रति आकर्षण महसूस कर सकता है और मन और हृदय को शुद्ध करना शुरू कर सकता है।

1. संघर्ष का चरण: जहां व्यक्ति बाधाओं पर विजय पाने और अपनी भक्ति को गहरा करने के लिए सक्रिय रूप से कार्य करता है।

2. आसक्ति की अवस्था: जहाँ ईश्वर के प्रति प्रेम व्यक्ति के जीवन में एक निरंतर उपस्थिति बन जाता है।

3. परमानंद की अवस्था: जहाँ व्यक्ति आध्यात्मिक आनन्द और ईश्वर के साथ मिलन की तीव्र अवस्था का अनुभव करता है।

विवेकानंद ने इस बात पर बल दिया कि ये चरण कठोर या अनुक्रमिक नहीं हैं, बल्कि व्यक्ति के स्वभाव और परिस्थितियों के आधार पर एक-दूसरे से ओवरलैप हो सकते हैं तथा इनकी तीव्रता में भिन्नता हो सकती है।

5.3 भक्ति आत्म-साक्षात्कार का मार्ग

भक्ति योग की विवेकानंद की व्याख्या का सबसे महत्वपूर्ण पहलू आत्म-साक्षात्कार में इसकी भूमिका पर उनका जोर था। जबकि पारंपरिक व्याख्याएं अक्सर भक्त और एक व्यक्तिगत ईश्वर के बीच के रिश्ते पर ध्यान केंद्रित करती हैं, विवेकानंद ने इस अवधारणा को व्यक्ति की अपनी दिव्य प्रकृति की प्राप्ति को शामिल करने के लिए विस्तारित किया।

विवेकानंद ने सिखाया कि भक्ति योग का अंतिम लक्ष्य केवल किसी दूर के देवता की पूजा करना नहीं है, बल्कि अपने और सभी प्राणियों के भीतर की दिव्यता को महसूस करना है। उन्होंने कहा: "भक्ति का उद्देश्य और लक्ष्य हमारे भीतर विद्यमान दिव्यता की अनुभूति है। पृथ्वी पर सर्वोच्च दिव्य अभिव्यक्ति मनुष्य में है। भक्ति का उद्देश्य मनुष्य में दिव्यता को खोजना है।"

इस दृष्टिकोण ने भक्ति योग को अद्वैत वेदांत दर्शन के साथ जोड़ दिया, जो व्यक्तिगत आत्म (आत्मा) की सार्वभौमिक चेतना (ब्रह्म) के साथ परम एकता को स्थापित करता है। विवेकानंद ने भक्ति को अलगाव के भ्रम को दूर करने और इस मौलिक एकता को महसूस करने के लिए एक शक्तिशाली साधन के रूप में देखा।

इस संदर्भ में, विवेकानंद ने पारंपरिक भक्ति प्रथाओं की पुनर्व्याख्या की:

1. देवताओं की पूजा: इसे स्वयं के भीतर दैवीय गुणों को पहचानने और विकसित करने के साधन के रूप में देखा जाता है।
2. ईश्वर के प्रति समर्पण: इसे अहंकार का समर्पण और अपने वास्तविक स्वरूप का बोध माना जाता है।
3. ईश्वर की सेवा: सभी प्राणियों की सेवा के रूप में इसकी व्याख्या की गई है, सभी में ईश्वर को पहचानना।

आत्म-साक्षात्कार के मार्ग के रूप में भक्ति योग के प्रति यह दृष्टिकोण अपने समय में क्रांतिकारी था और आधुनिक आध्यात्मिक विचारों को प्रभावित करना जारी रखता है। इसने द्वैतवादी भक्ति प्रथाओं और अद्वैतवादी दर्शन के बीच की खाई को पाट दिया, जिससे भक्ति योग आध्यात्मिक साधकों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए सुलभ हो गया।

6. विवेकानंद के भक्ति योग के प्रमुख सिद्धांत

भक्ति योग की विवेकानंद की व्याख्या कई प्रमुख सिद्धांतों पर आधारित थी जो इसे अधिक पारंपरिक दृष्टिकोणों से अलग करती थी। ये सिद्धांत व्यावहारिक आध्यात्मिकता और सार्वभौमिक प्रयोज्यता पर उनके जोर को दर्शाते हैं।

6.1 सार्वभौमिक प्रेम और स्वीकृति

विवेकानंद के भक्ति योग के मूल में सार्वभौमिक प्रेम का सिद्धांत है। उन्होंने सिखाया कि सच्ची भक्ति किसी व्यक्तिगत देवता की पूजा से आगे बढ़कर सभी प्राणियों के प्रति प्रेम को समाहित करती है। विवेकानंद अक्सर भगवद गीता से उद्धृत करते थे:

"जो मनुष्य समस्त प्राणियों में मुझे और समस्त प्राणियों को मुझमें देखता है, वह मुझसे कभी अलग नहीं होता और न मैं उससे कभी अलग होता हूँ।"

सार्वभौमिक प्रेम का यह सिद्धांत कई तरीकों से प्रकट होता है:

1. सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सम्मान: विवेकानंद सभी धर्मों को ईश्वर तक पहुंचने का वैध मार्ग मानते थे तथा आपसी सम्मान और समझ को प्रोत्साहित करते थे।
2. सभी प्राणियों के प्रति करुणा: उन्होंने सिखाया कि ईश्वर के प्रति प्रेम स्वाभाविक रूप से ईश्वर की समस्त सृष्टि के प्रति प्रेम और सेवा तक विस्तारित होना चाहिए।
3. प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर को पहचानना: विवेकानंद ने प्रत्येक व्यक्ति, विशेषकर गरीब और शोषितों में ईश्वर को देखने और उनकी सेवा करने को प्रोत्साहित किया।

6.2 ईश्वर के प्रति समर्पण

समर्पण (शरणगति) की अवधारणा भक्ति योग की कई परंपराओं का केंद्र है, और विवेकानंद ने इसकी एक अनूठी व्याख्या की। उनके लिए, समर्पण का मतलब किसी बाहरी देवता के सामने झुकना नहीं था, बल्कि अहंकार और उसकी आसक्तियों को समर्पित करना था।

विवेकानंद ने समझाया:

"प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति इस अनुभूति में है कि 'मैं वही हूँ।' यह भक्ति की चरम सीमा है, यह अनुभूति कि मैं शाश्वत शुद्ध सत्ता हूँ।"

उन्होंने इस आत्मसमर्पण के कई पहलुओं को रेखांकित किया:

1. बौद्धिक समर्पण: निश्चित विचारों को त्यागना और उच्चतर सत्य के प्रति खुला रहना।
2. भावनात्मक समर्पण: स्वार्थी इच्छाओं को त्यागना और शुद्ध प्रेम का विकास करना।
3. स्वैच्छिक समर्पण: अपनी इच्छा को ईश्वरीय इच्छा या महानतम भलाई के साथ संरेखित करना।

6.3 निःस्वार्थ सेवा

विवेकानंद ने भक्ति के एक रूप के रूप में निःस्वार्थ सेवा पर बहुत जोर दिया। उनका मानना था कि दूसरों की प्रेमपूर्वक और बिना किसी पुरस्कार की अपेक्षा के सेवा करना भक्ति के सर्वोच्च

रूपों में से एक है। यह सिद्धांत उनके प्रसिद्ध आह्वान "मनुष्य में ईश्वर की पूजा" में समाहित था।

उन्होंने सिखाया कि सेवा कई तरीकों से की जानी चाहिए:

1. शारीरिक सेवा: दूसरों की शारीरिक आवश्यकताओं और आराम में सहायता करना।
2. बौद्धिक सेवा: दूसरों के उत्थान के लिए ज्ञान और बुद्धिमता को साझा करना।
3. आध्यात्मिक सेवा: दूसरों को उनकी आध्यात्मिक यात्रा में प्रेरित करना और सहायता प्रदान करना।

विवेकानंद ने निःस्वार्थ सेवा के इस सिद्धांत को समस्त अस्तित्व की एकता के वेदान्तिक सत्य के व्यावहारिक अनुप्रयोग के रूप में देखा।

6.4 ईश्वर के लिए तीव्र लालसा

जबकि विवेकानंद ने भक्ति योग में तर्कसंगत समझ और व्यावहारिक अनुप्रयोग पर जोर दिया, उन्होंने ईश्वर के लिए तीव्र भावनात्मक लालसा के महत्व को भी पहचाना। वे अक्सर "तिवर वैराग्य" या सांसारिक चीजों के लिए तीव्र वैराग्य की आवश्यकता के बारे में बात करते थे, साथ ही ईश्वर के लिए पूरी तरह से जुनून के साथ।

विवेकानंद ने इस लालसा का वर्णन किया:

"जब यह तीव्र लालसा आती है, तो ईश्वर से अलगाव असहनीय हो जाता है, और भक्त चिल्लाता है, 'हे प्रभु, मैं आपके बिना नहीं रह सकता।'"

उनका मानना था कि भावनाओं की यह तीव्रता उन गहरी आसक्तियों और भ्रमों पर काबू पाने के लिए ज़रूरी है जो हमें भौतिक दुनिया से बांधे रखते हैं। हालाँकि, उन्होंने चेतावनी दी कि इस भावनात्मक तीव्रता को विवेक और आत्म-नियंत्रण के साथ संतुलित किया जाना चाहिए।

विवेकानंद के भक्ति योग के ये मुख्य सिद्धांत - सार्वभौमिक प्रेम, समर्पण, निस्वार्थ सेवा और तीव्र लालसा - आध्यात्मिक जीवन के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण बनाते हैं। वे न केवल ईश्वर के साथ अपने रिश्ते को बदलने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं, बल्कि दुनिया में रहने के अपने पूरे तरीके को भी बदलते हैं।

अगले भाग में हम उन विशिष्ट अभ्यासों का पता लगाएंगे जिन्हें विवेकानंद ने इन सिद्धांतों को विकसित करने और भक्ति योग के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए सुझाया था।

7. विवेकानंद के भक्ति योग में अभ्यास

विवेकानंद ने भक्ति योग में आंतरिक दृष्टिकोण और समझ के महत्व पर जोर देते हुए, भक्ति विकसित करने में बाहरी अभ्यासों के महत्व को भी पहचाना। हालाँकि, उन्होंने आध्यात्मिकता के प्रति अपने सार्वभौमिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण के साथ तालमेल बिठाने के लिए अक्सर

पारंपरिक प्रथाओं की पुनर्व्याख्या की। यहाँ कुछ प्रमुख अभ्यास दिए गए हैं जिनकी उन्होंने वकालत की:

7.1 प्रार्थना और ध्यान

विवेकानंद ने भक्ति योग में प्रार्थना और ध्यान को आवश्यक अभ्यास के रूप में देखा, लेकिन उनका दृष्टिकोण पारंपरिक तरीकों से कहीं अधिक व्यापक था। उन्होंने प्रार्थना के ऐसे तरीके को प्रोत्साहित किया जो व्यक्तिगत लाभ के लिए किसी देवता से प्रार्थना करने से परे हो। इसके बजाय, उन्होंने प्रार्थना को ईश्वर से संवाद करने और आत्म-परिवर्तन के साधन के रूप में वकालत की।

भक्ति योग पर अपने व्याख्यान में विवेकानंद ने कहा:

"सर्वोच्च प्रार्थना कृतज्ञता की प्रार्थना है। प्रार्थना का सार चीजों की माँग करना नहीं है, बल्कि स्वयं को ईश्वर के प्रति खोलना है।"

उन्होंने प्रार्थना और ध्यान के कई रूपों की सिफारिश की:

1. मौन समागम: शांत चिंतन में बैठना, हृदय को ईश्वरीय उपस्थिति के लिए खोलना।
2. मंत्र ध्यान: पवित्र अक्षरों या दिव्य नामों को एकाग्रचित्त होकर दोहराना।
3. चिंतनशील प्रार्थना: आध्यात्मिक सत्यों या ईश्वरीय गुणों पर गहराई से चिंतन करना।

विवेकानंद ने इस बात पर जोर दिया कि प्रार्थना और ध्यान की प्रभावशीलता बाहरी रूप में नहीं बल्कि भक्त के दृष्टिकोण की ईमानदारी और तीव्रता में निहित है।

7.2 जप (भगवान के नाम का दोहराव)

जप, या भगवान के नाम या पवित्र मंत्र का दोहराव, कई भक्ति परंपराओं में एक आम प्रथा है। विवेकानंद ने इसकी शक्ति को स्वीकार किया लेकिन इसे एक व्यापक व्याख्या दी। उन्होंने जप के अभ्यास को ईश्वर के निरंतर स्मरण और मन को शुद्ध करने के एक तरीके के रूप में देखा।

विवेकानंद ने समझाया:

"भगवान का नाम स्वयं भगवान के समान ही शक्तिशाली है। जो व्यक्ति श्रद्धा और प्रेम के साथ जप का अभ्यास करता है, वह केवल इसी अभ्यास के माध्यम से भगवान को प्राप्त कर सकता है।"

उन्होंने जप के लिए कई दृष्टिकोण सुझाए:

1. मौखिक पुनरावृत्ति: नाम का उच्चारण जोर से करना, चाहे अकेले या समूह में।
2. मानसिक दोहराव: दैनिक गतिविधियों के दौरान मन ही मन नाम को चुपचाप दोहराना।
3. लिखित जप: ध्यान और भक्ति के रूप में भगवान का नाम लिखना।

विवेकानंद ने इस बात पर जोर दिया कि नाम या मंत्र का चुनाव भक्त के दृष्टिकोण से कम महत्वपूर्ण है। उन्होंने लोगों को प्रोत्साहित किया कि वे ईश्वर के किसी भी ऐसे नाम या रूप का उपयोग करें जो उनके साथ सबसे अधिक गहराई से जुड़ा हो।

7.3 कीर्तन (भक्ति गायन)

कीर्तन या भक्ति गायन को विवेकानंद ने भक्ति जागृत करने के लिए एक शक्तिशाली साधन के रूप में अत्यधिक महत्व दिया था। उन्होंने संगीत को एक सार्वभौमिक भाषा के रूप में देखा जो सीधे दिल को छू सकती है और आध्यात्मिक परमानंद की स्थिति पैदा कर सकती है।

अपने उपदेशों में विवेकानंद अक्सर संत नारद को उद्धृत करते थे:

"भक्ति ईश्वरीय नाम के श्रवण और कीर्तन के आनंद में प्रकट होती है।"

विवेकानंद ने कीर्तन के विभिन्न रूपों को प्रोत्साहित किया:

1. विभिन्न भारतीय परंपराओं के पारंपरिक भजन और कीर्तन।
2. अन्य संस्कृतियों और धर्मों से भक्ति संगीत का अनुकूलन।
3. संगीत और मंत्रोच्चार के माध्यम से भक्ति की सहज अभिव्यक्ति।

उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कीर्तन की शक्ति संगीत कौशल में नहीं बल्कि भक्त की भावनाओं की ईमानदारी और तीव्रता में निहित है।

7.4 धर्मशास्त्रों का अध्ययन

विवेकानंद ने बौद्धिक ज्ञान के बजाय प्रत्यक्ष अनुभव पर जोर दिया, फिर भी उन्होंने धर्मग्रंथों और आध्यात्मिक ग्रंथों के अध्ययन के महत्व को पहचाना। हालांकि, उन्होंने शास्त्रों के अध्ययन के लिए आँख मूंदकर स्वीकार करने के बजाय आलोचनात्मक और चिंतनशील दृष्टिकोण की वकालत की।

विवेकानंद ने कहा:

"शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है, लेकिन इसे विवेक के साथ किया जाना चाहिए। इसका लक्ष्य ग्रंथों को याद करना नहीं है, बल्कि उनकी सच्चाई को आत्मसात करना है।"

उन्होंने धर्मशास्त्र अध्ययन के लिए कई दृष्टिकोण सुझाये:

1. आध्यात्मिक ग्रंथों का नियमित पठन एवं मनन।
2. दूसरों के साथ आध्यात्मिक विचारों पर चर्चा और बहस करना।
3. दैनिक जीवन की परिस्थितियों में धर्मशास्त्रीय शिक्षाओं को लागू करना।

विवेकानंद ने आध्यात्मिक साहित्य की एक विस्तृत श्रृंखला के अध्ययन को प्रोत्साहित किया, जो किसी एक परंपरा तक सीमित नहीं था। उनका मानना था कि सत्य को विभिन्न स्रोतों में पाया जा सकता है और विभिन्न दृष्टिकोणों की तुलना करने से गहरी समझ प्राप्त हो सकती है।

इन विशिष्ट अभ्यासों के अलावा, विवेकानंद ने इस बात पर जोर दिया कि जीवन में हर क्रिया को सही दृष्टिकोण के माध्यम से आध्यात्मिक अभ्यास में बदला जा सकता है। उन्होंने अपने अनुयायियों को जीवन को भक्ति और आत्म-साक्षात्कार के अवसर के रूप में देखने के लिए प्रोत्साहित किया।

इन प्रथाओं के प्रति विवेकानंद का दृष्टिकोण लचीलापन और समावेशिता से युक्त था। उन्होंने माना कि अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग प्रथाओं की ओर आकर्षित हो सकते हैं और इस बात पर जोर दिया कि भक्ति की ईमानदारी और तीव्रता अभ्यास के विशिष्ट रूप से अधिक महत्वपूर्ण है।

अगले भाग में हम यह देखेंगे कि किस प्रकार विवेकानंद ने भक्ति योग को अन्य योगिक मार्गों से जोड़ा तथा आध्यात्मिक विकास के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण तैयार किया।

8. भक्ति योग और अन्य योगिक मार्ग

विवेकानंद की शिक्षाओं का एक अनूठा पहलू यह था कि वे विभिन्न योगिक मार्गों के एकीकरण पर जोर देते थे। जबकि उन्होंने भक्ति योग को एक अलग दृष्टिकोण के रूप में पहचाना, उन्होंने इसे योग के अन्य रूपों, विशेष रूप से ज्ञान योग (ज्ञान का मार्ग), कर्म योग (निस्वार्थ कर्म का मार्ग) और राज योग (ध्यान और मन पर नियंत्रण का मार्ग) के साथ गहराई से जुड़ा हुआ भी माना।

8.1 ज्ञान योग से संबंध

विवेकानंद ने भक्ति योग और ज्ञान योग को पूरक मार्ग के रूप में देखा, जो एक दूसरे का समर्थन और संवर्धन करते हैं। जहाँ ज्ञान योग बौद्धिक विवेक और आत्म-जांच पर जोर देता है, वहीं भक्ति योग भक्ति और प्रेम पर केंद्रित है। विवेकानंद का मानना था कि दोनों दृष्टिकोणों के संयोजन से सर्वोच्च प्राप्ति प्राप्त की जा सकती है।

उन्होंने इस संबंध को इस प्रकार समझाया:

"ज्ञान योग हमें दर्शन देता है, भक्ति योग हमें हृदय देता है। ज्ञान योगी ईश्वर को सार्वभौमिक सत्ता के रूप में देखता है, भक्ति योगी उसे सगुण ईश्वर के रूप में देखता है।"

विवेकानंद ने सिखाया कि:

1. भक्ति ज्ञान की बौद्धिक यात्रा के लिए भावनात्मक ईंधन प्रदान कर सकती है।
2. ज्ञान भक्ति की भक्ति प्रथाओं को एक ठोस दार्शनिक आधार दे सकता है।
3. परम बोध में सिर और हृदय दोनों शामिल होते हैं - अपने दिव्य स्वभाव की सच्चाई को समझना और महसूस करना।

8.2 कर्म योग से संबंध

विवेकानंद ने भक्ति योग और कर्म योग के बीच एक मजबूत संबंध देखा। उन्होंने सिखाया कि निस्वार्थ सेवा, जो कर्म योग का एक प्रमुख पहलू है, वह भी भक्ति का एक रूप है। इसके विपरीत, उनका मानना था कि सच्ची भक्ति स्वाभाविक रूप से निस्वार्थ कर्म में ही अभिव्यक्त होती है।

विवेकानंद ने कहा: "जो व्यक्ति गरीबों, कमजोरों और रोगियों में शिव को देखता है, वही वास्तव में शिव की पूजा करता है। जिसने किसी गरीब व्यक्ति की सेवा की है और उसकी सहायता की है, बिना उसकी जाति, पंथ, नस्ल या किसी भी चीज के बारे में सोचे, उसमें शिव को देखा है, शिव उससे उस व्यक्ति की अपेक्षा अधिक प्रसन्न होते हैं, जो उन्हें केवल मंदिरों में ही देखता है।"

भक्ति और कर्म योग का यह एकीकरण कई तरीकों से स्पष्ट है:

1. सभी कार्यों को ईश्वर की पूजा के रूप में देखना।
2. कर्म को भक्तिपूर्वक तथा परिणामों की आसक्ति के बिना करना।
3. दूसरों की सेवा करना ईश्वर की सेवा करने का एक तरीका है।

8.3 राजयोग से संबंध

राज योग, जिसे अक्सर ध्यान और मन पर नियंत्रण से जोड़ा जाता है, विवेकानंद ने भक्ति योग से भी निकटता से संबंधित माना। उनका मानना था कि राज योग में विकसित एकाग्रता और एकाग्रता व्यक्ति की भक्ति की क्षमता को बहुत बढ़ा सकती है।

विवेकानंद ने समझाया: "राजयोगी अपना मन ईश्वर पर केन्द्रित करता है, भक्ति योगी अपना हृदय ईश्वर को समर्पित करता है। दोनों एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं।"

उन्होंने राज योग और भक्ति योग के बीच कई संबंधों पर प्रकाश डाला:

1. अपनी भक्ति प्रथाओं को गहरा करने के लिए ध्यान तकनीकों का उपयोग करना।
2. ईश्वर का निरंतर स्मरण बनाए रखने के लिए मानसिक नियंत्रण विकसित करना।
3. ध्यानात्मक तल्लीनता और भक्तिपूर्ण परमानंद दोनों के माध्यम से चेतना की उच्चतर अवस्थाओं का अनुभव करना।

विवेकानंद के योग के प्रति एकीकृत दृष्टिकोण ने इस बात पर जोर दिया कि भले ही व्यक्ति अपने स्वभाव के आधार पर एक मार्ग की ओर दूसरों की तुलना में अधिक आकर्षित हो सकते हैं, लेकिन सर्वोच्च प्राप्ति में इन सभी मार्गों के तत्व शामिल होते हैं। उन्होंने योगाभ्यास करने वालों को अलग-अलग दृष्टिकोण तलाशने और उनके लिए काम करने वाला संतुलन खोजने के लिए प्रोत्साहित किया।

योग पथों का यह समग्र दृष्टिकोण विवेकानंद के विविधता में एकता के व्यापक दर्शन को दर्शाता है। जिस तरह उन्होंने विभिन्न धर्मों को एक ही परम सत्य के विभिन्न मार्गों के रूप में देखा, उसी तरह उन्होंने विभिन्न योगों को आत्म-साक्षात्कार के पूरक दृष्टिकोण के रूप में देखा।

अगले भाग में हम यह पता लगाएंगे कि भक्ति योग पर विवेकानंद की शिक्षाओं को आधुनिक संदर्भ में कैसे लागू किया जा सकता है, तथा आध्यात्मिक विकास के लिए समकालीन चुनौतियों और अवसरों को संबोधित किया जा सकता है।

9. आधुनिक संदर्भ में विवेकानंद का भक्ति योग

स्वामी विवेकानंद की भक्ति योग की व्याख्या अपने समय में क्रांतिकारी थी, और आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। भक्ति के प्रति उनका सार्वभौमिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण समकालीन आध्यात्मिक और सामाजिक चुनौतियों से निपटने के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

9.1 समकालीन समाज में प्रासंगिकता

विवेकानंद का भक्ति योग आज की दुनिया में कई कारणों से अत्यधिक प्रासंगिक है:

1. समावेशिता और सहिष्णुता: तेजी से विविधतापूर्ण और वैश्वीकृत विश्व में, विवेकानंद का सार्वभौमिक प्रेम और सभी धर्मों के प्रति सम्मान पर जोर सद्भाव और आपसी समझ को बढ़ावा देता है।
2. तनाव से मुक्ति और मानसिक स्वास्थ्य: भक्ति योग के अभ्यास, जैसे ध्यान, प्रार्थना और भक्ति गायन, हमारे तेज-तर्रार आधुनिक जीवन में तनाव प्रबंधन और भावनात्मक कल्याण को बढ़ावा देने के लिए प्रभावी उपकरण प्रदान कर सकते हैं।
3. सामाजिक जुड़ाव: विवेकानंद द्वारा भक्ति को निस्वार्थ सेवा के साथ एकीकृत करने से आध्यात्मिक साधकों को सामाजिक मुद्दों में सक्रिय रूप से शामिल होने के लिए प्रोत्साहन मिलता है, जिससे अधिक दयालु और न्यायपूर्ण समाज को बढ़ावा मिलता है।
4. भौतिकवाद और आध्यात्मिकता में संतुलन: भौतिकवादी मूल्यों से प्रभावित विश्व में, विवेकानंद का भक्ति योग सांसारिक जिम्मेदारियों का त्याग किए बिना आध्यात्मिक विकास करने का एक तरीका प्रदान करता है।

9.2 दैनिक जीवन में अनुप्रयोग

भक्ति योग के प्रति विवेकानंद का व्यावहारिक दृष्टिकोण इसे दैनिक जीवन में शामिल करने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त बनाता है। यहाँ कुछ तरीके दिए गए हैं जिनसे उनकी शिक्षाओं को आधुनिक संदर्भ में लागू किया जा सकता है:

1. सजग कार्य: अपने पेशे या दैनिक कार्यों के प्रति समर्पण और सेवा का दृष्टिकोण रखना, तथा कार्य को पूजा के रूप में देखना।

2. समावेशी आध्यात्मिकता: अपनी स्वयं की साधना को गहन करते हुए विविध आध्यात्मिक परम्पराओं का सम्मान करना और उनसे सीखना।
3. सचेतन रिश्ते: सभी रिश्तों में प्रेम और करुणा का विकास करना, प्रत्येक व्यक्ति में दिव्यता को देखना।
4. नैतिक उपभोक्तावाद: उपभोग और जीवनशैली में सोच-समझकर चुनाव करना, तथा समस्त सृष्टि में विद्यमान ईश्वर के प्रति समर्पण की अभिव्यक्ति के रूप में दूसरों और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव पर विचार करना।
5. डिजिटल भक्ति: आध्यात्मिक विकास के लिए प्रौद्योगिकी का सावधानीपूर्वक उपयोग करना, जैसे ध्यान के लिए ऐप्स का उपयोग करना या ऑनलाइन आध्यात्मिक समुदायों में भाग लेना।

9.3 भक्ति योग के माध्यम से आधुनिक चुनौतियों का समाधान

भक्ति योग के प्रति विवेकानंद का दृष्टिकोण कई समकालीन चुनौतियों से निपटने के लिए बहुमूल्य अंतर्दृष्टि प्रदान करता है:

1. अलगाव और अकेलापन: बढ़ते सामाजिक अलगाव के इस युग में, विवेकानंद का सार्वभौमिक प्रेम और संपर्क पर जोर, व्यक्तियों को सार्थक संबंध और एक बड़े समूह से जुड़ाव की भावना विकसित करने में मदद कर सकता है।
2. पर्यावरण संकट: समस्त सृष्टि में दिव्यता को देखने की विवेकानंद की शिक्षा प्रकृति के प्रति गहन सम्मान को बढ़ावा दे सकती है तथा पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार व्यवहार को प्रेरित कर सकती है।
3. सामाजिक असमानता: मनुष्य में ईश्वर की सेवा करने का सिद्धांत सामाजिक अन्याय के विरुद्ध कार्रवाई को प्रेरित कर सकता है तथा सभी के लिए समानता और सम्मान को बढ़ावा दे सकता है।
4. धार्मिक संघर्ष: आध्यात्मिकता के प्रति विवेकानंद का समावेशी दृष्टिकोण, सभी धर्मों के सामान्य सार पर बल देते हुए, सांप्रदायिक तनाव को कम करने और अंतर-धार्मिक सद्भाव को बढ़ावा देने में मदद कर सकता है।
5. मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं: भक्ति योग के अभ्यास, जैसे ध्यान और भक्ति गायन, चिंता, अवसाद और अन्य मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियों के प्रबंधन के लिए पूरक दृष्टिकोण के रूप में काम कर सकते हैं।

6. जटिल विश्व में नैतिक दुविधाएं: भक्ति में विवेक और तर्कसंगत सोच पर विवेकानंद का जोर, व्यक्तियों को व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन में जटिल नैतिक मुद्दों से निपटने में मार्गदर्शन कर सकता है।

इन आधुनिक चुनौतियों पर भक्ति योग पर विवेकानंद की शिक्षाओं को लागू करके, व्यक्ति न केवल अपने व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास को बढ़ा सकते हैं, बल्कि समाज और विश्व में भी सकारात्मक योगदान दे सकते हैं।

10. समीक्षा

भक्ति योग की विवेकानंद की व्याख्या व्यापक रूप से प्रभावशाली रही है, लेकिन यह विभिन्न आलोचनाओं का भी विषय रही है। इन आलोचनाओं को समझने से विवेकानंद के योगदान और योग दर्शन के क्षेत्र में चल रही चर्चाओं की अधिक सूक्ष्म समझ मिल सकती है।

10.1 दार्शनिक आलोचना

1. भक्ति और अद्वैतवाद के बीच संबंध: कुछ विद्वानों ने सवाल उठाया है कि क्या विवेकानंद द्वारा अद्वैत वेदांत दर्शन के साथ भक्ति प्रथाओं का एकीकरण दार्शनिक रूप से सुसंगत है। आलोचकों का तर्क है कि भक्ति का विचार भक्त और देवता के बीच द्वैत को दर्शाता है, जो अद्वैत द्वारा प्रस्तुत अद्वैत वास्तविकता के साथ असंगत लगता है।

2. सार्वभौमिकता बनाम विशेषवाद: जबकि विवेकानंद के धर्म के प्रति सार्वभौमिक दृष्टिकोण की इसकी समावेशिता के लिए प्रशंसा की गई है, कुछ लोग तर्क देते हैं कि यह विभिन्न धार्मिक परंपराओं के अनूठे पहलुओं को अति सरलीकृत या कमजोर करने का जोखिम उठाता है।

3. भक्ति में तर्कसंगतता: भक्ति में तर्कसंगत समझ पर विवेकानंद के जोर की प्रशंसा और आलोचना दोनों की गई है। कुछ लोगों का तर्क है कि यह आधुनिक, शिक्षित व्यक्तियों के लिए आध्यात्मिकता को अधिक सुलभ बनाता है, जबकि अन्य का तर्क है कि यह भक्ति के भावनात्मक और सहज पहलुओं को कमजोर करता है।

10.2 सांस्कृतिक और धार्मिक परिप्रेक्ष्य

1. हिंदू अवधारणाओं का पश्चिमीकरण: कुछ परंपरावादियों ने तर्क दिया है कि विवेकानंद की भक्ति योग की प्रस्तुति, पश्चिमी दर्शकों के साथ उनकी बातचीत से प्रभावित होकर, शास्त्रीय हिंदू व्याख्याओं से भटक गई।

2. भारतीय आध्यात्मिकता का प्रतिनिधित्व: पश्चिम में हिंदू धर्म के प्रवक्ता के रूप में विवेकानंद की भूमिका की प्रशंसा और आलोचना दोनों की गई है। कुछ लोगों का तर्क है कि पश्चिमी दर्शकों को आकर्षित करने के लिए भारतीय आध्यात्मिकता का उनका चित्रण अति सरलीकृत या रोमांटिक था।

3. लिंग और जाति संबंधी दृष्टिकोण: जबकि विवेकानंद ने सामाजिक सुधार की वकालत की, कुछ आधुनिक विद्वानों ने लिंग और जाति पर उनके विचारों की आलोचनात्मक जांच की, और तर्क दिया कि वे अपने समय के सामाजिक संदर्भ तक ही सीमित थे।

4. अंतर-धार्मिक संवाद: अंतर-धार्मिक समझ के प्रति विवेकानंद का दृष्टिकोण, अपने समय के लिए अग्रणी होने के साथ-साथ, इसकी समावेशिता के लिए प्रशंसा की गई है, तथा धार्मिक परंपराओं के बीच महत्वपूर्ण अंतरों को नजरअंदाज करने के लिए इसकी आलोचना भी की गई है। ये बहसों और आलोचनाएं विभिन्न संदर्भों में आध्यात्मिक शिक्षाओं की व्याख्या और अनुप्रयोग की जटिल प्रकृति को उजागर करते हैं। वे आध्यात्मिकता, धर्म और सामाजिक सुधार के बारे में समकालीन चर्चाओं में विवेकानंद के विचारों की निरंतर प्रासंगिकता को भी रेखांकित करते हैं।

11. तुलनात्मक विश्लेषण

भक्ति योग में विवेकानंद के अद्वितीय योगदान को गहराई से समझने के लिए, उनके दृष्टिकोण की अन्य व्याख्याओं और परंपराओं के साथ तुलना करना उपयोगी होगा।

11.1 विवेकानंद का भक्ति योग बनाम पारंपरिक भक्ति

1. दार्शनिक ढांचा:

- पारंपरिक भक्ति: प्रायः द्वैतवादी या अद्वैतवादी दर्शन में निहित होती है।
- विवेकानंद: अद्वैत वेदांत के अद्वैतवादी दर्शन के साथ भक्ति को एकीकृत किया।

2. भक्ति की वस्तु:

- पारंपरिक भक्ति: आमतौर पर एक विशिष्ट देवता या ईश्वर के रूप पर केंद्रित होती है।
- विवेकानंद: निराकार परम सत्ता सहित ईश्वर की किसी भी अवधारणा के प्रति समर्पण को प्रोत्साहित किया।

3. अभ्यास:

- पारंपरिक भक्ति: अनुष्ठानों, मंदिर पूजा और विशिष्ट भक्ति प्रथाओं पर जोर।
- विवेकानंद: उन्होंने बाह्य अनुष्ठानों की अपेक्षा आंतरिक दृष्टिकोण पर जोर दिया तथा आधुनिक संदर्भ के लिए पारंपरिक प्रथाओं की पुनर्व्याख्या की।

4. सामाजिक निहितार्थ:

- पारंपरिक भक्ति: विविध, लेकिन अक्सर मौजूदा सामाजिक संरचनाओं को बनाए रखा।
- विवेकानंद: उन्होंने आध्यात्मिक अभ्यास के अभिन्न अंग के रूप में सामाजिक सेवा और सुधार पर जोर दिया।

11.2 विभिन्न धार्मिक परंपराओं में भक्ति योग

1. हिंदू धर्म:

- विभिन्न संप्रदाय जिनका अलग-अलग महत्व है (जैसे, वैष्णववाद, शैववाद)।
 - विवेकानंद का दृष्टिकोण इन विविध परंपराओं को एकीकृत करने का था।
 - 2. सूफी इस्लाम:
 - ईश्वर के प्रति प्रेम और उसके साथ एकता पर जोर देता है।
 - ईश्वर के प्रति तीव्र लालसा पर विवेकानंद के जोर के साथ समानताएं।
 - 3. ईसाई रहस्यवाद:
 - "दिव्य प्रेम" और "ईश्वर से मिलन" जैसी अवधारणाएं भक्ति योग के समानांतर पहलू हैं।
 - विवेकानंद अक्सर भक्ति और ईसाई भक्ति के बीच समानताएं रेखांकित करते थे।
 - 4. बौद्ध भक्ति प्रथाएँ:
 - बौद्ध धर्म के कुछ रूपों में भक्ति तत्व सम्मिलित हैं, विशेष रूप से महायान परम्पराओं में।
 - विवेकानंद ने बौद्ध करुणा और भक्ति के सार्वभौमिक प्रेम के बीच समानताएं देखीं।
- विवेकानंद का अद्वितीय योगदान भक्ति योग को एक सार्वभौमिक मार्ग के रूप में प्रस्तुत करना था, जो सभी धर्मों और संस्कृतियों के लोगों के लिए सुलभ था, साथ ही उन्होंने इसे वेदांत की दार्शनिक गहराई पर आधारित किया।

12. सारांश

स्वामी विवेकानंद की भक्ति योग की व्याख्या भारतीय दर्शन और वैश्विक आध्यात्मिकता दोनों में एक महत्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करती है। पारंपरिक भक्ति प्रथाओं को वेदांत दर्शन के साथ एकीकृत करके, सार्वभौमिक प्रेम और सेवा पर जोर देकर, और भक्ति को सभी के लिए सुलभ मार्ग के रूप में प्रस्तुत करके, विवेकानंद ने आध्यात्मिक अभ्यास के लिए एक रूपरेखा तैयार की जो आधुनिक दुनिया में अत्यधिक प्रासंगिक बनी हुई है।

भक्ति योग पर उनकी शिक्षाएँ दुनिया से जुड़े रहते हुए गहरे आध्यात्मिक अनुभव विकसित करने का एक तरीका प्रदान करती हैं, जो व्यक्तिगत विकास और सामाजिक जिम्मेदारी दोनों को संबोधित करती हैं। ज्ञान, क्रिया और ध्यान के साथ भक्ति का एकीकरण आध्यात्मिक विकास के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है जो विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों को आकर्षित कर सकता है।

जैसा कि हमने इस सामग्री में पता लगाया है, विवेकानंद का भक्ति योग आलोचनाओं और विवादों से रहित नहीं है। ये बहसों विविध सांस्कृतिक संदर्भों में आध्यात्मिक शिक्षाओं की व्याख्या और अनुप्रयोग की जटिलता को उजागर करती हैं। वे आध्यात्मिकता, धर्म और सामाजिक सुधार

के बारे में समकालीन चर्चाओं में विवेकानंद के विचारों की चल रही प्रासंगिकता को भी रेखांकित करते हैं।

आधुनिक साधक के लिए, विवेकानंद का भक्ति योग एक ऐसा मार्ग प्रस्तुत करता है जो परंपरा में गहराई से निहित है और समकालीन जीवन के लिए अनुकूल है। यह प्रेम, करुणा और आंतरिक शांति विकसित करने के लिए साधन प्रदान करता है, साथ ही हमारे समय की चुनौतियों से सक्रिय रूप से निपटने के लिए प्रेरित करता है।

जैसे-जैसे आप अपना अध्ययन और अभ्यास जारी रखते हैं, याद रखें कि भक्ति योग का असली सार सिर्फ बौद्धिक समझ में नहीं, बल्कि अनुभव में निहित है। विवेकानंद ने लगातार सिर्फ सिद्धांत से ज्यादा अभ्यास और अनुभूति के महत्व पर जोर दिया। इस भावना में, आपको इन शिक्षाओं पर गहराई से चिंतन करने, उन्हें अपने दैनिक जीवन में लागू करने और भक्ति की परिवर्तनकारी शक्ति को स्वयं खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

13. बोध - प्रश्न एवं आत्म-मूल्यांकन प्रश्न

1. भक्ति योग के संबंध में विवेकानंद की व्याख्या पारंपरिक दृष्टिकोणों से किस प्रकार भिन्न है?
2. विवेकानंद के अनुसार भक्ति योग और अन्य योग मार्गों के बीच संबंध की व्याख्या करें।
3. भक्ति योग पर विवेकानंद की शिक्षाओं को आधुनिक सामाजिक और पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान के लिए कैसे लागू किया जा सकता है?
4. भक्ति योग के प्रति विवेकानंद के दृष्टिकोण की आलोचनाओं पर चर्चा करें। आप इन आलोचनाओं का जवाब कैसे देंगे?
5. भक्ति योग में विवेकानंद की सार्वभौमिक प्रेम की अवधारणा की तुलना अन्य धार्मिक परंपराओं में समान अवधारणाओं के साथ करें।
6. भक्ति में तर्कसंगतता पर विवेकानंद का जोर भक्ति योग के अभ्यास को कैसे प्रभावित करता है?
7. विशिष्ट उदाहरण देते हुए बताएं कि भक्ति योग की विवेकानंद की व्याख्या को दैनिक जीवन में कैसे अपनाया जा सकता है।
8. धार्मिक संघर्ष और असहिष्णुता के समकालीन मुद्दों को संबोधित करने में भक्ति योग पर विवेकानंद की शिक्षाओं की प्रासंगिकता का विश्लेषण करें।
9. अद्वैत वेदांत दर्शन को भक्ति योग के साथ एकीकृत करने से विवेकानंद की भक्ति की समझ में किस प्रकार योगदान मिलता है?

10. एक व्यक्तिगत परिस्थिति का वर्णन करें जहां आप भक्ति योग पर विवेकानंद की शिक्षाओं को लागू कर सकते हैं, तथा बताएं कि यह आपके दृष्टिकोण और कार्यों को कैसे प्रभावित करेगी।

14. उपयोगी पुस्तकें

1. विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद
2. भक्ति योग - विवेकानंद
3. समकालीन भारतीय दर्शन - बसंत कुमार लाल
4. स्वामी विवेकानंद की सम्पूर्ण कृतियाँ

.....000.....

इकाई 2 -

विवेकानंद का ज्ञान योग

विषयसूची

1. प्रस्तावना
2. उद्देश्य
3. ज्ञान योग को समझना
 - 3.1 परिभाषा और मूल सिद्धांत
 - 3.2 भारतीय दर्शन में ऐतिहासिक संदर्भ
4. विवेकानंद द्वारा ज्ञान योग की व्याख्या
 - 4.1 योग के चार मार्ग
 - 4.2 ज्ञान के मार्ग के रूप में ज्ञान योग
5. विवेकानंद के ज्ञान योग में प्रमुख अवधारणाएँ
 - 5.1 वास्तविकता की प्रकृति
 - 5.2 आत्मा और अनात्मा
 - 5.3 माया और भ्रम
 - 5.4 ब्रह्म की अवधारणा
6. ज्ञान योग में अभ्यास और विधियाँ
 - 6.1 आत्म-जांच
 - 6.2 ध्यान और चिंतन
 - 6.3 शास्त्रों का अध्ययन
7. ज्ञान योग पर विवेकानंद की शिक्षाएँ
 - 7.1 व्याख्यान और लेखन
 - 7.2 प्रमुख उद्धरण और उनकी व्याख्याएँ
8. आधुनिक समय में ज्ञान योग की प्रासंगिकता
 - 8.1 दैनिक जीवन में अनुप्रयोग
 - 8.2 ज्ञान योग और मानसिक स्वास्थ्य
 - 8.3 आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में ज्ञान योग
9. आलोचनाएँ और समीक्षा
10. अन्य योगिक मार्गों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण
11. सारांश

12. बोध, मूल्यांकन प्रश्न
13. उपयोगी पुस्तकें
14. पारिभाषिक शब्दावली

-----0000-----

1. प्रस्तावना

स्वामी विवेकानंद की ज्ञान योग की व्याख्या और शिक्षाओं पर इस स्व-अधिगम सामग्री (एस.एल.एम) में चर्चा की गयी है। यह पाठ्य सामग्री एमए दर्शनशास्त्र के छात्रों के लिए डिज़ाइन की गई है जो इस गहन आध्यात्मिक और दार्शनिक परंपरा की अपनी समझ को गहरा करना चाहते हैं।

ज्ञान योग, जिसे अक्सर "ज्ञान का मार्ग" या "बुद्धि का योग" के रूप में समझा जाता है, हिंदू दर्शन में वर्णित चार मुख्य योगिक मार्गों में से एक है। यह वास्तविकता की सच्ची प्रकृति को समझने और मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए बुद्धि और तर्क के उपयोग पर जोर देता है। पश्चिमी दुनिया में हिंदू दर्शन को पेश करने वाले प्रमुख व्यक्ति स्वामी विवेकानंद ने पूर्वी और पश्चिमी दोनों दर्शकों के लिए ज्ञान योग को लोकप्रिय बनाने और व्याख्या करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस एसएलएम में, हम ज्ञान योग, इसके मूल सिद्धांतों, प्रथाओं और समकालीन समय में प्रासंगिकता पर विवेकानंद के अनूठे दृष्टिकोण का पता लगाएंगे। हम इस मार्ग के दार्शनिक आधारों पर गहराई से विचार करेंगे, अन्य योगिक परंपराओं के साथ इसके संबंधों की जांच करेंगे और दैनिक जीवन में इसके व्यावहारिक अनुप्रयोगों पर विचार करेंगे। जैसे-जैसे आप इस सामग्री में आगे बढ़ेंगे, आपको विभिन्न अवधारणाएँ मिलेंगी, जिनमें से कुछ चुनौतीपूर्ण हो सकती हैं। प्रत्येक अनुभाग को आत्मसात करने और उस पर विचार करने के लिए अपना समय लें। अंत में स्व-मूल्यांकन प्रश्न आपकी समझ का आकलन करने और मुख्य बिंदुओं को सुदृढ़ करने में आपकी सहायता करेंगे। आइये, विवेकानंद के ज्ञान योग की गहराई को जानने के लिए इस बौद्धिक और आध्यात्मिक यात्रा पर चलें।

2. उद्देश्य

इस स्व-अधिगम सामग्री के अंत तक, आप निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम हो जाएंगे:

1. स्वामी विवेकानंद के जीवन और भारतीय दर्शन एवं विश्व आध्यात्म में उनके योगदान को समझें।
2. ज्ञान योग को परिभाषित करें और भारतीय दर्शन के व्यापक संदर्भ में इसके मूल सिद्धांतों की व्याख्या करें।
3. विवेकानंद की ज्ञान योग की अद्वितीय व्याख्या और अन्य योगिक मार्गों के साथ उसके संबंध का विश्लेषण करें।
4. विवेकानंद के ज्ञान योग में प्रमुख अवधारणाओं, जैसे वास्तविकता की प्रकृति, आत्मा, माया और ब्रह्म, की पहचान करें और उनकी व्याख्या करें।
5. आध्यात्मिक प्राप्ति के लिए ज्ञान योग में प्रयुक्त मुख्य अभ्यासों एवं विधियों का वर्णन कीजिए।

6. विवेकानंद के व्याख्यानो और लेखों के माध्यम से ज्ञान योग पर उनकी शिक्षाओं की आलोचनात्मक जांच करें।
7. आधुनिक समय में ज्ञान योग की प्रासंगिकता और अनुप्रयोग का मूल्यांकन करें, जिसमें मानसिक स्वास्थ्य और दैनिक जीवन पर इसके संभावित प्रभाव भी शामिल हैं।
8. ज्ञान योग की तुलना अन्य योगिक मार्गों और दार्शनिक प्रणालियों से करें।
9. ज्ञान योग के मार्ग का अनुसरण करने वाले अभ्यासियों के केस अध्ययनों का विश्लेषण करें।
10. ज्ञान योग और विवेकानंद के दर्शन से संबंधित शब्दों की एक व्यापक शब्दावली विकसित करें।

ये उद्देश्य इस SLM में आपकी सीखने की प्रक्रिया का मार्गदर्शन करेंगे। विवेकानंद के ज्ञान योग की अपनी समझ में प्रगति सुनिश्चित करने के लिए नियमित रूप से उनका संदर्भ लें।

3. ज्ञान योग को समझना

3.1 परिभाषा और मूल सिद्धांत

ज्ञान योग, जिसे अक्सर "ज्ञान का मार्ग" या "बुद्धि का योग" के रूप में अनुवादित किया जाता है, हिंदू दर्शन में भक्ति योग (भक्ति का मार्ग), कर्म योग (निस्वार्थ कर्म का मार्ग) और राज योग (ध्यान का मार्ग) के साथ चार मुख्य आध्यात्मिक मार्गों में से एक है। ज्ञान योग वास्तविकता की सच्ची प्रकृति को समझने और आध्यात्मिक मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए बुद्धि और तर्कसंगत जांच के उपयोग पर जोर देता है।

"ज्ञान" शब्द संस्कृत मूल "ज्ञान" से आया है, जिसका अर्थ है "जानना।" योग दर्शन के संदर्भ में, ज्ञान एक विशेष प्रकार के ज्ञान या बुद्धि को संदर्भित करता है जो आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है। यह केवल बौद्धिक ज्ञान या जानकारी नहीं है, बल्कि एक परिवर्तनकारी समझ है जो वास्तविकता के बारे में किसी की धारणा को मौलिक रूप से बदल देती है।

ज्ञान योग के मूल सिद्धांतों में शामिल हैं:

1. आत्म-जांच (आत्म विचार): अपनी प्रकृति और वास्तविकता की प्रकृति पर लगातार सवाल उठाने का अभ्यास।
2. विवेक: वास्तविक और अवास्तविक, स्थायी और अस्थायी के बीच अंतर करने की क्षमता।
3. वैराग्य: सांसारिक वस्तुओं और अनुभवों से अनासक्ति की स्थिति विकसित करना।
4. छह गुण (शत्सम्पत):
 - समा (मन की शांति)
 - दम (इन्द्रियों पर नियंत्रण)
 - उपरति (सांसारिक गतिविधियों से विमुख होना)
 - तितिक्षा (धीरज)
 - श्रद्धा (विश्वास)

o समाधान (एकाग्रता)

5. मुक्ति की तीव्र लालसा (मुमुक्षुत्व): आध्यात्मिक स्वतंत्रता की तीव्र इच्छा।
6. शास्त्रों का अध्ययन (स्वाध्याय): विशेषकर उपनिषद, भगवद्गीता और अन्य वेदांतिक ग्रंथ।
7. चिंतन और ध्यान: शिक्षाओं और स्वयं के अनुभवों पर गहन चिंतन।
8. प्रत्यक्ष बोध: अंतिम लक्ष्य बौद्धिक समझ नहीं बल्कि अपने वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्ष, अनुभवात्मक ज्ञान है।

ज्ञान योग का मानना है कि अज्ञान (अविद्या) सभी दुखों और बंधनों का मूल कारण है। सच्चे ज्ञान (विद्या) की खेती करके, व्यक्ति इस अज्ञानता पर विजय प्राप्त कर सकता है और मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस मार्ग को अक्सर सबसे चुनौतीपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसके लिए तीव्र बुद्धि, दृढ़ इच्छाशक्ति और अहंकार की सीमाओं को पार करने की क्षमता की आवश्यकता होती है।

3.2 भारतीय दर्शन में ऐतिहासिक संदर्भ

ज्ञान योग को पूरी तरह से समझने के लिए, भारतीय दर्शन में इसके ऐतिहासिक संदर्भ को समझना महत्वपूर्ण है। ज्ञान योग की जड़ें प्राचीन उपनिषदों में पाई जा सकती हैं, जो हिंदू धर्म का दार्शनिक आधार हैं।

800-200 ईसा पूर्व के बीच रचित उपनिषद मुक्ति प्राप्त करने में ज्ञान के महत्व पर जोर देते हैं। वे ब्रह्म (परम वास्तविकता), आत्मा (व्यक्तिगत स्व) और दोनों के बीच संबंध जैसी प्रमुख अवधारणाओं का परिचय देते हैं। प्रसिद्ध उपनिषदिक उक्ति "तत् त्वम् असि" (वह तू ही है) ज्ञान योग के सार को समाहित करती है - यह अहसास कि व्यक्तिगत स्व सर्वोच्च वास्तविकता के समान है।

ज्ञान योग को एक अलग मार्ग के रूप में व्यवस्थित करने का श्रेय भगवद् गीता को दिया जा सकता है, जिसकी रचना लगभग 200 ईसा पूर्व से 200 ईसवी के बीच हुई थी। गीता में भगवान कृष्ण ने ज्ञान योग को भक्ति योग और कर्म योग के साथ मुक्ति के प्राथमिक मार्गों में से एक बताया है। गीता ज्ञान के साथ वैराग्य और निस्वार्थ कर्म के महत्व पर जोर देती है।

अद्वैत वेदांत के दार्शनिक संप्रदाय ने, विशेष रूप से 8 वीं शताब्दी के दार्शनिक आदि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित, ज्ञान योग की अवधारणाओं को और विकसित और परिष्कृत किया। शंकराचार्य द्वारा उपनिषदों की अद्वैतवादी व्याख्या ने ज्ञान के मार्ग को मुक्ति के सर्वोच्च साधन के रूप में महत्व दिया।

भारतीय इतिहास में विभिन्न दार्शनिकों और आध्यात्मिक नेताओं ने ज्ञान योग के विकास में योगदान दिया है। उल्लेखनीय हस्तियों में शामिल हैं:

1. रमण महर्षि (1879-1950): आत्म-साक्षात्कार के सीधे मार्ग के रूप में आत्म-जांच पर जोर देने के लिए जाने जाते हैं।
2. श्री अरबिंदो (1872-1950): उन्होंने अपने एकात्म योग प्रणाली में ज्ञान योग को अन्य योगिक मार्गों के साथ एकीकृत किया।

3. निसर्गदत्त महाराज (1897-1981): उन्होंने ज्ञान योग का एक रूप सिखाया जो "मैं कौन हूँ?" प्रश्न पर केंद्रित था।

इसी समृद्ध दार्शनिक परंपरा के अंतर्गत स्वामी विवेकानंद का उदय हुआ, जिन्होंने ज्ञान योग की अपनी अनूठी व्याख्या और प्रस्तुति पूर्वी और पश्चिमी दोनों श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत की।

4. विवेकानंद की ज्ञान योग की व्याख्या

4.1 योग के चार मार्ग

स्वामी विवेकानंद ने अपनी शिक्षाओं में अक्सर योग के चार मुख्य मार्गों के बारे में बात की: भक्ति योग, कर्म योग, राज योग और ज्ञान योग। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ये मार्ग परस्पर अनन्य नहीं हैं, बल्कि आध्यात्मिक प्राप्ति के पूरक दृष्टिकोण हैं। विवेकानंद के अनुसार, व्यक्ति अपने स्वभाव और परिस्थितियों के आधार पर स्वाभाविक रूप से एक मार्ग या दूसरे की ओर प्रवृत्त हो सकते हैं, लेकिन अंतिम प्राप्ति में अक्सर सभी चार मार्गों के तत्व शामिल होते हैं।

1. भक्ति योग: भक्ति का मार्ग, जो ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति विकसित करने पर केंद्रित है।
 2. कर्म योग: निःस्वार्थ कर्म का मार्ग, जो परिणामों की आसक्ति के बिना अपने कर्तव्यों के निष्पादन पर केंद्रित है।
 3. राज योग: ध्यान और मन पर नियंत्रण का मार्ग, जो प्रायः पतंजलि द्वारा बताए गए आठ अंगों वाली प्रणाली से जुड़ा हुआ है।
 4. ज्ञान योग: ज्ञान और बुद्धि का मार्ग, बौद्धिक जांच और आत्म-विश्लेषण पर जोर देता है।
- विवेकानंद इन मार्गों को एक ही परम सत्य के विभिन्न पहलुओं के रूप में देखते थे। इस बात को स्पष्ट करने के लिए वे अक्सर एक पहाड़ की उपमा का उपयोग करते थे जिसके एक ही शिखर तक जाने वाले कई रास्ते होते हैं। उनका तर्क था कि प्रत्येक मार्ग अलग-अलग स्वभाव के अनुकूल है और आत्म-साक्षात्कार के एक ही लक्ष्य तक ले जा सकता है।

4.2 ज्ञान का मार्ग: ज्ञान योग

विवेकानंद की व्याख्या में, ज्ञान योग ज्ञान और तर्क के मार्ग के रूप में सामने आता है। उन्होंने इसे सबसे चुनौतीपूर्ण मार्ग बताया, जो उन लोगों के लिए उपयुक्त है जिनके पास मजबूत बुद्धि है और जो गहरी मान्यताओं पर सवाल उठाने का साहस रखते हैं। ज्ञान योग के प्रति विवेकानंद के दृष्टिकोण की कई प्रमुख विशेषताएँ थीं:

1. कारण और तर्क पर जोर: विवेकानंद ने जोर देकर कहा कि ज्ञान योग में अंधविश्वास का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने अभ्यासियों को धार्मिक हठधर्मिता और आध्यात्मिक शिक्षाओं सहित हर चीज पर सवाल उठाने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके शब्दों में, "किसी भी चीज़ पर सिर्फ इसलिए विश्वास न करें क्योंकि आपने उसे सुना है। किसी भी चीज़ पर सिर्फ इसलिए विश्वास न करें क्योंकि वह कई लोगों द्वारा कही और अफवाह फैलाई गई है।"

2. विज्ञान और अध्यात्म का एकीकरण: कुछ पारंपरिक व्याख्याओं के विपरीत, जो विज्ञान और अध्यात्म को विरोधी ताकतों के रूप में देखते थे, विवेकानंद उन्हें पूरक के रूप में देखते थे। उनका मानना था कि वैज्ञानिक जांच आध्यात्मिक समझ का समर्थन और वृद्धि कर सकती है।

3. सार्वभौमिक प्रयोज्यता: विवेकानंद ने ज्ञान योग को केवल हिंदू अभ्यास के रूप में नहीं बल्कि सत्य के लिए एक सार्वभौमिक मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने सांस्कृतिक और धार्मिक बारीकियों को अलग करके मुख्य दार्शनिक सिद्धांतों को इस तरह से प्रस्तुत किया कि वे सभी पृष्ठभूमि के लोगों को आकर्षित कर सकें।

4. व्यावहारिक अनुप्रयोग: ज्ञान योग के बौद्धिक पहलुओं पर जोर देते हुए विवेकानंद ने व्यावहारिक अनुप्रयोग के महत्व पर भी जोर दिया। उन्होंने सिखाया कि सच्चा ज्ञान व्यक्ति के जीवन और व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहिए।

5. आत्म-साक्षात्कार ही अंतिम लक्ष्य है: विवेकानंद के लिए ज्ञान योग का अंतिम लक्ष्य केवल बौद्धिक समझ नहीं बल्कि अपने सच्चे स्वरूप का प्रत्यक्ष बोध था। उन्होंने इसे अपने और सभी प्राणियों के भीतर दिव्यता की पहचान के रूप में वर्णित किया।

6. अन्य मार्गों के साथ संश्लेषण: ज्ञान योग को एक अलग मार्ग के रूप में प्रस्तुत करते हुए, विवेकानंद अक्सर अन्य योगिक मार्गों के साथ इसके एकीकरण के बारे में बात करते थे। उनका मानना था कि सर्वोच्च प्राप्ति में भक्ति का प्रेम, कर्म की क्रिया, राज का ध्यान और ज्ञान का ज्ञान शामिल है।

7. सामाजिक सुधार: विवेकानंद की व्याख्या की खासियत यह थी कि ज्ञान योग के माध्यम से प्राप्त ज्ञान का उपयोग समाज की बेहतरी के लिए किया जाना चाहिए। उनका मानना था कि सच्चा आध्यात्मिक ज्ञान मानवता के प्रति करुणा और सेवा की ओर ले जाना चाहिए।

विवेकानंद की ज्ञान योग की व्याख्या कई मायनों में क्रांतिकारी थी। उन्होंने प्राचीन ज्ञान को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया, जिससे यह वैश्विक दर्शकों के लिए सुलभ और प्रासंगिक बन गया। उनकी शिक्षाएँ दुनिया भर के आध्यात्मिक साधकों और दार्शनिकों को प्रभावित करती हैं, पूर्वी और पश्चिमी विचारों के बीच की खाई को पाटती हैं।

5. विवेकानंद के ज्ञान योग में प्रमुख अवधारणाएँ

विवेकानंद के ज्ञान योग की व्याख्या में वेदांत दर्शन की कई मौलिक अवधारणाएँ शामिल हैं। ज्ञान के मार्ग पर उनकी शिक्षाओं के सार को समझने के लिए इन अवधारणाओं को समझना बहुत ज़रूरी है।

5.1 वास्तविकता की प्रकृति

विवेकानंद के ज्ञान योग में वास्तविकता की प्रकृति को समझना सर्वोपरि है। वह वास्तविकता के बारे में एक अद्वैतवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं, जो यह मानता है कि केवल एक ही परम वास्तविकता है, जिसे अक्सर ब्रह्म कहा जाता है।

विवेकानंद की शिक्षाओं में वास्तविकता की प्रकृति के बारे में मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. अस्तित्व की एकता: विवेकानंद ने इस बात पर जोर दिया कि सभी अस्तित्व मूल रूप से एक हैं। दुनिया में हम जो विविधता देखते हैं, वह इसी एक वास्तविकता की अभिव्यक्ति है।

2. द्वैत का भ्रम: पर्यवेक्षक और निरीक्षित, विषय और वस्तु के बीच अलगाव की धारणा को एक भ्रम (माया) माना जाता है जो समस्त अस्तित्व की अंतर्निहित एकता को अस्पष्ट कर देता है।

3. चेतना के रूप में वास्तविकता: विवेकानंद ने वेदांत परंपरा का पालन करते हुए परम वास्तविकता को शुद्ध चेतना (चित) के रूप में वर्णित किया। यह चेतना कोई गुण नहीं बल्कि वास्तविकता का सार है।

4. वास्तविकता की अपरिवर्तनीय प्रकृति: जबकि घटनाओं की दुनिया निरंतर परिवर्तनशील प्रतीत होती है, अंतर्निहित वास्तविकता को अपरिवर्तनीय और शाश्वत बताया गया है।

5. अन्तर्निहितता और पारलौकिकता: विवेकानंद ने सिखाया कि परम वास्तविकता अन्तर्निहित (सभी चीजों के भीतर मौजूद) और पारलौकिकता (सभी चीजों से परे) दोनों है।

इस तरह से वास्तविकता की प्रकृति को समझना ज्ञान योग में केवल एक बौद्धिक अभ्यास नहीं है। यह आत्म-साक्षात्कार की ओर अभ्यासकर्ता की यात्रा का आधार बनता है।

5.2 आत्म और अनात्मा

विवेकानंद के ज्ञान योग का एक केंद्रीय सिद्धांत सच्चे स्व (आत्मा) और गैर-स्व के बीच का अंतर है। यह अवधारणा आत्म-जांच और विवेक के अभ्यास के लिए महत्वपूर्ण है।

इस अवधारणा के प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं:

1. आत्मा ही सच्चा स्व है: विवेकानंद ने सिखाया कि सच्चा स्व या आत्मा परम वास्तविकता (ब्रह्म) के समान है। यह शुद्ध चेतना है, अपरिवर्तनीय है और सभी गुणों से परे है।

2. अ-आत्म: वह सब कुछ जो सच्चा आत्म नहीं है, अ-आत्म माना जाता है। इसमें शरीर, मन, भावनाएँ और यहाँ तक कि व्यक्तित्व या अहंकार की भावना भी शामिल है।

3. गलत पहचान: इस दृष्टिकोण के अनुसार, मानव दुख की जड़, गैर-स्वयं को स्वयं के रूप में गलत पहचानना है। हम आम तौर पर अपने शरीर, विचारों और व्यक्तित्वों से अपनी पहचान बनाते हैं, और इन्हें अपनी असली प्रकृति समझ लेते हैं।

4. आत्म-जांच: ज्ञान योग में निरंतर आत्म-जांच की प्रक्रिया शामिल है, जिसमें सच्चे आत्म और अ-आत्म के बीच अंतर करने के लिए "मैं कौन हूँ?" का प्रश्न पूछा जाता है।

5. आत्म की परतें: विवेकानंद अक्सर मानव को विभिन्न परतों या आवरणों (कोशों) से बना बताते थे, जिसके केन्द्र में सच्ची आत्मा होती है, जो मन, ऊर्जा और भौतिक शरीर की परतों से ढकी होती है।

आत्म और अनात्मा के बीच अंतर को समझना और महसूस करना, मुक्ति के लिए ज्ञान योग पथ का एक प्रमुख पहलू है।

5.3 माया और भ्रम

माया की अवधारणा विवेकानंद के ज्ञान योग की व्याख्या का अभिन्न अंग है। माया का अक्सर "भ्रम" के रूप में अनुवाद किया जाता है, लेकिन यह एक जटिल अवधारणा है जिसे सावधानीपूर्वक समझने की आवश्यकता है।

विवेकानंद की शिक्षाओं में माया के बारे में मुख्य बातें:

1. परिभाषा: माया वह शक्ति है जो एक परम वास्तविकता में अनेकता और पृथक्करण का आभास पैदा करती है।
 2. अस्तित्वहीनता नहीं: विवेकानंद ने इस बात पर जोर दिया कि माया महज अस्तित्वहीनता नहीं है। यह एक तरह की सापेक्ष वास्तविकता है, जैसे मंद प्रकाश में रस्सी में सांप का दिखना।
 3. ब्रह्मांडीय भ्रम: ब्रह्मांडीय पैमाने पर, माया वह है जो असंख्य रूपों और घटनाओं के साथ ब्रह्मांड की उपस्थिति का निर्माण करती है।
 4. व्यक्तिगत भ्रम: व्यक्तिगत स्तर पर, माया वह है जो हमें शरीर, मन और अहंकार के साथ गलत पहचान कराती है, जिससे हम आत्मा के रूप में अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाते हैं।
 5. अज्ञानता का पर्दा: माया को अक्सर एक ऐसे परदे के रूप में वर्णित किया जाता है जो परम वास्तविकता की हमारी धारणा को अस्पष्ट करता है। यह वह शक्ति है जो अनंत को सीमित बना देती है।
 6. न वास्तविक, न अवास्तविक: अद्वैत परंपरा का अनुसरण करते हुए विवेकानंद ने माया को न तो वास्तविक बताया (क्योंकि इसका पूर्ण अस्तित्व नहीं है) और न ही असत्य (क्योंकि इसका प्रत्यक्ष अस्तित्व है)।
 7. माया से परे जाना: ज्ञान योग का लक्ष्य माया के भ्रम को देखना और अंतर्निहित वास्तविकता को समझना है। यह माया को नष्ट करने के बारे में नहीं है, बल्कि इसकी वास्तविक प्रकृति को समझने के बारे में है।
- ज्ञान योग में माया को समझना बहुत ज़रूरी है क्योंकि यह बताता है कि जब परम सत्य अद्वैत है तो हम बहुलता और अलगाव क्यों महसूस करते हैं। यह यह समझने के लिए एक रूपरेखा भी प्रदान करता है कि हमेशा मौजूद लेकिन अस्पष्ट सत्य को समझने के लिए आध्यात्मिक अभ्यास क्यों आवश्यक है।

5.4 ब्रह्म की अवधारणा

ब्रह्म वेदांत दर्शन में एक मौलिक अवधारणा है और विवेकानंद की ज्ञान योग की शिक्षाओं में एक केंद्रीय भूमिका निभाता है। यह परम वास्तविकता या परम सत्य का प्रतिनिधित्व करता है।

विवेकानंद के ज्ञान योग में ब्रह्म के प्रमुख पहलू:

1. परिभाषा: ब्रह्म को अनंत, अपरिवर्तनीय और शाश्वत वास्तविकता के रूप में वर्णित किया गया है जो समस्त अस्तित्व का आधार है।
2. गुणों से परे: विवेकानंद ने इस बात पर बल दिया कि ब्रह्म सभी गुणों (निर्गुण) से परे है और मानव मन द्वारा उसे पूरी तरह से वर्णित या समझा नहीं जा सकता।
3. सत्-चित्-आनंद: यद्यपि ब्रह्म गुणों से परे है, फिर भी इसे प्रायः सत् (अस्तित्व), चित् (चेतना) और आनंद (आनंद) के रूप में वर्णित किया जाता है।
4. आत्मा के साथ तादात्म्य: अद्वैत वेदांत का एक प्रमुख सिद्धांत, जिसे विवेकानंद ने सिखाया, यह है कि आत्मा (व्यक्तिगत आत्म) ब्रह्म (सार्वभौमिक आत्म) के समान है।

5. अन्तर्निहितता: विवेकानंद ने सिखाया कि ब्रह्म कोई दूर की चीज़ नहीं है बल्कि सभी चीज़ों में मौजूद है। ब्रह्मांड की हर चीज़ ब्रह्म की अभिव्यक्ति है।

6. बोध का लक्ष्य: ज्ञान योग में, अंतिम लक्ष्य ब्रह्म के साथ अपनी पहचान का एहसास करना है। इस बोध को मुक्ति (मोक्ष) का सर्वोच्च रूप माना जाता है।

7. अद्वैत: ब्रह्म की अवधारणा अद्वैत (अद्वैत) को दर्शाती है। व्यक्ति और ब्रह्मांड के बीच, विषय और वस्तु के बीच कोई मौलिक अलगाव नहीं है।

8. व्यक्तिगत ईश्वर से परे: यद्यपि विवेकानंद भक्ति प्रथाओं का सम्मान करते थे, उन्होंने इस बात पर बल दिया कि परम वास्तविकता (ब्रह्म) व्यक्तिगत ईश्वर की अवधारणा से परे है।

ज्ञान योग में ब्रह्म को समझना सिर्फ बौद्धिक अभ्यास नहीं है। अभ्यासकर्ता को ब्रह्म की प्रकृति पर गहराई से चिंतन करने और इस परम सत्य की प्रत्यक्ष प्राप्ति की कोशिश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

6. ज्ञान योग में अभ्यास और विधियाँ

विवेकानंद ने ज्ञान योग के मार्ग पर चलने वालों के लिए कई अभ्यास और विधियाँ बताईं। ये अभ्यास विवेक विकसित करने, समझ को गहरा करने और अंततः आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं।

6.1 आत्म-जांच

आत्म-जांच (आत्म विचार) ज्ञान योग में एक आधारशिला अभ्यास है। इसमें व्यक्ति की अपनी प्रकृति और वास्तविकता की प्रकृति पर लगातार सवाल उठाना शामिल है।

आत्म-जांच के प्रमुख पहलू:

1. प्रश्न "मैं कौन हूँ?": यह मूलभूत प्रश्न आत्म-जांच के केंद्र में है। इसका उत्तर बौद्धिक रूप से नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि यह व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप की गहन जांच की ओर ले जाना चाहिए।

2. नकार (नेति नेति): इस अभ्यास में व्यवस्थित रूप से उन सभी चीज़ों को नकारना शामिल है जो स्वयं नहीं हैं। "नेति नेति" का अर्थ है "यह नहीं, यह नहीं।" अभ्यासकर्ता अनुभव के विभिन्न पहलुओं (विचार, संवेदनाएँ, भावनाएँ) का अवलोकन करता है और पहचानता है कि ये वास्तविक स्वयं नहीं हैं।

3. साक्षीभाव: अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को बिना उनसे पहचाने देखने की क्षमता विकसित करना। इससे यह समझ विकसित होती है कि व्यक्ति साक्षी चेतना है, चेतना की विषय-वस्तु नहीं।

4. विवेक: सत्य और अवास्तविक, स्थायी और अनित्य के बीच निरंतर विवेक करना। इससे विवेक (विवेक) विकसित होता है, जो ज्ञान योग का एक प्रमुख गुण है।

5. दृढ़ता: विवेकानंद ने लगातार जांच की आवश्यकता पर जोर दिया। यह एक बार का सवाल नहीं है बल्कि जांच की एक सतत प्रक्रिया है।

6.2 ध्यान और चिंतन

यद्यपि ध्यान और चिंतन को प्रायः राजयोग से अधिक जोड़ा जाता है, फिर भी ज्ञान योग में भी ध्यान और चिंतन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रमुख अभ्यासः

1. विश्लेषणात्मक ध्यान: इसमें स्वयं की प्रकृति, चेतना और वास्तविकता जैसी वेदान्तिक अवधारणाओं पर गहन चिंतन करना शामिल है।
2. मंत्र ध्यान: "अहं ब्रह्मास्मि" (मैं ब्रह्म हूँ) या "तत् त्वं असि" (वह तुम हो) जैसे मंत्रों का प्रयोग व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप की समझ को सुदृढ़ करने के लिए किया जाता है।
3. माइंडफुलनेस: मन के भ्रमों को देखने के लिए पल-पल की जागरूकता विकसित करना।
4. शिक्षाओं पर चिंतन: शास्त्रीय शिक्षाओं या ऋषियों के वचनों पर गहराई से चिंतन करना।
5. आत्म-स्मरण: दैनिक गतिविधियों के बीच अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति निरंतर जागरूकता विकसित करना।

6.3 धर्मशास्त्रों का अध्ययन

विवेकानंद ने वेदांत ग्रंथों, विशेषकर उपनिषदों और भगवद् गीता के अध्ययन के महत्व पर बल दिया।

धर्मशास्त्र अध्ययन के मुख्य पहलू:

1. आलोचनात्मक विश्लेषण: विवेकानंद ने शास्त्रों के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया, न कि अंध-स्वीकृति को। उनका मानना था कि शब्दों के पीछे छिपे भाव को समझना चाहिए।
2. चिंतन: अध्ययन के बाद, शिक्षाओं पर गहराई से चिंतन करना चाहिए और उनके अर्थ पर विचार करना चाहिए।
3. शास्त्रों से प्राप्त ज्ञान को दैनिक जीवन में लागू किया जाना चाहिए। विवेकानंद केवल सैद्धांतिक ज्ञान के खिलाफ थे।
4. चर्चा: आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले अन्य लोगों के साथ धर्मशास्त्रीय शिक्षाओं के बारे में चर्चा करने से समझ गहरी हो सकती है।
5. संश्लेषण: विवेकानंद ने व्यापक समझ हासिल करने के लिए विभिन्न धर्मग्रंथों और परंपराओं से अंतर्दृष्टि को संश्लेषित करने को प्रोत्साहित किया।

6.4 सद्गुणों का विकास

विवेकानंद ने उच्चतर ज्ञान के लिए मन को तैयार करने हेतु कुछ गुणों को विकसित करने के महत्व पर बल दिया।

प्रमुख गुणः

1. विवेक: वास्तविक और अवास्तविक, शाश्वत और अस्थायी के बीच अंतर करने की क्षमता।
2. वैराग्य: सांसारिक वस्तुओं और अनुभवों से वैराग्य विकसित करना।
3. शतसम्पत्त (छह गुण):
 - सम (मन पर नियंत्रण)

- दम (इन्द्रियों पर नियंत्रण)
 - उपरति (वापसी)
 - तितिक्षा (धीरज)
 - श्रद्धा (विश्वास)
 - समाधान (एकाग्रता)
4. मुमुक्षुत्व: मुक्ति की तीव्र लालसा।
 5. विनम्रता: अपने ज्ञान की सीमाओं को पहचानना और सीखने के लिए खुला रहना।
 6. करुणा: सभी प्राणियों की एकता को समझना और सभी के प्रति करुणा महसूस करना।

6.5 व्यावहारिक अनुप्रयोग

विवेकानंद ने इस बात पर जोर दिया कि ज्ञान योग केवल सैद्धांतिक ज्ञान नहीं है, बल्कि व्यावहारिक अनुभूति है।

व्यावहारिक अनुप्रयोग के मुख्य पहलू:

1. सत्य का जीवन जीना: अपने द्वारा अनुभव किये गए सर्वोच्च सत्य के अनुसार जीवन जीने का प्रयास करना।
2. सेवा: अपने ज्ञान और समझ का उपयोग दूसरों की सेवा करने तथा समाज में योगदान देने के लिए करना।
3. सचेतन जीवन: दैनिक जीवन के हर पहलू में जागरूकता और विवेक लाना।
4. आत्म-चिंतन: वेदान्तिक शिक्षाओं के प्रकाश में अपने विचारों, शब्दों और कार्यों का नियमित परीक्षण करना।
5. निरंतर अभ्यास: प्रत्येक अनुभव को गहन समझ और अनुभूति के अवसर के रूप में लेना।

ये अभ्यास और विधियाँ स्वामी विवेकानंद द्वारा सिखाए गए ज्ञान योग का मूल हैं। इन्हें ईमानदारी, दृढ़ता और उचित मार्गदर्शन के साथ किया जाना चाहिए ताकि अभ्यासकर्ता को आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाया जा सके।

7. ज्ञान योग पर विवेकानंद की शिक्षाएँ

स्वामी विवेकानंद की ज्ञान योग पर शिक्षाएँ कई मायनों में क्रांतिकारी थीं। उन्होंने प्राचीन वेदांतिक ज्ञान को आधुनिक, सुलभ प्रारूप में प्रस्तुत किया, जिससे यह पूर्वी और पश्चिमी दोनों श्रोताओं के लिए प्रासंगिक बन गया। उनके व्याख्यान और लेखन दुनिया भर के साधकों को प्रेरित करते रहते हैं।

7.1 व्याख्यान और लेखन

ज्ञान योग पर विवेकानंद की शिक्षाएँ विभिन्न स्रोतों में पाई जा सकती हैं:

1. "ज्ञान योग": विवेकानंद के व्याख्यानों से संकलित यह पुस्तक ज्ञान के मार्ग पर उनकी शिक्षाओं का व्यापक अवलोकन प्रदान करती है।
2. "स्वामी विवेकानंद की सम्पूर्ण कृतियाँ": इस बहु-खंडीय सेट में विवेकानंद के सभी रिकॉर्ड किए गए व्याख्यान, लेख और पत्र शामिल हैं, जिनमें ज्ञान योग पर भी कई लेख शामिल हैं।

3. विश्व धर्म संसद में व्याख्यान (1893): इन अभूतपूर्व भाषणों ने कई पश्चिमी श्रोताओं को पहली बार वेदान्तिक अवधारणाओं से परिचित कराया।

4. भारत में व्याख्यान: पश्चिम से लौटने के बाद विवेकानंद ने भारत में अनेक व्याख्यान दिए, जिनमें से कई में ज्ञान योग के पहलुओं पर प्रकाश डाला गया।

ज्ञान योग पर विवेकानंद की शिक्षाओं के प्रमुख विषय निम्नलिखित हैं:

1. अस्तित्व की एकता: समस्त वास्तविकता की मौलिक एकता।
2. आत्मा की दिव्यता: प्रत्येक व्यक्ति की अंतर्निहित दिव्य प्रकृति।
3. धर्मों का सामंजस्य: यह विचार कि सभी वास्तविक आध्यात्मिक मार्ग एक ही परम सत्य की ओर ले जाते हैं।
4. व्यावहारिक वेदांत: दैनिक जीवन में वेदांत सिद्धांतों को लागू करने पर जोर।
5. पूर्वी और पश्चिमी विचारों का संश्लेषण: पूर्वी आध्यात्मिकता को पश्चिमी तर्कसंगतता और विज्ञान के साथ जोड़ना।

7.2 प्रमुख उद्धरण और उनकी व्याख्या

यहां ज्ञान योग पर विवेकानंद के कुछ प्रमुख उद्धरण, संक्षिप्त व्याख्याओं सहित दिए गए हैं:

1. "आप शुद्ध, नित्य-धन्य, पूर्ण, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, नित्य-मुक्त हैं। आप किसी भी चीज़ से बंधे नहीं हैं।"
व्याख्या: यह उद्धरण ज्ञान योग की मूल शिक्षा को दर्शाता है - कि हमारा सच्चा स्वभाव दिव्य, परिपूर्ण और स्वतंत्र है। अभ्यास इस सत्य को समझने के बारे में है।

2. "मानव जाति का लक्ष्य ज्ञान है... ज्ञान क्या है? ज्ञान स्वयं के भीतर सत्य की अनुभूति है।"

व्याख्या: विवेकानंद इस बात पर जोर देते हैं कि सच्चा ज्ञान मात्र जानकारी नहीं बल्कि हमारे आंतरिक सत्य का प्रत्यक्ष बोध है।

3. "मन तरंगों का एक समूह है। झील का तल हमारा अपना सच्चा स्व है; झील चित्त [मन-पदार्थ] है; और तरंगें वृत्तियाँ [विचार-तरंगें] हैं।"

व्याख्या: यह रूपक सच्चे स्व (आत्मा) और मन के बीच के संबंध को दर्शाता है। ज्ञान योग के अभ्यास में खुद को झील की शांत गहराई के रूप में पहचानना शामिल है, न कि हमेशा बदलती लहरों के रूप में।

4. "जैसे ही मैं सोचता हूँ कि मैं एक छोटा शरीर हूँ, मैं इसे संरक्षित करना चाहता हूँ, इसकी रक्षा करना चाहता हूँ, इसे अच्छा रखना चाहता हूँ, अन्य शरीरों की कीमत पर; तब आप और मैं अलग हो जाते हैं।"

व्याख्या: यह उद्धरण इस बात पर प्रकाश डालता है कि शरीर के साथ पहचान कैसे अलगाव और संघर्ष की भावना को जन्म देती है। ज्ञान योग का उद्देश्य इस पहचान को तोड़ना है।

5. "वेदांत पाप को नहीं मानता, वह केवल त्रुटि को मानता है। और वेदांत कहता है कि सबसे बड़ी त्रुटि यह कहना है कि तुम कमजोर हो, तुम पापी हो, एक दुखी प्राणी हो, तुम्हारे पास कोई शक्ति नहीं है और तुम यह-वह नहीं कर सकते।"

व्याख्या: विवेकानंद अंतर्निहित पाप की धारणा को चुनौती देते हैं, इसके बजाय प्रत्येक व्यक्ति की जन्मजात दिव्यता और शक्ति पर जोर देते हैं। मानव प्रकृति का यह सकारात्मक दृष्टिकोण उनकी शिक्षाओं की एक पहचान है।

ये उद्धरण और शिक्षाएँ विवेकानंद की ज्ञान योग की व्याख्या की एक झलक प्रदान करती हैं। वे स्वयं की दिव्यता, सीमाओं की भ्रामक प्रकृति और आत्म-ज्ञान की शक्ति पर जोर देते हैं।

8. आधुनिक समय में ज्ञान योग की प्रासंगिकता

स्वामी विवेकानंद की ज्ञान योग की शिक्षाएँ आधुनिक दुनिया में भी अत्यधिक प्रासंगिक हैं। ज्ञान का मार्ग समकालीन जीवन की जटिलताओं को समझने और आज हमारे सामने आने वाली कई चुनौतियों का समाधान करने के लिए मूल्यवान साधन प्रदान करता है।

8.1 दैनिक जीवन में अनुप्रयोग

विवेकानंद द्वारा सिखाया गया ज्ञान योग, दैनिक जीवन से अलग होकर अभ्यास करने के लिए नहीं है। इसके बजाय, यह ऐसे सिद्धांत और अभ्यास प्रदान करता है जिन्हें हमारे दैनिक अनुभवों में एकीकृत किया जा सकता है:

1. आलोचनात्मक सोच: ज्ञान योग में प्रश्न पूछने और तर्कसंगत जांच पर जोर आधुनिक वैज्ञानिक मानसिकता के साथ अच्छी तरह से मेल खाता है। यह व्यक्तियों को उनकी मान्यताओं और मान्यताओं के बारे में आलोचनात्मक रूप से सोचने के लिए प्रोत्साहित करता है।
2. तनाव प्रबंधन: ज्ञान योग में सिखाई गई बातों के अनुसार विचारों और भावनाओं की क्षणभंगुर प्रकृति को समझने से व्यक्ति को तनाव को अधिक प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने में मदद मिल सकती है।
3. आत्म-समझ: आत्म-जांच के अभ्यास से आत्म-जागरूकता और भावनात्मक बुद्धिमत्ता विकसित हो सकती है, जो व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन में मूल्यवान कौशल हैं।
4. नैतिक जीवन: समस्त अस्तित्व की अंतर्निहित एकता की मान्यता दूसरों के प्रति नैतिक व्यवहार और करुणा को बढ़ावा दे सकती है।
5. परिवर्तन से निपटना: सच्चे आत्म की अपरिवर्तनीय प्रकृति पर ज्ञान योग की शिक्षाएँ आधुनिक जीवन के तेजी से बदलते स्वरूप के बीच स्थिरता प्रदान कर सकती हैं।
6. समस्या-समाधान: ज्ञान योग के माध्यम से विकसित विवेकशील क्षमताएं जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समस्या-समाधान कौशल को बढ़ा सकती हैं।
7. व्यक्तिगत विकास: सीमाओं पर काबू पाने और अपनी वास्तविक क्षमता को पहचानने पर जोर, व्यक्तिगत विकास की आधुनिक अवधारणाओं के साथ अच्छी तरह से मेल खाता है।

8.2 ज्ञान योग और मानसिक स्वास्थ्य

ज्ञान योग के सिद्धांत और अभ्यास मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं:

1. संज्ञानात्मक पुनर्गठन: वास्तविक और अवास्तविक के बीच भेद करने का अभ्यास नकारात्मक विचार पैटर्न को पहचानने और बदलने में मदद कर सकता है।
2. माइंडफुलनेस: ज्ञान योग में आत्म-जागरूकता पर जोर आधुनिक माइंडफुलनेस प्रथाओं के अनुरूप है, जो चिंता और अवसाद को कम करने में सहायक सिद्ध हुई हैं।
3. आत्म-सम्मान: ज्ञान योग में सिखाई गई बात के अनुसार, अपने सच्चे स्वरूप को दिव्य और पूर्ण समझना, आत्म-सम्मान और आत्म-मूल्य को बढ़ा सकता है।
4. भावनात्मक विनियमन: विचारों और भावनाओं से अपनी पहचान किए बिना उनका साक्षी बनने का अभ्यास भावनात्मक विनियमन कौशल को बढ़ा सकता है।
5. तनाव में कमी: हमारी अनेक चिंताओं और व्यग्रताओं की भ्रामक प्रकृति को समझने से तनाव के स्तर में कमी आ सकती है।
6. अर्थ और उद्देश्य: आत्म-साक्षात्कार पर ज्ञान योग का ध्यान अर्थ और उद्देश्य की भावना प्रदान कर सकता है, जो मानसिक कल्याण के लिए महत्वपूर्ण है।
7. लचीलापन: अपने वास्तविक स्वरूप को अपरिवर्तित और बाह्य परिस्थितियों से अप्रभावित समझना जीवन की चुनौतियों का सामना करने में लचीलापन पैदा कर सकता है।

8.3 आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में ज्ञान योग

विवेकानंद विज्ञान और अध्यात्म के बीच सामंजस्य के प्रबल समर्थक थे। आधुनिक संदर्भ में, ज्ञान योग वैज्ञानिक जांच के साथ :

1. क्वांटम भौतिकी: ज्ञान योग के कुछ सिद्धांत, जैसे सभी चीजों का परस्पर संबंध, क्वांटम भौतिकी सिद्धांतों में समानताएं पाते हैं।
2. तंत्रिका विज्ञान: ध्यान और आत्म-जांच अभ्यासों के मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन तंत्रिका वैज्ञानिकों द्वारा किया जा रहा है, जो ज्ञान योग के कुछ दावों को प्रमाणित करता है।
3. मनोविज्ञान: ज्ञान योग की अवधारणाएं, जैसे चेतना और स्वयं की प्रकृति, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान और चेतना अध्ययन में खोजी जा रही हैं।
4. समग्र स्वास्थ्य: ज्ञान योग में मन-शरीर संबंध पर जोर दिया गया है जो स्वास्थ्य और कल्याण के लिए आधुनिक समग्र दृष्टिकोण के अनुरूप है।
5. पर्यावरण विज्ञान: ज्ञान योग में अस्तित्व की एकता की अवधारणा समस्त जीवन के अंतर्संबंधों पर पारिस्थितिक दृष्टिकोण से मेल खाती है।

9. आलोचनाएँ और समीक्षा

जबकि विवेकानंद की ज्ञान योग पर शिक्षाएँ व्यापक रूप से प्रभावशाली रही हैं, वे विभिन्न आलोचनाओं और बहसों का भी विषय रही हैं। इन्हें समझने से ज्ञान योग और आधुनिक आध्यात्मिक प्रवचन में इसके स्थान के बारे में अधिक सूक्ष्म दृष्टिकोण मिल सकता है।

9.1 बौद्धिक अभिजात्यवाद

आलोचना: कुछ आलोचकों का तर्क है कि बौद्धिक समझ और विवेक पर जोर देने वाला ज्ञान योग केवल आवश्यक शैक्षिक पृष्ठभूमि और संज्ञानात्मक क्षमताओं वाले कुछ चुनिंदा लोगों के लिए ही सुलभ हो सकता है।

उत्तर: विवेकानंद ने तर्क दिया कि आत्म-साक्षात्कार की क्षमता सभी व्यक्तियों में निहित है, चाहे उनकी बौद्धिक क्षमता कुछ भी हो। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि बौद्धिक समझ ज्ञान योग का एक हिस्सा है, लेकिन प्रत्यक्ष अनुभव और अंतर्ज्ञान भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं।

9.2 व्यावहारिक प्रयोज्यता

आलोचना: कुछ लोग तर्क देते हैं कि ज्ञान योग की शिक्षाओं की अमूर्त प्रकृति के कारण उन्हें रोजमर्रा की जिंदगी में लागू करना कठिन है, खासकर उन लोगों के लिए जो व्यावहारिक चुनौतियों और जिम्मेदारियों से निपट रहे हैं।

उत्तर: विवेकानंद ने "व्यावहारिक वेदांत" पर जोर देते हुए कहा कि ज्ञान योग के उच्चतम सत्यों को दैनिक जीवन में लागू किया जाना चाहिए और किया जा सकता है। उन्होंने इन शिक्षाओं को सामान्य अनुभवों में एकीकृत करने के कई उदाहरण दिए।

9.3 सांस्कृतिक विनियोग

आलोचना: जैसे-जैसे ज्ञान योग पश्चिम में लोकप्रिय होता गया, इन शिक्षाओं के मूल संदर्भ से बाहर सांस्कृतिक विनियोग और गलत व्याख्या की संभावना के बारे में चिंताएं व्यक्त की जाने लगीं।

उत्तर: विवेकानंद खुद पश्चिमी दर्शकों के सामने भारतीय दर्शन को प्रस्तुत करने में अग्रणी थे। उन्होंने इन शिक्षाओं की सार्वभौमिकता के लिए तर्क दिया, साथ ही उनके सांस्कृतिक और दार्शनिक संदर्भ को समझने के महत्व पर भी जोर दिया।

9.4 अन्य आध्यात्मिक पथों से संबंध

आलोचना: ज्ञान योग और अन्य आध्यात्मिक मार्गों, विशेषकर भक्ति योग, के बीच संबंध के बारे में निरंतर चर्चा होती रही है।

विवेकानंद का दृष्टिकोण: विवेकानंद ने सिखाया कि सभी सच्चे आध्यात्मिक मार्ग एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। उन्होंने ज्ञान योग को अन्य मार्गों से बेहतर नहीं बल्कि कुछ खास स्वभावों के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण के रूप में देखा।

9.5 अद्वैतवाद की व्याख्या

आलोचना: ज्ञान योग में अद्वैतवाद की व्याख्या दार्शनिक वाद-विवाद का विषय रही है, विशेष रूप से विश्व की प्रकृति और व्यक्तिगत अस्तित्व के संबंध में।

विभिन्न दृष्टिकोण: जबकि विवेकानंद सामान्यतः अद्वैत वेदांत दृष्टिकोण को मानते थे, उन्होंने अन्य विचारधाराओं के तत्वों को भी इसमें सम्मिलित किया, जिससे उनके दार्शनिक रुख की सटीक प्रकृति के बारे में चर्चा हुई।

9.6 वैज्ञानिक वैधता

आलोचना: इस बात पर लगातार चर्चा चल रही है कि ज्ञान योग के दावों को किस हद तक वैज्ञानिक रूप से मान्य या अध्ययन किया जा सकता है।

विभिन्न दृष्टिकोण: जबकि कुछ लोग ज्ञान योग प्रथाओं और अनुभवों के लिए वैज्ञानिक सहसंबंध खोजने का प्रयास करते हैं, अन्य लोग तर्क देते हैं कि आध्यात्मिक अनुभव की व्यक्तिपरक प्रकृति ज्ञान योग के कुछ पहलुओं को वैज्ञानिक जांच के दायरे से परे रखती है।

10. अन्य योगिक मार्गों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण

विवेकानंद द्वारा प्रस्तुत ज्ञान योग को पूरी तरह से समझने के लिए यह समझना उपयोगी है कि यह अन्य योगिक मार्गों से किस तरह संबंधित है और उनसे किस तरह भिन्न है। विवेकानंद अक्सर योग के चार मुख्य मार्गों की बात करते थे: ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग और राज योग।

10.1 ज्ञान योग और भक्ति योग

भक्ति योग भक्ति का मार्ग है, जो ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण विकसित करने पर केंद्रित है।

समानताएं:

- दोनों का उद्देश्य परम सत्य या वास्तविकता को जानना है।
- दोनों से ईश्वर के साथ एकता या एकरूपता की भावना पैदा हो सकती है।

मतभेद:

- ज्ञान योग ज्ञान और विवेक पर जोर देता है, जबकि भक्ति योग प्रेम और भक्ति पर जोर देता है।
- ज्ञान योग में ईश्वर को प्रायः अवैयक्तिक (निर्गुण ब्रह्म) के रूप में माना जाता है, जबकि भक्ति योग में ईश्वर के व्यक्तिगत रूप (सगुण ब्रह्म) को माना जाता है।

विवेकानंद का दृष्टिकोण: उन्होंने इन मार्गों को पूरक के रूप में देखा, अक्सर कहा कि ज्ञान और भक्ति अंततः एक दूसरे से मिलते हैं। उन्होंने साधकों को अपने आध्यात्मिक अभ्यास में दोनों के तत्वों को शामिल करने के लिए प्रोत्साहित किया।

10.2 ज्ञान योग और कर्म योग

कर्म योग निःस्वार्थ कर्म का मार्ग है, जो परिणामों की आसक्ति के बिना अपने कर्तव्यों के निष्पादन पर केंद्रित है।

समानताएं:

- दोनों ही कर्म के फल से विरक्ति पर बल देते हैं।
- दोनों का लक्ष्य अहंकार से ऊपर उठना है।

मतभेद:

- ज्ञान योग ज्ञान और विवेक पर केंद्रित है, जबकि कर्म योग क्रिया पर केंद्रित है।

- ज्ञान योग में प्रायः अध्ययन और चिंतन के लिए एकाग्र होना शामिल होता है, जबकि कर्म योग में संसार में संलग्न होने पर जोर दिया जाता है।

विवेकानंद का दृष्टिकोण: उन्होंने कर्म योग को ज्ञान योग की शिक्षाओं के व्यावहारिक अनुप्रयोग के रूप में देखा। उन्होंने ज्ञान योगियों को मन को शुद्ध करने और सभी प्राणियों की एकता को महसूस करने के साधन के रूप में निस्वार्थ सेवा में संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित किया।

10.3 ज्ञान योग और राज योग

राज योग, जिसे अक्सर पतंजलि के योग सूत्र से जोड़ा जाता है, ध्यान और मन पर नियंत्रण का मार्ग है।

समानताएं:

- दोनों में एकाग्रता और ध्यान का अभ्यास शामिल है।
- दोनों का उद्देश्य वास्तविकता की सच्ची प्रकृति का प्रत्यक्ष बोध है।

मतभेद:

- राज योग एक अधिक व्यवस्थित, चरण-दर-चरण दृष्टिकोण (योग के आठ अंग) प्रदान करता है।
- ज्ञान योग बौद्धिक विवेक और अन्वेषण पर अधिक जोर देता है।

विवेकानंद का दृष्टिकोण: उन्होंने राज योग को व्यावहारिक तकनीक के रूप में देखा जो ज्ञान योग के अभ्यास का समर्थन कर सकती है। वे अक्सर ज्ञान योग अभ्यासियों को राज योग से ध्यान अभ्यास की सलाह देते थे।

10.4 पथों का संश्लेषण

विवेकानंद के महत्वपूर्ण योगदानों में से एक इन विभिन्न मार्गों के संश्लेषण पर उनका जोर था। उन्होंने सिखाया कि जबकि व्यक्ति स्वाभाविक रूप से एक या दूसरे मार्ग की ओर प्रवृत्त हो सकता है, सर्वोच्च प्राप्ति में अक्सर इन सभी मार्गों के तत्व शामिल होते हैं।

विवेकानंद के संश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के मुख्य बिंदु:

1. पूरक प्रकृति: उन्होंने इन मार्गों को विरोधाभासी के बजाय पूरक के रूप में देखा।
2. व्यक्तिगत स्वभाव: उन्होंने व्यक्तियों को अपने स्वभाव के आधार पर एक प्राथमिक मार्ग चुनने के लिए प्रोत्साहित किया, लेकिन इसमें अन्य मार्गों के तत्वों को भी शामिल किया।
3. समग्र विकास: उनका मानना था कि मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए ज्ञान, भक्ति, कर्म और ध्यान का संतुलन आवश्यक है।
4. व्यावहारिक अनुप्रयोग: चुने गए मार्ग के बावजूद, विवेकानंद ने दैनिक जीवन में व्यावहारिक अनुप्रयोग के महत्व पर जोर दिया।
5. परम एकता: उन्होंने सिखाया कि अनुभूति के उच्चतम स्तर पर, इन मार्गों के बीच के भेद समाप्त हो जाते हैं।

11. सारांश

विवेकानंद की व्याख्या व्यावहारिक अनुप्रयोग, अन्य योगिक मार्गों के साथ एकीकरण और आधुनिक जीवन के लिए प्रासंगिकता पर जोर देती है। उन्होंने ज्ञान योग को न केवल एक अमूर्त दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया, बल्कि सभी पृष्ठभूमि के लोगों के लिए लागू आत्म-साक्षात्कार के लिए एक व्यावहारिक मार्गदर्शिका के रूप में प्रस्तुत किया।

विवेकानंद की शिक्षाओं में माया वह शक्ति है जो एक परम वास्तविकता में अनेकता का आभास पैदा करती है। यह मात्र भ्रम नहीं है, बल्कि सापेक्ष वास्तविकता का एक रूप है। माया को समझने से अभ्यासकर्ता को वास्तविक और प्रत्यक्ष के बीच अंतर करने में मदद मिलती है, जो ज्ञान योग में एक महत्वपूर्ण कौशल है।

आत्म-जांच ज्ञान योग का मुख्य आधार है क्योंकि यह सीधे आत्म-ज्ञान की ओर ले जाती है। इसका अभ्यास व्यक्ति की धारणाओं, विश्वासों और अपने अनुभवों की प्रकृति पर लगातार सवाल उठाकर किया जा सकता है। दैनिक जीवन में, व्यक्ति नियमित रूप से पूछ सकता है "मैं कौन हूँ?" या "जिस जागरूकता में यह अनुभव हो रहा है उसकी प्रकृति क्या है?"

विवेकानंद ने "व्यावहारिक वेदांत" पर जोर दिया, यह सिखाते हुए कि ज्ञान योग के उच्चतम सत्य को दैनिक जीवन में लागू किया जाना चाहिए। उन्होंने निस्वार्थ सेवा को प्रोत्साहित किया और दुनिया में सक्रिय भागीदारी को मन को शुद्ध करने और सभी प्राणियों की एकता को साकार करने के साधन के रूप में देखा।

विवेकानंद के अनुसार, आत्मा (व्यक्तिगत स्व) ब्रह्म (परम वास्तविकता) के समान है। यह स्पष्ट अंतर अज्ञान (अविद्या) के कारण है। ज्ञान योग का लक्ष्य इस पहचान को महसूस करना है।

विवेकानंद ने ज्ञान योग में भक्ति (भक्ति), कर्म (क्रिया) और राज (ध्यान) योग के तत्वों को शामिल करते हुए एक संश्लिष्ट दृष्टिकोण सिखाया। उन्होंने इन मार्गों को पूरक के रूप में देखा और अक्सर अभ्यासियों को कई मार्गों से अभ्यासों को एकीकृत करने के लिए प्रोत्साहित किया।

चुनौतियों में अद्वैत दर्शन को रोज़मर्रा के द्वैतवादी अनुभवों के साथ सामंजस्य बिठाना, व्यस्त आधुनिक जीवन में अध्ययन और चिंतन के लिए समय निकालना और जड़ जमाएँ भौतिकवादी मानसिकता पर काबू पाना शामिल हो सकता है। इन्हें लगातार अभ्यास, समान विचारधारा वाले अभ्यासियों का समुदाय ढूँढ़ने और धीरे-धीरे दैनिक गतिविधियों में ज्ञान योग सिद्धांतों को एकीकृत करने के माध्यम से संबोधित किया जा सकता है।

विवेकानंद ने सिखाया कि हर व्यक्ति में आत्म-साक्षात्कार की क्षमता होती है। ज्ञान योग हमारे वास्तविक स्वरूप को अस्पष्ट करने वाले अज्ञान के आवरण को हटाकर इस जन्मजात क्षमता को उजागर करने का एक साधन है।

ज्ञान योग में विवेक का अर्थ है वास्तविक और अवास्तविक, स्थायी और अनित्य के बीच लगातार भेद करना। यह सभी अनुभवों, विचारों और धारणाओं पर लागू होता है, जिससे धीरे-धीरे व्यक्ति के वास्तविक स्वरूप का बोध होता है।

ज्ञान योग के सिद्धांतों को आधुनिक मुद्दों पर कई तरीकों से लागू किया जा सकता है:

- तनाव: अधिकांश तनावों की क्षणिक प्रकृति को समझना और बदलती परिस्थितियों के बजाय अपरिवर्तनीय जागरूकता के साथ पहचान करना।
- पारस्परिक संघर्ष: स्पष्ट मतभेदों के पीछे अंतर्निहित आवश्यक एकता को पहचानना तथा संघर्षों का करुणा और समझ के साथ सामना करना।
- नैतिक दुविधाएँ: सभी प्राणियों के परस्पर संबंध को ध्यान में रखते हुए, सही कार्य करने के लिए विवेकशील बुद्धि का उपयोग करना।

12. शब्दावली

विवेकानंद के ज्ञान योग के अध्ययन में आपकी सहायता के लिए, यहां प्रमुख शब्दों की शब्दावली दी गई है:

1. अद्वैत: अद्वैतवाद; दार्शनिक दृष्टिकोण कि केवल एक ही परम वास्तविकता है।
2. आत्मा: व्यक्तिगत आत्मा, जो अद्वैत वेदांत में ब्रह्म के समान है।
3. अविद्या: अज्ञान; वास्तविकता की गलत धारणा जो दुख का कारण बनती है।
4. ब्रह्म: वेदांत दर्शन में परम वास्तविकता या पूर्ण सत्य।
5. चित्त: मन-पदार्थ; योग दर्शन में मन की सामग्री।
6. धर्म: धार्मिकता, कर्तव्य या प्राकृतिक कानून।
7. गुण: गुणवत्ता या विशेषता; सांख्य दर्शन में, तीन गुण (सत्व, रजस, तमस) प्रकृति के मूल घटक हैं।
8. जीव: व्यक्तिगत आत्मा या जीवित प्राणी।
9. कर्म: क्रिया और उसके परिणाम; नैतिक क्षेत्र में कारण और प्रभाव का नियम।
10. माया: वह शक्ति जो प्रकट जगत का आभास पैदा करती है; जिसे प्रायः "भ्रम" के रूप में अनुवादित किया जाता है।
11. मोक्ष: मुक्ति; अज्ञानता और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति की स्थिति।
12. निर्गुण: गुण रहित; सभी गुणों से परे ब्रह्म को संदर्भित करता है।
13. प्रकृति: प्रकृति; सांख्य दर्शन में घटनाओं की प्रकट दुनिया।
14. पुरुष: शुद्ध चेतना; सांख्य दर्शन में साक्षी आत्मा।
15. सगुण: गुणों सहित; गुणों सहित कल्पित ब्रह्म को संदर्भित करता है, प्रायः एक व्यक्तिगत ईश्वर के रूप में।
16. समाधि: गहन ध्यान या तल्लीनता की अवस्था; योग की सर्वोच्च अवस्था।

17. संसार: जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म का चक्र; परिवर्तन और बनने की दुनिया।
18. सत्-चित्-आनन्द: अस्तित्व-चेतना-आनन्द; ब्रह्म की प्रकृति का वर्णन।
19. विवेक: विवेक; वास्तविक और अवास्तविक के बीच अंतर करने की क्षमता।
20. योग: मिलन; ईश्वर के साथ मिलन के उद्देश्य से की जाने वाली विभिन्न आध्यात्मिक प्रथाएँ।

इन शब्दों को समझने से ज्ञान योग और सामान्यतः वेदांत दर्शन पर विवेकानंद की शिक्षाओं की आपकी समझ में काफी वृद्धि होगी। विवेकानंद के ज्ञान योग पर हमारी स्व-शिक्षण सामग्री यहीं समाप्त होती है। याद रखें कि सच्ची समझ सिर्फ पढ़ने और याद करने से नहीं आती, बल्कि गहन चिंतन, चर्चा और सबसे महत्वपूर्ण बात, अपने जीवन में व्यावहारिक अनुप्रयोग से आती है। ज्ञान के मार्ग पर आपकी यात्रा आपको आत्म-साक्षात्कार और स्थायी शांति की ओर ले जाए।

13. बोध प्रश्न , मूल्यांकन प्रश्न

ज्ञान योग पर विवेकानंद की शिक्षाओं की आपकी समझ को मजबूत करने में मदद करने के लिए, यहाँ कुछ आत्म-मूल्यांकन प्रश्न दिए गए हैं। प्रत्येक प्रश्न पर विचार करने के लिए अपना समय लें और सुझाए गए उत्तरों की जाँच करने से पहले अपना उत्तर तैयार करें।

1. विवेकानंद की ज्ञान योग की व्याख्या पारंपरिक व्याख्याओं से किस प्रकार भिन्न है?
2. विवेकानंद की शिक्षाओं में प्रस्तुत माया की अवधारणा की व्याख्या करें। माया को समझना ज्ञान योग के अभ्यास में कैसे योगदान देता है?
3. ज्ञान योग में आत्म-जांच का क्या महत्व है? आप अपने दैनिक जीवन में इसका अभ्यास कैसे करेंगे?
4. विवेकानंद ज्ञान योग के अभ्यास को विश्व में सक्रिय संलग्नता के साथ कैसे जोड़ते हैं?
5. विवेकानंद की शिक्षाओं के अनुसार व्यक्तिगत आत्म (आत्मा) और परम वास्तविकता (ब्रह्म) के बीच संबंध का वर्णन करें।
6. ज्ञान योग के प्रति विवेकानंद का दृष्टिकोण अन्य योगिक मार्गों के तत्वों को किस प्रकार सम्मिलित करता है?
7. आधुनिक दुनिया में ज्ञान योग का अभ्यास करते समय किसी को किन संभावित चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है? इनका समाधान कैसे किया जा सकता है?
8. ज्ञान योग पर विवेकानंद की शिक्षा मानव क्षमता और आत्म-साक्षात्कार की अवधारणा से किस प्रकार संबंधित है?
9. बताएं कि ज्ञान योग में विवेक का अभ्यास किस प्रकार लागू किया जाता है।
10. तनाव, पारस्परिक संघर्ष या नैतिक दुविधाओं जैसे समकालीन मुद्दों को हल करने के लिए ज्ञान योग के सिद्धांतों को कैसे लागू किया जा सकता है?

14. उपयोगी पुस्तकें

1. ज्ञान योग - स्वामी विवेकानंद
2. विवेकानंद साहित्य- स्वामी विवेकानंद
3. ज्ञान योग परिचय - स्वामी विवेकानंद
4. समकालीन भारतीय दर्शन - डॉक्टर लक्ष्मी सक्सेना
5. समकालीन भारतीय दर्शन - डॉक्टर बसंत कुमार लाल ।

-----00000-----

इकाई 3-विवेकानंद का राजयोग

विषयसूची

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 राज योग को समझना
- 3.4 राजयोग के आठ अंग
 - 3.4.1 यम
 - 3.4.2 नियम
 - 3.4.3 आसन
 - 3.4.4 प्राणायाम
 - 3.4.5 प्रत्याहार
 - 3.4.6 धारणा
 - 3.4.7 ध्यान
 - 3.4.8 समाधि
- 3.5 विवेकानंद की व्याख्या और योगदान
- 3.6 राज योग के व्यावहारिक अनुप्रयोग
- 3.7 आधुनिक विश्व में राज योग
- 3.8 आलोचनात्मक विश्लेषण और दार्शनिक निहितार्थ
- 3.9 सारांश
- 3.10 मूल्यांकन प्रश्न
- 3.11 उपयोगी पुस्तकें
- 3.12 शब्दकोष

-----00000-----

3.1 प्रस्तावना

स्वामी विवेकानंद जी के राज योग पर इस स्व-अधिगम सामग्री में आपका स्वागत है। यह व्यापक मार्गदर्शिका एमए दर्शनशास्त्र के छात्रों के लिए डिज़ाइन की गई है जो आधुनिक युग के सबसे प्रभावशाली आध्यात्मिक और दार्शनिक कार्यों में से एक की अपनी समझ को गहरा करना चाहते हैं। स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रतिपादित राज योग, मन और शरीर के नियंत्रण के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है।

इस सामग्री में, हम राज योग के मूल सिद्धांतों, इसके ऐतिहासिक संदर्भ, विवेकानंद की अनूठी व्याख्या और समकालीन दार्शनिक प्रवचन में इसकी प्रासंगिकता का पता लगाएंगे। इस अध्ययन के अंत तक, आपको राज योग के सैद्धांतिक आधारों और व्यावहारिक अनुप्रयोगों के बारे में पूरी समझ हो जाएगी, साथ ही इसके दार्शनिक निहितार्थों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने की क्षमता भी प्राप्त हो जाएगी।

3.2 उद्देश्य

इस स्व-शिक्षण सामग्री के अंत तक, आप निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम हो जायेंगे:

1. स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रस्तुत राजयोग की मूल अवधारणाओं और सिद्धांतों की व्याख्या करें।
2. उस ऐतिहासिक और दार्शनिक संदर्भ का वर्णन करें जिसमें विवेकानंद ने राजयोग की अपनी व्याख्या विकसित की।
3. राजयोग के आठ अंगों और उनके अंतर्संबंधों का विश्लेषण करें।
4. राजयोग की समझ और अभ्यास में विवेकानंद के अद्वितीय योगदान का मूल्यांकन करें।
5. राजयोग के सिद्धांतों को समकालीन दार्शनिक और व्यावहारिक संदर्भों में लागू करें।
6. भारतीय दर्शन के अन्य सम्प्रदायों के संबंध में राजयोग के दार्शनिक निहितार्थों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
7. आधुनिक विश्व में राजयोग की प्रासंगिकता और प्रयोज्यता पर चर्चा करें।
8. राजयोग से जुड़े प्रमुख संस्कृत शब्दों और अवधारणाओं की समझ का प्रदर्शन करें।

स्वामी विवेकानंद: संक्षिप्त जीवनी

स्वामी विवेकानंद, जिनका जन्म 12 जनवरी, 1863 को कलकत्ता (अब कोलकाता), भारत में नरेंद्रनाथ दत्त के रूप में हुआ था, पश्चिमी दुनिया में वेदांत और योग के भारतीय दर्शन को पेश करने वाले प्रमुख व्यक्ति थे। वे 19वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी रामकृष्ण के मुख्य शिष्य और रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के संस्थापक थे।

विवेकानंद का प्रारंभिक जीवन जिज्ञासु मन और पश्चिमी दर्शन, विज्ञान और इतिहास के प्रति जुनून से भरा था। उन्होंने यूरोपीय दर्शन में शिक्षा प्राप्त की थी और हर्बर्ट स्पेंसर, जॉन स्टुअर्ट मिल और ऑगस्टे कॉम्टे जैसे विचारकों के कार्यों से अच्छी तरह वाकिफ थे। यह पृष्ठभूमि बाद में पूर्वी और पश्चिमी दोनों दर्शकों के लिए भारतीय दर्शन की व्याख्या और प्रस्तुति के उनके अनूठे दृष्टिकोण को प्रभावित करेगी।

1881 में विवेकानंद की मुलाकात रामकृष्ण से हुई, यह एक ऐसी घटना थी जिसने उनके आध्यात्मिक और दार्शनिक मार्ग को गहराई से आकार दिया। रामकृष्ण के मार्गदर्शन में विवेकानंद ने हिंदू दर्शन और रहस्यवाद के विभिन्न पहलुओं की खोज की। 1886 में रामकृष्ण की मृत्यु के बाद विवेकानंद ने एक घुमक्कड़ साधु की भूमिका निभाई, पूरे भारत में व्यापक रूप से यात्रा की और देश की विविध धार्मिक और सामाजिक स्थितियों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया।

विवेकानंद की अंतरराष्ट्रीय ख्याति 1893 में शिकागो में विश्व धर्म संसद में उनके अभूतपूर्व भाषण से शुरू हुई। उनकी करिश्माई उपस्थिति और हिंदू दर्शन की वाक्पटु व्याख्या ने पश्चिमी दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इस घटना ने पश्चिम में भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान को फैलाने और भारत में हिंदू धर्म को पुनर्जीवित करने के उनके मिशन की शुरुआत की।

अगले वर्षों में विवेकानंद ने संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप में व्यापक यात्रा की, वेदांत दर्शन और योग पर व्याख्यान और कक्षाएं दीं। उन्होंने 1894 में न्यूयॉर्क में वेदांत सोसाइटी की स्थापना की, जिसने पश्चिम में वेदांत की उपस्थिति की औपचारिक शुरुआत की।

विवेकानंद 1897 में भारत लौटे और रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जो एक ऐसा संगठन था जो आध्यात्मिक और व्यावहारिक कार्यों को जोड़ता था। उन्होंने 4 जुलाई, 1902 को 39 वर्ष की आयु में अपनी मृत्यु तक भारत और विदेश दोनों में लिखना, व्याख्यान देना और प्रेरणा देना जारी रखा।

विवेकानंद की कृतियाँ, जिनमें उनकी मौलिक पुस्तक "राज योग" भी शामिल है, ने पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही विचारधाराओं पर स्थायी प्रभाव डाला है। आधुनिक वैज्ञानिक समझ के प्रकाश में प्राचीन भारतीय ज्ञान की उनकी व्याख्या, व्यावहारिक आध्यात्मिकता पर उनका जोर और सार्वभौमिक भाईचारे की उनकी दृष्टि दुनिया भर में दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रवचन को प्रभावित करती है।

3.3 राज योग को समझना

राज योग, जिसे अक्सर "शाही मार्ग" या "मन का विज्ञान" कहा जाता है, हिंदू दर्शन में वर्णित योग के चार मुख्य मार्गों में से एक है। अन्य तीन मार्ग हैं कर्म योग (निस्वार्थ कर्म का मार्ग), भक्ति योग (भक्ति का मार्ग) और ज्ञान योग (ज्ञान का मार्ग)। जबकि ये सभी मार्ग आत्म-साक्षात्कार के एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं, राज योग विशेष रूप से मन के नियंत्रण और महारत पर केंद्रित है।

आधुनिक युग में "राज योग" शब्द को काफी हद तक स्वामी विवेकानंद के प्रभावशाली कार्यों के कारण प्रसिद्धि मिली, हालांकि इसके सिद्धांत प्राचीन भारतीय ग्रंथों, विशेष रूप से पतंजलि के योग सूत्रों में निहित हैं। 1896 में प्रकाशित विवेकानंद के "राज योग" ने इन प्राचीन शिक्षाओं को व्यवस्थित और सुलभ तरीके से प्रस्तुत किया, जिससे वे आधुनिक, वैश्विक दर्शकों के लिए प्रासंगिक बन गए।

अपने मूल में, राज योग मन को नियंत्रित करने और चेतना की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए एक व्यावहारिक विधि है। यह मानता है कि परम वास्तविकता (जिसे अक्सर वेदांत दर्शन में ब्रह्म के रूप में संदर्भित किया जाता है) को अनुशासित मानसिक अभ्यासों के माध्यम से सीधे अनुभव किया जा सकता है। यह अनुभवात्मक दृष्टिकोण राज योग को अधिक सद्दा या विश्वास-आधारित आध्यात्मिक पथों से अलग करता है।

राज योग का मूल आधार यह है कि मन बंधन और मुक्ति दोनों का प्राथमिक साधन है। हमारे विचार, धारणाएँ और मानसिक आदतें वास्तविकता के हमारे अनुभव का निर्माण करती हैं, जिसमें हमारी स्वयं

की भावना और दुनिया की हमारी समझ शामिल है। मन पर नियंत्रण पाकर, व्यक्ति सामान्य चेतना की सीमाओं को पार कर सकता है और दिव्य या परम वास्तविकता के साथ मिलन की स्थिति का अनुभव कर सकता है।

राज योग आध्यात्मिक अनुभव की अनुभवजन्य प्रकृति पर जोर देता है। विवेकानंद अक्सर राज योग के तरीकों और वैज्ञानिक जांच के बीच समानताएं बताते थे, तर्क देते थे कि आध्यात्मिक सत्य को प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से सत्यापित किया जा सकता है, ठीक वैसे ही जैसे वैज्ञानिक परिकल्पनाओं को प्रयोगों के माध्यम से परखा जाता है। यह दृष्टिकोण विशेष रूप से पश्चिमी दर्शकों के लिए आकर्षक था जो वैज्ञानिक सोच के आदी थे।

राज योग के अभ्यास में मानसिक अनुशासन के विभिन्न चरणों के माध्यम से एक व्यवस्थित प्रगति शामिल है। इन चरणों को योग के आठ अंगों या चरणों में संहिताबद्ध किया गया है, जिन्हें हम अगले भाग में विस्तार से देखेंगे। ये चरण नैतिक दिशा-निर्देशों और शारीरिक अभ्यासों से शुरू होते हैं, जो सांस नियंत्रण और संवेदी वापसी के माध्यम से आगे बढ़ते हैं, और ध्यान और आध्यात्मिक अवशोषण की गहरी अवस्थाओं में समाप्त होते हैं।

राज योग में एक मुख्य अवधारणा "वृत्ति" या मानसिक परिवर्तन की है। इस दर्शन के अनुसार, मन निरंतर प्रवाह में रहता है, विचारों, भावनाओं और संवेदी छापों से भरा रहता है। ये मानसिक परिवर्तन हमारे वास्तविक स्वरूप की हमारी धारणा को अस्पष्ट करते हैं। राज योग का लक्ष्य इन मानसिक उतार-चढ़ावों को स्थिर करना है, जिससे अभ्यासकर्ता वास्तविकता को वैसा ही समझ सके जैसा वह वास्तव में है।

राज योग का एक और महत्वपूर्ण पहलू एकाग्रता और ध्यान पर इसका जोर है। केंद्रित एकाग्रता (धारणा) और निरंतर ध्यान (ध्यान) के माध्यम से, अभ्यासकर्ता का लक्ष्य समाधि की स्थिति प्राप्त करना या ध्यान की वस्तु में पूर्ण तल्लीनता प्राप्त करना होता है। समाधि के उच्चतम चरणों में, विषय और वस्तु के बीच का अंतर समाप्त हो जाता है, जिससे अद्वैत चेतना का प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

विवेकानंद द्वारा राज योग की प्रस्तुति अपने तर्कसंगत और सार्वभौमिक दृष्टिकोण के लिए उल्लेखनीय है। उन्होंने सांस्कृतिक और धार्मिक संदर्भ को हटा दिया, जो इन शिक्षाओं को वैश्विक दर्शकों के लिए कम सुलभ बना सकता था। इसके बजाय, उन्होंने राज योग को चेतना की खोज के लिए एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया, जो किसी भी सांस्कृतिक या धार्मिक पृष्ठभूमि के अभ्यासियों के लिए खुला है।

अगले खंडों में, हम स्वामी विवेकानंद द्वारा बताए गए राज योग के विशिष्ट अभ्यासों और दार्शनिक निहितार्थों पर गहराई से विचार करेंगे। हम यह पता लगाएंगे कि इन प्राचीन शिक्षाओं को आधुनिक संदर्भ में कैसे समझा और लागू किया जा सकता है, और समकालीन दार्शनिक प्रवचन के लिए उनकी प्रासंगिकता की जांच करेंगे।

3.4 राज योग के आठ अंग

राज योग अभ्यास का मूल आठ अंगों या चरणों के इर्द-गिर्द संरचित है, जिन्हें संस्कृत में "अष्टांग योग" (अष्ट का अर्थ आठ, अंग का अर्थ अंग) के रूप में जाना जाता है। ये आठ अंग आध्यात्मिक विकास के लिए एक व्यापक रूपरेखा प्रदान करते हैं, जो अभ्यासकर्ता के जीवन के नैतिक, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पहलुओं को संबोधित करते हैं। आइए इनमें से प्रत्येक अंग का विस्तार से पता लगाएं:

3.4.1 यम

यम राजयोग के पहले अंग का प्रतिनिधित्व करता है और नैतिक संयम या नैतिक अनुशासन पर ध्यान केंद्रित करता है। ये सार्वभौमिक सिद्धांत हैं जो बाहरी दुनिया के साथ किसी के व्यवहार का मार्गदर्शन करते हैं और आध्यात्मिक प्रगति की नींव बनाते हैं। पाँच यम हैं:

1. अहिंसा: यह सिद्धांत शारीरिक नुकसान से परे जाकर विचार, वाणी और कर्म में अहिंसा को भी शामिल करता है। यह सभी जीवों के प्रति करुणा और सम्मान को बढ़ावा देता है।
2. सत्य (सत्यनिष्ठा): यह जीवन के सभी पहलुओं में ईमानदारी और निष्ठा पर जोर देता है। यह विचारों, शब्दों और कार्यों के बीच संरेखण को प्रोत्साहित करता है।
3. अस्तेय (चोरी न करना): इसमें भौतिक वस्तुओं को न लेने से आगे बढ़कर, जो कुछ भी मुफ्त में न दिया गया हो उसे न लेना भी शामिल है, जिसमें समय, विचार या दूसरों के काम का श्रेय शामिल है।
4. ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्य या ऊर्जा का सही उपयोग): पारंपरिक रूप से ब्रह्मचर्य के रूप में व्याख्या की जाती है, व्यापक अर्थ में यह व्यक्ति की महत्वपूर्ण ऊर्जा के सचेत नियंत्रण और दिशा निर्धारण को संदर्भित करता है।
5. अपरिग्रह: यह सिद्धांत भौतिक सम्पत्ति से विरक्ति और अपरिग्रह की प्रवृत्ति विकसित करने को प्रोत्साहित करता है।

विवेकानंद ने इस बात पर जोर दिया कि ये नैतिक सिद्धांत केवल नैतिक अनिवार्यताएं नहीं हैं, बल्कि मानसिक शुद्धि और आध्यात्मिक विकास के लिए व्यावहारिक आवश्यकताएं हैं। उन्होंने तर्क दिया कि नैतिक व्यवहार दुनिया के साथ एक सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाता है, मानसिक अशांति को कम करता है और गहन अभ्यासों के लिए एक स्थिर आधार तैयार करता है।

3.4.2 नियम

नियम, दूसरा अंग, पाँच पालन या सकारात्मक कर्तव्यों से मिलकर बना है जो व्यक्ति की आंतरिक दुनिया और व्यक्तिगत अनुशासन से संबंधित हैं। ये हैं:

1. शौच (स्वच्छता): इसमें शरीर की बाह्य स्वच्छता और मन की आंतरिक शुद्धता दोनों शामिल हैं।
2. संतोष: यह बाह्य परिस्थितियों की परवाह किए बिना स्वीकृति और कृतज्ञता का दृष्टिकोण विकसित करता है।

3. तपस (तपस्या या आत्म-अनुशासन): इसमें स्वैच्छिक आत्म-अनुशासन और आध्यात्मिक अभ्यास में दृढ़ता शामिल है।
4. स्वाध्याय: इसमें शास्त्रों का अध्ययन और आत्मचिंतन दोनों शामिल हैं।
5. ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर के प्रति समर्पण): इसमें अपने कार्यों को उच्चतर उद्देश्य या वास्तविकता के प्रति समर्पित करना शामिल है।

विवेकानंद ने इन अनुष्ठानों को मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए व्यावहारिक उपकरण के रूप में व्याख्यायित किया। उन्होंने इनके मनोवैज्ञानिक लाभों पर जोर दिया, जैसे कि सकारात्मक मानसिक स्थिति का विकास और इच्छाशक्ति और एकाग्रता का विकास।

3.4.3 आसन

आसन, तीसरा अंग, योग की शारीरिक मुद्राओं को संदर्भित करता है। राज योग के संदर्भ में, आसन का प्राथमिक उद्देश्य शरीर को लंबे समय तक ध्यान के लिए तैयार करना है। विवेकानंद आसन को एक स्थिर, आरामदायक मुद्रा के रूप में परिभाषित करते हैं जिसे बिना किसी तनाव के लंबे समय तक बनाए रखा जा सकता है।

विवेकानंद ने विभिन्न योग आसनों के स्वास्थ्य लाभों को स्वीकार किया, लेकिन उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि राज योग में आसन का मुख्य लक्ष्य अभ्यासकर्ता को ध्यान के लिए स्थिर बैठने में सक्षम बनाना है। उन्होंने अक्सर कमल की स्थिति (पद्मासन) या आसान मुद्रा (सुखासन) जैसी सरल बैठने की मुद्राओं की सलाह दी।

विवेकानंद के अनुसार, आसन की महारत एक ऐसी स्थिति की ओर ले जाती है जहाँ अभ्यासकर्ता को शरीर के बारे में कम जानकारी होती है, जिससे गहन एकाग्रता और ध्यान की अनुमति मिलती है। उन्होंने इसे बाहरी, शारीरिक अभ्यासों और आंतरिक, मानसिक अनुशासन के बीच एक सेतु के रूप में देखा।

3.4.4 प्राणायाम

प्राणायाम, चौथा अंग है, जिसमें सांस पर नियंत्रण और विनियमन शामिल है। राज योग में, प्राणायाम को मन को शांत करने और ध्यान के लिए तैयार करने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में देखा जाता है। विवेकानंद ने कई प्राणायाम तकनीकों का वर्णन किया है, जिनमें शामिल हैं:

1. वैकल्पिक नासिका श्वास (नाड़ी शोधन)
2. विजयी श्वास (उज्जयी)
3. शीतल श्वास (शीतली)
4. भस्त्रिका

विवेकानंद ने सांस और मन के बीच घनिष्ठ संबंध पर जोर दिया। उन्होंने बताया कि सांस को नियंत्रित करके, व्यक्ति शरीर में प्राण (जीवन शक्ति) के प्रवाह को प्रभावित कर सकता है और परिणामस्वरूप, मन की स्थिति को भी प्रभावित कर सकता है। हालांकि, उन्होंने चेतावनी दी कि प्राणायाम का अभ्यास उचित मार्गदर्शन में किया जाना चाहिए, क्योंकि अनुचित अभ्यास से शारीरिक या मानसिक असंतुलन हो सकता है।

राजयोग में प्राणायाम का अंतिम लक्ष्य मन को एकाग्रता और ध्यान के उच्चतर चरणों के लिए तैयार करना है। विवेकानंद ने बताया कि प्राणायाम के नियमित अभ्यास से मानसिक स्पष्टता, भावनात्मक स्थिरता और आध्यात्मिक संवेदनशीलता में वृद्धि हो सकती है।

3.4.5 प्रत्याहार

प्रत्याहार, पाँचवाँ अंग, राज योग के बाह्य अभ्यासों से आंतरिक अनुशासनों की ओर संक्रमण को चिह्नित करता है। इसमें इंद्रियों को बाहरी वस्तुओं से हटाकर ध्यान को भीतर की ओर पुनर्निर्देशित करना शामिल है। विवेकानंद ने प्रत्याहार को एक ऐसी अवस्था के रूप में वर्णित किया है, जहाँ इंद्रियाँ अब बाहरी उत्तेजनाओं पर प्रतिक्रिया नहीं करती हैं, जिससे मन भीतर की ओर मुड़ जाता है।

यह अभ्यास एकाग्रता और ध्यान विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण है। प्रत्याहार में महारत हासिल करने से योगी बाहरी संवेदी इनपुट से कम विचलित होता है और आंतरिक मानसिक प्रक्रियाओं पर अधिक आसानी से ध्यान केंद्रित कर सकता है। विवेकानंद ने इस प्रक्रिया की तुलना कछुए से की जो अपने अंगों को अपने खोल में वापस ले लेता है, इस बात पर जोर देते हुए कि यह बाहरी दुनिया के विकर्षणों से कैसे सुरक्षा प्रदान करता है।

प्रत्याहार का मतलब संवेदी अनुभवों को दबाना नहीं है, बल्कि उनसे अनासक्ति की स्थिति विकसित करना है। विवेकानंद ने सिखाया कि प्रत्याहार के माध्यम से, व्यक्ति स्वचालित प्रतिक्रियाओं में खींचे बिना संवेदी अनुभवों का अवलोकन कर सकता है, इस प्रकार अपनी मानसिक स्थितियों पर अधिक नियंत्रण प्राप्त कर सकता है।

3.4.6 धारणा

धारणा, छठा अंग, एकाग्रता का अभ्यास है। इसमें मन को एक बिंदु, वस्तु या विचार पर केंद्रित करना शामिल है। यह मोमबत्ती की लौ जैसी कोई भौतिक वस्तु, आंतरिक दृश्य, मंत्र या अमूर्त अवधारणा हो सकती है। इसका लक्ष्य मन को बिना डगमगाए एक बिंदु पर स्थिर रहने के लिए प्रशिक्षित करना है।

विवेकानंद ने ध्यान के लिए एक प्रारंभिक चरण के रूप में धारणा के महत्व पर जोर दिया। उन्होंने एकाग्रता विकसित करने के लिए विभिन्न तकनीकों का वर्णन किया, जैसे कि सांस पर ध्यान केंद्रित करना, किसी देवता या प्रतीक की कल्पना करना, या शरीर के किसी विशेष भाग पर ध्यान केंद्रित करना। उन्होंने इस कौशल को विकसित करने के लिए नियमित, धैर्यपूर्ण अभ्यास की आवश्यकता पर भी जोर दिया।

विवेकानंद के अनुसार, ध्यान केंद्रित करने की क्षमता सिर्फ आध्यात्मिक कौशल नहीं है, बल्कि एक व्यावहारिक कौशल है जो जीवन के सभी क्षेत्रों को बेहतर बना सकता है। उन्होंने तर्क दिया कि ज्यादातर मानवीय समस्याएँ एकाग्रता की कमी से उत्पन्न होती हैं और इस क्षमता को विकसित करने से किसी भी प्रयास में अधिक सफलता मिल सकती है।

3.4.7 ध्यान

ध्यान, सातवाँ अंग, अक्सर ध्यान के रूप में अनुवादित होता है। यह लंबे समय तक एकाग्रता की एक अवस्था है जहाँ मन ध्यान की वस्तु पर ध्यान का एक स्थिर, निर्बाध प्रवाह बनाए रखता है। जहाँ धारणा में ध्यान को बनाए रखने के लिए प्रयास करना शामिल है, वहीं ध्यान में, यह ध्यान सहज और निरंतर हो जाता है।

विवेकानंद ने ध्यान को एक ऐसी अवस्था के रूप में वर्णित किया है, जहाँ ध्यान करने वाला, ध्यान की क्रिया और ध्यान का विषय एक दूसरे में विलीन होने लगते हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि सच्चा ध्यान मन को शांत करने के लिए मजबूर करने के बारे में नहीं है, बल्कि मानसिक शांति के लिए स्वाभाविक रूप से परिस्थितियाँ बनाने के बारे में है।

अपनी शिक्षाओं में विवेकानंद ने ध्यान विकसित करने के लिए विभिन्न विधियाँ प्रदान कीं, जिनमें चेतना की प्रकृति पर ध्यान, दार्शनिक सत्यों का चिंतन और भक्ति अभ्यास शामिल हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ध्यान तकनीक का चुनाव व्यक्ति के स्वभाव और झुकाव के अनुकूल होना चाहिए।

3.4.8 समाधि

समाधि, आठवाँ और अंतिम अंग, राजयोग के अंतिम लक्ष्य का प्रतिनिधित्व करता है। यह ध्यान की वस्तु के साथ पूर्ण तल्लीनता या एकता की स्थिति है। इस अवस्था में, व्यक्तिगत आत्म की भावना विलीन हो जाती है, और ध्यान करने वाला व्यक्ति परम वास्तविकता या चेतना की प्रत्यक्ष अनुभूति का अनुभव करता है।

विवेकानंद ने समाधि के विभिन्न स्तरों का वर्णन किया:

1. सविकल्प समाधि: एक ऐसी अवस्था जहाँ ध्यान करने वाले और ध्यान के विषय के बीच अभी भी एक सूक्ष्म अंतर है।
2. निर्विकल्प समाधि: वह सर्वोच्च अवस्था जहाँ सभी भेद समाप्त हो जाते हैं, तथा अद्वैत जागरूकता में पूर्ण लीनता आ जाती है।

विवेकानंद ने इस बात पर जोर दिया कि समाधि केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि एक अनुभवात्मक वास्तविकता है जिसे समर्पित अभ्यास के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने तर्क दिया कि समाधि का अनुभव वेदान्त दर्शन में चर्चित परम सत्य का प्रत्यक्ष, अनुभवात्मक ज्ञान प्रदान करता है।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि विवेकानंद ने इन आठ अंगों को कठोर, अनुक्रमिक चरणों के रूप में नहीं देखा, बल्कि परस्पर संबंधित अभ्यासों के रूप में देखा जो एक दूसरे का समर्थन और सुदृढीकरण करते हैं। एक अभ्यासी एक साथ कई अंगों पर काम कर सकता है, जिसमें एक क्षेत्र में प्रगति दूसरे क्षेत्रों में विकास का समर्थन करती है।

3.5 विवेकानंद की व्याख्या और योगदान

स्वामी विवेकानंद द्वारा राज योग की व्याख्या योग दर्शन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण क्षण है। इन प्राचीन शिक्षाओं की उनकी अनूठी व्याख्या और प्रस्तुति ने उन्हें वैश्विक दर्शकों के लिए सुलभ और आधुनिक दुनिया के लिए प्रासंगिक बना दिया। विवेकानंद के योगदान के कुछ प्रमुख पहलू इस प्रकार हैं:

1. सार्वभौमिकता: विवेकानंद ने राज योग को मन के सार्वभौमिक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया, जो सांस्कृतिक या धार्मिक बंधनों से मुक्त है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि राज योग के सिद्धांतों और अभ्यासों को कोई भी व्यक्ति अपना सकता है, चाहे उसकी धार्मिक या सांस्कृतिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो।
2. वैज्ञानिक दृष्टिकोण: विवेकानंद ने राजयोग के तरीकों और वैज्ञानिक जांच के बीच लगातार समानताएं बताईं। उन्होंने आध्यात्मिक अनुभवों को ऐसी घटनाओं के रूप में प्रस्तुत किया जिनका व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया जा सकता है और व्यक्तिगत प्रयोग के माध्यम से सत्यापित किया जा सकता है।
3. मनोवैज्ञानिक व्याख्या: विवेकानंद ने कई पारंपरिक योग अवधारणाओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। उदाहरण के लिए, उन्होंने "कुंडलिनी" (आध्यात्मिक ऊर्जा जो रीढ़ की हड्डी के आधार पर निष्क्रिय रहती है) के विचार को मन की संभावित ऊर्जा के संदर्भ में समझाया।
4. व्यावहारिक अनुप्रयोग: आध्यात्मिक मुक्ति के अंतिम लक्ष्य को स्वीकार करते हुए, विवेकानंद ने दैनिक जीवन में राज योग अभ्यासों के व्यावहारिक लाभों पर भी जोर दिया, जैसे कि बेहतर एकाग्रता, भावनात्मक स्थिरता और तनाव में कमी।
5. अन्य मार्गों के साथ एकीकरण: विवेकानंद ने राज योग को कर्म योग, भक्ति योग और ज्ञान योग जैसे अन्य आध्यात्मिक मार्गों के पूरक के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने तर्क दिया कि अलग-अलग व्यक्ति अपने स्वभाव के आधार पर अलग-अलग मार्गों की ओर आकर्षित हो सकते हैं, लेकिन सभी मार्ग अंततः एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं।
6. रहस्योद्घाटन: विवेकानंद ने योग के कई पहलुओं को रहस्योद्घाटन करने का काम किया, जो गूढ़ भाषा में छिपे हुए थे। उन्होंने उन अभ्यासों और अनुभवों के लिए स्पष्ट, तर्कसंगत व्याख्याएँ प्रदान कीं, जिन्हें अक्सर रहस्यमय शब्दों में वर्णित किया जाता था।
7. प्रत्यक्ष अनुभव पर जोर: शास्त्रों के अधिकार का सम्मान करते हुए, विवेकानंद ने आध्यात्मिक मामलों में प्रत्यक्ष, व्यक्तिगत अनुभव के महत्व पर लगातार जोर दिया। उन्होंने अभ्यासियों को केवल

ग्रंथों या शिक्षकों पर निर्भर रहने के बजाय आध्यात्मिक सत्य को स्वयं सत्यापित करने के लिए प्रोत्साहित किया।

8. नैतिक आधार: विवेकानंद ने सभी आध्यात्मिक अभ्यासों के आधार के रूप में योग (यम और नियम) के नैतिक सिद्धांतों पर जोर दिया। उन्होंने तर्क दिया कि इस नैतिक आधार के बिना, उच्च आध्यात्मिक अनुभव भ्रामक या हानिकारक भी हो सकते हैं।

9. मन-शरीर संबंध: विवेकानंद ने मानसिक अवस्थाओं और शारीरिक स्वास्थ्य के बीच घनिष्ठ संबंध को स्पष्ट किया, तथा बाद में मनोदैहिक चिकित्सा और स्वास्थ्य मनोविज्ञान में विकसित कई विचारों का पूर्वानुमान लगाया।

10. धर्मनिरपेक्ष आध्यात्मिकता: राज योग को आध्यात्मिकता के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत करके, विवेकानंद ने उन लोगों के लिए एक मार्ग प्रस्तुत किया जो पारंपरिक धार्मिक दृष्टिकोणों के प्रति संशयी थे, लेकिन फिर भी गहन अर्थ और आत्म-साक्षात्कार की तलाश में थे।

3.6 राज योग के व्यावहारिक अनुप्रयोग

राज योग का अंतिम लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना है, लेकिन विवेकानंद ने रोजमर्रा की ज़िंदगी में इसके व्यावहारिक अनुप्रयोगों पर जोर दिया। यहाँ कुछ तरीके दिए गए हैं जिनसे राज योग के सिद्धांतों और अभ्यासों को लागू किया जा सकता है:

1. तनाव प्रबंधन: राज योग की विश्राम तकनीक और श्वास व्यायाम (प्राणायाम) तनाव और चिंता को प्रबंधित करने के लिए शक्तिशाली उपकरण हो सकते हैं। नियमित अभ्यास चुनौतीपूर्ण स्थितियों में भावनात्मक संतुलन बनाए रखने में मदद कर सकता है।

2. एकाग्रता और ध्यान: राज योग के एकाग्रता अभ्यास (धारणा) को काम या अध्ययन में ध्यान और उत्पादकता में सुधार करने के लिए लागू किया जा सकता है। ये तकनीकें विकर्षणों पर काबू पाने और संज्ञानात्मक प्रदर्शन को बढ़ाने में मदद कर सकती हैं।

3. भावनात्मक विनियमन: प्रत्याहार (संवेदी वापसी) और ध्यान जैसी प्रथाओं के माध्यम से, राज योग व्यक्ति की भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को देखने और विनियमित करने के लिए उपकरण प्रदान करता है। इससे बेहतर भावनात्मक बुद्धिमत्ता और पारस्परिक कौशल विकसित हो सकते हैं।

4. शारीरिक स्वास्थ्य: यद्यपि राज योग प्राथमिक ध्यान का केन्द्र नहीं है, फिर भी राज योग के शारीरिक अभ्यास (विशेष रूप से आसन और प्राणायाम) बेहतर शारीरिक स्वास्थ्य में योगदान दे सकते हैं, जिसमें बेहतर मुद्रा, श्वसन क्रिया और समग्र जीवन शक्ति शामिल है।

5. आत्म-समझ: राज योग के आत्मनिरीक्षण अभ्यास, विशेष रूप से स्वाध्याय, व्यक्ति को अपने विचारों, प्रेरणाओं और व्यवहारों के बारे में अधिक आत्म-जागरूकता और समझ प्रदान कर सकते हैं।

6. नैतिक जीवन: यम और नियम के नैतिक सिद्धांत नैतिक निर्णय लेने और सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं। इन्हें व्यक्तिगत संबंधों, व्यावसायिक संदर्भों और सामाजिक संबंधों में लागू किया जा सकता है।
7. लक्ष्य निर्धारण और प्राप्ति: राज योग का अनुशासित दृष्टिकोण, जिसमें एकाग्रता और इच्छाशक्ति पर जोर दिया जाता है, व्यक्तिगत और व्यावसायिक लक्ष्य निर्धारित करने और उन्हें प्राप्त करने के लिए लागू किया जा सकता है।
8. रचनात्मकता और समस्या-समाधान: राज योग अभ्यासों के माध्यम से विकसित मानसिक स्पष्टता और विस्तारित जागरूकता रचनात्मक सोच और समस्या-समाधान क्षमताओं को बढ़ा सकती है।
9. नींद की गुणवत्ता: विश्राम तकनीक और ध्यान अभ्यास नींद की गुणवत्ता में सुधार लाने और अनिद्रा पर काबू पाने में मदद कर सकते हैं।
10. दर्द प्रबंधन: एकाग्रता तकनीक और ध्यान, दर्द की अनुभूति में परिवर्तन लाकर और उससे संबंधित तनाव को कम करके, दीर्घकालिक दर्द की स्थिति के प्रबंधन में सहायक पाए गए हैं।
11. व्यसन मुक्ति: राज योग की आत्म-अनुशासन और मन-नियंत्रण तकनीकें व्यसनकारी व्यवहार पर काबू पाने और उससे उबरने में मूल्यवान उपकरण हो सकती हैं।
12. नेतृत्व और निर्णय लेने की क्षमता: राज योग के माध्यम से विकसित आत्म-जागरूकता और भावनात्मक संतुलन नेतृत्व कौशल को बढ़ा सकता है और व्यावसायिक संदर्भों में निर्णय लेने की क्षमता में सुधार कर सकता है।

3.7 आधुनिक विश्व में राज योग

स्वामी विवेकानंद द्वारा व्याख्या किए गए राज योग के सिद्धांतों और प्रथाओं को आधुनिक विश्व में अनेक अनुप्रयोग और व्याख्याएं मिली हैं:

1. माइंडफुलनेस मूवमेंट: राज योग की कई एकाग्रता और ध्यान तकनीकें आधुनिक माइंडफुलनेस प्रथाओं से बहुत मिलती-जुलती हैं। पश्चिमी मनोविज्ञान और स्वास्थ्य सेवा में माइंडफुलनेस की बढ़ती लोकप्रियता को राज योग सिद्धांतों की समकालीन अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है।
2. सकारात्मक मनोविज्ञान: राजयोग में सकारात्मक मानसिक स्थिति विकसित करने पर जोर दिया जाता है, जो सकारात्मक मनोविज्ञान के लक्ष्यों के अनुरूप है, जो मनोविज्ञान की एक शाखा है जो कल्याण और मानव उत्कर्ष को बढ़ावा देने पर केंद्रित है।
3. न्यूरोसाइंटिफिक रिसर्च: मस्तिष्क पर ध्यान और योग अभ्यासों के प्रभाव न्यूरोसाइंटिफिक रिसर्च का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गए हैं। अध्ययनों से पता चला है कि इन अभ्यासों से मस्तिष्क की संरचना और कार्य में मापनीय परिवर्तन हो सकते हैं।
4. कॉर्पोरेट कल्याण कार्यक्रम: कई निगमों ने कर्मचारियों के कल्याण और उत्पादकता के लिए उनके लाभों को पहचानते हुए, अपने कल्याण कार्यक्रमों में योग और ध्यान प्रथाओं को शामिल किया है।

5. शिक्षा: छात्रों को तनाव प्रबंधन और एकाग्रता में सुधार करने में मदद करने के लिए योग से प्राप्त माइंडफुलनेस और ध्यान तकनीकों को शैक्षिक सेटिंग्स में पेश किया जा रहा है।
6. खेल और प्रदर्शन: खिलाड़ी और कलाकार ध्यान बढ़ाने, दबाव को प्रबंधित करने और समय प्रदर्शन में सुधार करने के लिए योग और ध्यान तकनीकों का उपयोग तेजी से कर रहे हैं।
7. डिजिटल अनुप्रयोग: अनेक मोबाइल ऐप और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म अब निर्देशित ध्यान और योग अभ्यास प्रदान करते हैं, जिससे ये तकनीकें अधिक व्यापक दर्शकों के लिए सुलभ हो गई हैं।
8. एकीकृत चिकित्सा: राज योग अभ्यास, विशेषकर ध्यान और प्राणायाम, को तेजी से पूरक और वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों में एकीकृत किया जा रहा है।
9. मनोचिकित्सा: कुछ मनोचिकित्सक योग से प्राप्त माइंडफुलनेस और ध्यान तकनीकों को अपने चिकित्सीय दृष्टिकोण में शामिल करते हैं, विशेष रूप से चिंता और अवसाद के उपचार में।
10. स्व-सहायता और व्यक्तिगत विकास: राज योग के सिद्धांत स्व-सहायता और व्यक्तिगत विकास उद्योग को प्रभावित करना जारी रखते हैं, तथा कई लेखक और वक्ता इन अवधारणाओं पर आधारित हैं।

3.8 आलोचनात्मक विश्लेषण और दार्शनिक निहितार्थ

यद्यपि राज योग ने व्यापक लोकप्रियता और अनुप्रयोग प्राप्त कर लिया है, फिर भी इसके दार्शनिक निहितार्थों और संभावित चुनौतियों की आलोचनात्मक जांच करना महत्वपूर्ण है:

1. मन-शरीर द्वैतवाद: मानसिक अनुशासन के माध्यम से भौतिक शरीर से परे जाने पर राज योग का जोर मन-शरीर द्वैतवाद को मजबूत करने के रूप में देखा जा सकता है। इस दृष्टिकोण को कुछ समकालीन दार्शनिकों और संज्ञानात्मक वैज्ञानिकों द्वारा चुनौती दी गई है जो मन और शरीर के अधिक एकीकृत दृष्टिकोण के लिए तर्क देते हैं।
2. आध्यात्मिक अनुभवों की सत्यापनीयता: जबकि विवेकानंद ने राज योग को एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत किया, समाधि जैसे उन्नत आध्यात्मिक अनुभवों की व्यक्तिपरक प्रकृति अनुभवजन्य सत्यापन के लिए चुनौतियां पेश करती है।
3. सांस्कृतिक विनियोग: पश्चिमी संदर्भों में योग प्रथाओं को अपनाए जाने से, जो प्रायः उनकी दार्शनिक और सांस्कृतिक जड़ों से अलग होती हैं, सांस्कृतिक विनियोग के बारे में चिंताएं उत्पन्न हुई हैं।
4. सुगम्यता: राज योग के उन्नत चरणों के लिए महत्वपूर्ण समय और समर्पण की आवश्यकता होती है, जो आधुनिक समाज में कई व्यक्तियों के लिए संभव नहीं हो सकता है।
5. नैतिक निहितार्थ: राज योग (यम और नियम) के नैतिक सिद्धांत नैतिकता की प्रकृति और आध्यात्मिकता और नैतिकता के बीच संबंध के बारे में दार्शनिक प्रश्न उठाते हैं।
6. चेतना अध्ययन: चेतना की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में राजयोग की खोज, मन के दर्शन और चेतना अध्ययन में समकालीन बहस के साथ संरेखित होती है।

7. आत्म और अद्वैत: राजयोग में आत्म-साक्षात्कार की अवधारणा, विशेष रूप से समाधि में अद्वैत जागरूकता का अनुभव, आत्म और वास्तविकता की प्रकृति के बारे में गहन दार्शनिक प्रश्न उठाता है।
8. ज्ञानमीमांसा: राज योग का प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान पर जोर, पारंपरिक पश्चिमी ज्ञानमीमांसा ढांचे को चुनौती देता है जो तर्कसंगत और अनुभवजन्य ज्ञान को प्राथमिकता देते हैं।
9. स्वतंत्र इच्छा और नियतिवाद: यह विचार कि अभ्यास के माध्यम से मन पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है, स्वतंत्र इच्छा की प्रकृति और इस सीमा के बारे में प्रश्न उठाता है कि हम किस हद तक अपनी मानसिक प्रक्रियाओं को आकार दे सकते हैं।
10. बहुलवाद बनाम निरपेक्षतावाद: जबकि विवेकानंद ने राज योग को विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक प्रणालियों के साथ संगत के रूप में प्रस्तुत किया, योग अभ्यास के माध्यम से सुलभ एक परम, सार्वभौमिक सत्य के दावे को दार्शनिक निरपेक्षता के रूप में देखा जा सकता है।

3.9 सारांश

स्वामी विवेकानंद की राजयोग की व्याख्या पूर्वी आध्यात्मिक ज्ञान को पश्चिमी वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारों से जोड़ने का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। प्रत्यक्ष अनुभव, व्यवस्थित अभ्यास और मानव विकास की क्षमता पर इसका जोर अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों और आधुनिक जीवन के क्षेत्रों में गूंजता रहता है। एमए दर्शनशास्त्र के छात्रों के रूप में, आपका कार्य इन विचारों के साथ आलोचनात्मक रूप से जुड़ना, उनके दार्शनिक निहितार्थों की जांच करना, उनकी सुसंगतता और वैधता का आकलन करना और समकालीन दार्शनिक बहसों के लिए उनकी प्रासंगिकता पर विचार करना है। चाहे कोई अंततः राज योग के सिद्धांतों को स्वीकार करे या अस्वीकार करे, इस विचार प्रणाली से जुड़ने से मन, चेतना, नैतिकता और मानव क्षमता की प्रकृति के बारे में मूल्यवान अंतर्दृष्टि मिल सकती है।

मनोविज्ञान से लेकर तंत्रिका विज्ञान और शिक्षा तक के क्षेत्रों में राज योग का स्थायी प्रभाव इसकी निरंतर प्रासंगिकता को दर्शाता है। साथ ही, इसके सिद्धांतों और प्रथाओं के इर्द-गिर्द होने वाली आलोचनाएँ और बहसों निरंतर आलोचनात्मक जाँच और संवाद की आवश्यकता को उजागर करती हैं।

जैसे-जैसे आप अपने दार्शनिक अध्ययन को जारी रखते हैं, इस बात पर विचार करें कि राज योग में प्रस्तुत विचार आपके सामने आने वाली अन्य दार्शनिक प्रणालियों को कैसे सूचित, चुनौती या पूरक कर सकते हैं। इस बात पर विचार करें कि ये अवधारणाएँ आपके अपने अनुभवों और टिप्पणियों पर कैसे लागू हो सकती हैं, और इन विचारों का और अधिक पता लगाने के लिए अपनी खुद की दार्शनिक जाँच या अनुभवजन्य अध्ययन को डिज़ाइन करने पर विचार करें।

याद रखें, दार्शनिक अन्वेषण का लक्ष्य आवश्यक रूप से अंतिम, निरपेक्ष उत्तरों तक पहुंचना नहीं है, बल्कि प्रश्न पूछने, विश्लेषण करने और चिंतन की प्रक्रिया में संलग्न होना है, जो हमारी समझ को गहरा करता है और अस्तित्व, ज्ञान और मूल्य के मूलभूत प्रश्नों पर हमारे दृष्टिकोण का विस्तार करता है।

स्वामी विवेकानंद द्वारा राज योग की व्याख्या पूर्वी और पश्चिमी दार्शनिक तथा आध्यात्मिक प्रवचन दोनों में महत्वपूर्ण योगदान का प्रतिनिधित्व करती है। प्राचीन योगिक ज्ञान को आधुनिक दर्शकों के लिए सुलभ प्रारूप में प्रस्तुत करके, विवेकानंद ने योग दर्शन और अभ्यास के वैश्विक प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

याद रखने योग्य मुख्य बिंदु:

1. राज योग को आध्यात्मिकता के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें प्रत्यक्ष अनुभव और व्यवस्थित अभ्यास पर जोर दिया जाता है।
2. राज योग के आठ अंग आध्यात्मिक विकास के लिए एक व्यापक ढांचा प्रदान करते हैं, जो जीवन के नैतिक, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पहलुओं को संबोधित करते हैं।
3. विवेकानंद की व्याख्या, राजयोग के परम आध्यात्मिक लक्ष्यों से परे, दैनिक जीवन में इसके व्यावहारिक अनुप्रयोगों पर जोर देती है।
4. राज योग सिद्धांतों को मनोविज्ञान, तंत्रिका विज्ञान, शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल जैसे आधुनिक क्षेत्रों में कई अनुप्रयोग मिले हैं।
5. राज योग का दर्शन मन के दर्शन, नैतिकता, ज्ञान-मीमांसा और चेतना की प्रकृति जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है।

दर्शनशास्त्र में अपने अध्ययन को जारी रखते हुए, इस बात पर विचार करें कि राज योग के सिद्धांत और अभ्यास आपके सामने आने वाली अन्य दार्शनिक प्रणालियों को कैसे सूचित या चुनौती दे सकते हैं। इस बात पर विचार करें कि इन विचारों को आपके अपने जीवन और शैक्षणिक कार्य में कैसे लागू किया जा सकता है, और मन और वास्तविकता को समझने के लिए राज योग के दृष्टिकोण के व्यापक निहितार्थों पर विचार करें।

3.10 मूल्यांकन प्रश्न

1. स्वामी विवेकानंद द्वारा वर्णित राजयोग के आठ अंगों की व्याख्या करें। वे आपस में कैसे संबंधित हैं?
2. राजयोग के बारे में विवेकानंद की व्याख्या पारंपरिक प्रस्तुतियों से किस तरह भिन्न थी? उनका दृष्टिकोण किस तरह अद्वितीय था?
3. राजयोग और वैज्ञानिक जांच के बीच विवेकानंद द्वारा बताई गई समानताओं पर चर्चा करें। आपको यह तुलना कितनी विश्वसनीय लगती है?

4. राजयोग में समाधि की अवधारणा का विश्लेषण करें। इसका आत्मज्ञान या परम ज्ञान की अन्य दार्शनिक अवधारणाओं से क्या संबंध है?
5. यम और नियम के नैतिक सिद्धांतों को आधुनिक संदर्भ में कैसे लागू किया जा सकता है? क्या वे अभी भी प्रासंगिक हैं?
6. शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा या व्यवसाय जैसे क्षेत्रों में राज योग अभ्यासों को लागू करने के संभावित लाभों और चुनौतियों पर चर्चा करें।
7. मन और चेतना को समझने के लिए राजयोग का दृष्टिकोण संज्ञानात्मक विज्ञान और मन के दर्शन के समकालीन सिद्धांतों के साथ किस प्रकार तुलना करता है?
8. इस दावे की आलोचनात्मक जांच करें कि राज योग परम वास्तविकता के प्रत्यक्ष, अनुभवात्मक ज्ञान की ओर ले जा सकता है। इससे कौन से दार्शनिक मुद्दे उठते हैं?
9. राजयोग द्वारा मानसिक अनुशासन और नियंत्रण पर दिए जाने वाले जोर को मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण की समकालीन समझ के साथ किस प्रकार सामंजस्य बिठाया जा सकता है?
10. योग प्रथाओं के वैश्विक प्रसार के संभावित सांस्कृतिक और नैतिक निहितार्थों पर चर्चा करें, जो उनके मूल दार्शनिक संदर्भ से अलग हैं।

3.11 उपयोगी पुस्तकें -

1. स्वामी विवेकानन्द, "राजयोग"
2. पतंजलि, "योग सूत्र"
3. जॉर्ज फ्यूरस्टीन, "योग परंपरा: इसका इतिहास, साहित्य, दर्शन और अभ्यास"
4. बी.के.एस. अयंगर, "लाइट ऑन योगा"
5. मिसिया एलियाडे, "योग: अमरता और स्वतंत्रता"
6. डेविड गॉर्डन व्हाइट, "पतंजलि का योग सूत्र: एक जीवनी"
7. एडविन ब्रायंट, "पतंजलि के योग सूत्र: एक नया संस्करण, अनुवाद और टिप्पणी"
8. स्टीफन फिलिप्स, "योग, कर्म और पुनर्जन्म: एक संक्षिप्त इतिहास और दर्शन"
9. स्टुअर्ट रे सरबकर, "समाधि: भारत-तिब्बती योग में अलौकिक और निरोधात्मक"
10. मार्क सिंगलटन, "योग बॉडी: आधुनिक आसन अभ्यास की उत्पत्ति"

3.12 शब्दावली

1. आसन: योग मुद्राएं या शारीरिक व्यायाम।
2. धारणा: एकाग्रता, राजयोग का छठा अंग।
3. ध्यान: ध्यान, राजयोग का सातवाँ अंग।
4. ईश्वर प्रणिधान: ईश्वर के प्रति समर्पण, नियमों में से एक।
5. नियम: पालन या सकारात्मक कर्तव्य, राजयोग का दूसरा अंग।

6. प्राणायाम: श्वास नियंत्रण, राजयोग का चौथा अंग।
7. प्रत्याहार: इन्द्रियों का संयमन, राजयोग का पांचवा अंग।
8. राज योग: "शाही योग" या "योगों का राजा", योग की एक प्रणाली जो मन पर नियंत्रण पर केंद्रित है।
9. समाधि: तल्लीनता या मिलन की अवस्था, राजयोग का आठवां अंग।
10. यम: नैतिक संयम या नैतिक अनुशासन, राजयोग का पहला अंग।

.....00000.....

खण्ड.2 श्री अरविंद

खण्ड परिचय

प्रस्तुत खंड में हम श्री अरविंद का जीवन परिचय, श्री अरविंद के दर्शन का परिचय, श्री अरविंद का विकासवाद: मूल अवधारणाएँ , सच्चिदानंद की अवधारणा , अतिमानस की अवधारणा , पूर्ण योग की अवधारणा, श्री अरविंद के विकासवाद की प्रक्रिया: आरोहण और अवरोहण, मानव चेतना का विकास, अतिमानसीय चेतना की प्राप्ति, श्री अरविंद के विकासवाद का दार्शनिक महत्व, श्री अरविंद के विकासवाद की आलोचनात्मक समीक्षा, श्री अरविंद के विकासवाद का वर्तमान प्रासंगिकता इत्यादि का अध्ययन करेंगे।

इसके अतिरिक्त हम आतिमानस की अवधारणा , आतिमानस की परिभाषा और महत्व, आतिमानस और मन के बीच अंतर , आतिमानस की विशेषताएँ, आतिमानस और विकास का सिद्धांत , श्री अरविंद का विकासवादी दृष्टिकोण , आतिमानस का विकास में भूमिका , मानव चेतना का उत्थान और आतिमानस, आतिमानस और योग, पूर्ण योग की अवधारणा, आतिमानस प्राप्ति मंत्र योग की भूमिका , साधना और आत्म-परिवर्तन, आतिमानस और समाज , आतिमानस और सामाजिक परिवर्तन , मानव एकता की अवधारणा , आतिमानस और वैश्विक चेतना, आतिमानस सिद्धांत की आलोचनात्मक समीक्षा , आतिमानस सिद्धांत के गुण , आतिमानस सिद्धांत की सीमाएँ और चुनौतियाँ , समकालीन दर्शन में आतिमानस सिद्धांत का महत्व इत्यादि का अध्ययन करेंगे ।

इकाई 4 - विकासवाद

इकाई 4- विकासवाद

विषय सूची

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 श्री अरविंद का जीवन परिचय
- 4.4 श्री अरविंद के दर्शन का परिचय
- 4.5 श्री अरविंद का विकासवाद: मूल अवधारणाएँ
- 4.5.1 सच्चिदानंद की अवधारणा
- 4.5.2 अतिमानस की अवधारणा
- 4.5.3 पूर्ण योग की अवधारणा
- 4.6 श्री अरविंद के विकासवाद की प्रक्रिया
4. 6.1 आरोहण और अवरोहण
4. 6.2 मानव चेतना का विकास
4. 6.3 अतिमानसीय चेतना की प्राप्ति
- 4.7 श्री अरविंद के विकासवाद का दार्शनिक महत्व
- 4.8 श्री अरविंद के विकासवाद की आलोचनात्मक समीक्षा
- 4.9 श्री अरविंद के विकासवाद का वर्तमान प्रासंगिकता
- 4.10 सारांश
- 4.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न
- 4.12 उपयोगी पुस्तकें व संदर्भ ग्रंथ सूची

-----000-----

4.1 प्रस्तावना

श्री अरविंद का विकासवाद भारतीय दर्शन की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जो 20 वीं सदी के महान दार्शनिक और योगी श्री अरविंद घोष द्वारा प्रतिपादित की गई। यह सिद्धांत मानव चेतना के विकास और उसके परम लक्ष्य को समझने का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इस स्वयं अध्ययन सामग्री में हम श्री अरविंद के विकासवाद की गहन समझ विकसित करेंगे, उनके जीवन और दर्शन के संदर्भ में इसे समझेंगे, और इसके दार्शनिक महत्व तथा वर्तमान प्रासंगिकता पर विचार करेंगे।

श्री अरविंद का विकासवाद पारंपरिक भारतीय दर्शन और आधुनिक वैज्ञानिक विचारधारा का एक अद्वितीय संश्लेषण है। यह सिद्धांत मानता है कि प्रकृति में एक निरंतर विकास की प्रक्रिया चल रही है,

जो केवल भौतिक स्तर तक ही सीमित नहीं है, बल्कि चेतना के उच्चतम स्तरों तक विस्तारित है। श्री अरविंद के अनुसार, यह विकास एक दिव्य योजना का हिस्सा है, जिसका उद्देश्य पृथ्वी पर एक नए प्रकार की चेतना को प्रकट करना है, जिसे वे 'अतिमानस' कहते हैं।

इस पाठ्यक्रम में हम श्री अरविंद के विकासवाद की मूल अवधारणाओं, उसकी प्रक्रिया, और उसके दार्शनिक निहितार्थों का गहन अध्ययन करेंगे। हम यह भी समझेंगे कि कैसे यह सिद्धांत भारतीय दर्शन की परंपरा में एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है और वर्तमान समय में इसकी क्या प्रासंगिकता है।

4.2 उद्देश्य

इस स्वयं अध्ययन सामग्री को पूरा करने के बाद, आप निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे:

1. श्री अरविंद के जीवन और दार्शनिक योगदान का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना।
2. श्री अरविंद के विकासवाद की मूल अवधारणाओं को समझना, जैसे सच्चिदानंद, अतिमानस, और पूर्ण योग।
3. श्री अरविंद के विकासवाद की प्रक्रिया को समझना, जिसमें आरोहण और अवरोहण की अवधारणाएँ शामिल हैं।
4. मानव चेतना के विकास और अतिमानसीय चेतना की प्राप्ति के बारे में श्री अरविंद के विचारों को समझना।
5. श्री अरविंद के विकासवाद का भारतीय दर्शन और वैश्विक दार्शनिक चिंतन में महत्व को समझना।
6. श्री अरविंद के विकासवाद की आलोचनात्मक समीक्षा करने की क्षमता विकसित करना।
7. श्री अरविंद के विकासवाद की वर्तमान प्रासंगिकता पर चिंतन करना।
8. श्री अरविंद के विकासवाद के संदर्भ में स्वतंत्र रूप से सोचने और विश्लेषण करने की क्षमता विकसित करना।

4.3 श्री अरविंद का जीवन परिचय

श्री अरविंद घोष का जन्म 15 अगस्त 1872 को कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में हुआ था। उनके पिता डॉ. कृष्णधन घोष एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे और पाश्चात्य शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। श्री अरविंद की प्रारंभिक शिक्षा दार्जिलिंग में हुई और फिर उन्हें उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया।

इंग्लैंड में श्री अरविंद ने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के किंग्स कॉलेज में अध्ययन किया। वहाँ उन्होंने क्लासिकल अंग्रेजी साहित्य में विशेषज्ञता हासिल की और भारतीय सिविल सेवा की परीक्षा में भी सफलता प्राप्त की। हालांकि, उन्होंने सिविल सेवा में शामिल होने से इनकार कर दिया और 1893 में भारत लौट आए।

भारत लौटने के बाद, श्री अरविंद बड़ौदा राज्य की सेवा में शामिल हो गए और वहाँ के कॉलेज में अंग्रेजी और फ्रेंच के प्रोफेसर बने। इस दौरान उन्होंने संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं का गहन अध्ययन किया और वेद, उपनिषद, और अन्य प्राचीन भारतीय ग्रंथों में गहरी रुचि विकसित की।

1906 में, श्री अरविंद ने बंगाल के राजनीतिक आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाना शुरू किया। वे स्वराज के प्रबल समर्थक थे और 'वंदे मातरम्' नामक एक राष्ट्रवादी समाचार पत्र के संपादक बने। उनकी राजनीतिक गतिविधियों के कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 1908 में गिरफ्तार कर लिया और अलीपुर जेल में बंद कर दिया।

जेल में बिताए एक वर्ष के दौरान, श्री अरविंद ने गहन आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त किए। उन्होंने भगवद्गीता का गहन अध्ययन किया और योग साधना में लीन हो गए। जेल से रिहा होने के बाद, उन्होंने सक्रिय राजनीति छोड़ दी और अपना जीवन आध्यात्मिक साधना और दार्शनिक चिंतन को समर्पित कर दिया।

1910 में, श्री अरविंद पांडिचेरी (वर्तमान पुदुचेरी) चले गए, जो उस समय फ्रांसीसी उपनिवेश था। वहाँ उन्होंने अपने आश्रम की स्थापना की और अपने दर्शन और योग पद्धति को विकसित किया। उनकी योग साधना का मुख्य लक्ष्य था मानव चेतना का रूपांतरण और पृथ्वी पर एक नई, उच्चतर चेतना की अभिव्यक्ति।

श्री अरविंद ने अपने जीवन के अंतिम 40 वर्ष पांडिचेरी में बिताए, जहाँ उन्होंने अपने दर्शन और योग पद्धति पर कई पुस्तकें लिखीं। उनकी प्रमुख रचनाओं में 'द लाइफ डिवाइन', 'द सिंथेसिस ऑफ योगा', और 'सावित्री' शामिल हैं। उन्होंने 5 दिसंबर 1950 को अपना शरीर त्याग दिया, लेकिन उनका दर्शन और विचार आज भी दुनिया भर में लोगों को प्रेरित कर रहे हैं।

श्री अरविंद का जीवन एक असाधारण यात्रा थी - एक ब्रिटिश शिक्षित बुद्धिजीवी से लेकर एक क्रांतिकारी राष्ट्रवादी, और फिर एक महान योगी और दार्शनिक तक। उनके जीवन और कार्य ने न केवल भारतीय दर्शन को समृद्ध किया, बल्कि पूरी दुनिया में आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन को एक नया आयाम दिया।

4.4 श्री अरविंद के दर्शन का परिचय

श्री अरविंद का दर्शन एक व्यापक और समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जो पूर्व और पश्चिम के दार्शनिक विचारों का एक अनूठा संश्लेषण है। उनका दर्शन वेदांत, उपनिषद, और भगवद्गीता जैसे प्राचीन भारतीय ग्रंथों से प्रेरित है, साथ ही यह आधुनिक वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारों से भी प्रभावित है। श्री अरविंद के दर्शन के कुछ मुख्य पहलू इस प्रकार हैं:

1. पूर्ण अद्वैतवाद: श्री अरविंद का दर्शन 'पूर्ण अद्वैतवाद' पर आधारित है। वे मानते हैं कि सभी अस्तित्व एक ही दिव्य सत्ता का प्रकटीकरण है, जिसे वे 'सच्चिदानंद' कहते हैं। यह दृष्टिकोण शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत से प्रेरित है, लेकिन इसमें जगत की वास्तविकता को भी स्वीकार किया गया है।
2. विकासवाद: श्री अरविंद का दर्शन एक आध्यात्मिक विकासवाद प्रस्तुत करता है। वे मानते हैं कि प्रकृति में एक निरंतर विकास की प्रक्रिया चल रही है, जो न केवल भौतिक स्तर पर, बल्कि चेतना के स्तर पर भी हो रही है। यह विकास की प्रक्रिया अंततः 'अतिमानस' की प्राप्ति की ओर ले जाती है।
3. अतिमानस की अवधारणा: 'अतिमानस' श्री अरविंद के दर्शन का एक केंद्रीय विचार है। यह एक उच्च चेतना का स्तर है जो मानव मन से परे है और जो सत्य को प्रत्यक्ष रूप से जानने और अनुभव करने की क्षमता रखता है।
4. पूर्ण योग: श्री अरविंद ने 'पूर्ण योग' की अवधारणा प्रस्तुत की, जो व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास और सामूहिक मानव विकास को एक साथ जोड़ती है। इस योग का लक्ष्य है मनुष्य की समस्त प्रकृति का रूपांतरण और दिव्य जीवन की स्थापना।
5. मानव एकता और विश्व चेतना: श्री अरविंद ने मानव एकता और विश्व चेतना के विचार पर बल दिया। उनका मानना था कि मानवता का भविष्य एक ऐसे समाज की ओर है जो आध्यात्मिक रूप से जागृत है और एकता की भावना से ओतप्रोत है।
6. जीवन का दिव्यीकरण: श्री अरविंद का दर्शन जीवन से पलायन या इसे नकारने की बजाय जीवन के दिव्यीकरण पर जोर देता है। उनका मानना था कि आध्यात्मिक साधना का लक्ष्य केवल व्यक्तिगत मोक्ष नहीं, बल्कि समस्त मानवता और प्रकृति का रूपांतरण होना चाहिए।
7. समन्वयवादी दृष्टिकोण: श्री अरविंद का दर्शन विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है। वे मानते थे कि सभी धर्म और दर्शन एक ही सत्य के विभिन्न पहलुओं को व्यक्त करते हैं।
8. चेतना के स्तर: श्री अरविंद ने चेतना के विभिन्न स्तरों का वर्णन किया, जो भौतिक से लेकर मानसिक, और फिर अतिमानसीय तक जाते हैं। उनके अनुसार, विकास की प्रक्रिया इन विभिन्न स्तरों के माध्यम से आगे बढ़ती है।
9. आध्यात्मिक प्रगति का व्यावहारिक दृष्टिकोण: श्री अरविंद का दर्शन केवल सैद्धांतिक नहीं है, बल्कि यह व्यावहारिक आध्यात्मिक प्रगति पर भी जोर देता है। उन्होंने विस्तृत योग पद्धति विकसित की जो व्यक्ति के समग्र विकास पर केंद्रित है।
10. भविष्य की दृष्टि: श्री अरविंद ने एक ऐसे भविष्य की कल्पना की जहाँ मानवता अपनी वर्तमान सीमाओं से आगे बढ़कर एक उच्चतर चेतना में प्रवेश करेगी। उन्होंने इस नई मानवता को 'अतिमानव' कहा।

श्री अरविंद का दर्शन एक समग्र और गतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जो व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास और सामाजिक प्रगति को एक साथ जोड़ता है। यह दर्शन न केवल भारतीय परंपरा में एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, बल्कि वैश्विक दार्शनिक चिंतन में भी एक महत्वपूर्ण योगदान देता है।

4.5 श्री अरविंद का विकासवाद: मूल अवधारणाएँ

श्री अरविंद का विकासवाद उनके समग्र दर्शन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह सिद्धांत प्रकृति में चल रही विकास की प्रक्रिया को एक नए दृष्टिकोण से देखता है, जो न केवल भौतिक स्तर पर, बल्कि चेतना के स्तर पर भी होता है। श्री अरविंद के विकासवाद की कुछ मूल अवधारणाएँ इस प्रकार हैं:

4.5.1 सच्चिदानंद की अवधारणा

सच्चिदानंद श्री अरविंद के दर्शन का आधार है और उनके विकासवाद का प्रारंभिक बिंदु। यह शब्द तीन संस्कृत शब्दों से मिलकर बना है:

- सत् (Sat): सत्ता या अस्तित्व
- चित् (Chit): चेतना या ज्ञान
- आनंद (Ananda): आनंद या परम सुख

श्री अरविंद के अनुसार, सच्चिदानंद परम सत्य है, जो सभी अस्तित्व का स्रोत और आधार है। यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ अस्तित्व, चेतना और आनंद एक ही हैं। सच्चिदानंद से ही सृष्टि का विकास शुरू होता है और यह विकास की प्रक्रिया अंततः सच्चिदानंद की पूर्ण अभिव्यक्ति की ओर ले जाती है।

सच्चिदानंद की अवधारणा श्री अरविंद के विकासवाद को एक आध्यात्मिक आधार प्रदान करती है। यह दर्शाता है कि विकास की प्रक्रिया केवल भौतिक नहीं है, बल्कि इसका एक गहरा आध्यात्मिक उद्देश्य है - सच्चिदानंद की पूर्ण अभिव्यक्ति।

4.5.2 अतिमानस की अवधारणा

अतिमानस (Supermind) श्री अरविंद के विकासवाद का एक केंद्रीय विचार है। यह चेतना का एक ऐसा स्तर है जो मानव मन से परे है और जो सत्य को प्रत्यक्ष रूप से जानने और अनुभव करने की क्षमता रखता है। श्री अरविंद के अनुसार, अतिमानस सच्चिदानंद और जगत के बीच की कड़ी है।

अतिमानस की विशेषताएँ:

1. एकता में विविधता: अतिमानस एकता और विविधता को एक साथ देख सकता है। यह सभी वस्तुओं और घटनाओं को उनकी पूर्णता में देखता है, न कि अलग-अलग टुकड़ों में।
2. प्रत्यक्ष ज्ञान: अतिमानस तर्क या अनुमान पर निर्भर नहीं करता, बल्कि सत्य को सीधे जानता और अनुभव करता है।

3. सृजनात्मक शक्ति: अतिमानस केवल ज्ञान का स्रोत नहीं है, बल्कि सृजनात्मक शक्ति भी है जो अपने ज्ञान को वास्तविकता में बदल सकती है।

4. रूपांतरणकारी प्रभाव: अतिमानस का प्रकटीकरण मनुष्य और प्रकृति के पूर्ण रूपांतरण की ओर ले जाता है।

श्री अरविंद के विकासवाद में, अतिमानस विकास का अगला चरण है। उनका मानना था कि जैसे मनुष्य पशु से विकसित हुआ है, वैसे ही अतिमानव मनुष्य से विकसित होगा।

4.5.3 पूर्ण योग की अवधारणा

पूर्ण योग श्री अरविंद द्वारा विकसित एक समग्र योग पद्धति है जो उनके विकासवाद का व्यावहारिक पक्ष है। यह योग व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास और सामूहिक मानव विकास को एक साथ जोड़ता है। पूर्ण योग की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं:

1. समग्रता: यह योग मनुष्य के संपूर्ण अस्तित्व - शरीर, प्राण, मन और आत्मा - के रूपांतरण पर केंद्रित है।

2. जीवन से पलायन नहीं: पूर्ण योग जीवन से पलायन या संन्यास की बजाय जीवन के दिव्यीकरण पर जोर देता है।

3. व्यक्तिगत और सामूहिक विकास: यह योग न केवल व्यक्तिगत मोक्ष, बल्कि समस्त मानवता के रूपांतरण को लक्ष्य बनाता है।

4. चेतना का उत्थान: पूर्ण योग का उद्देश्य है चेतना को उठाना और उसे अतिमानसीय स्तर तक ले जाना।

5. प्रकृति का रूपांतरण: यह योग मानव प्रकृति के पूर्ण रूपांतरण और दिव्य जीवन की स्थापना का लक्ष्य रखता है।

पूर्ण योग श्री अरविंद के विकासवाद को एक व्यावहारिक आधार प्रदान करता है। यह दर्शाता है कि विकास की प्रक्रिया में मनुष्य की सक्रिय भागीदारी संभव

पूर्ण योग श्री अरविंद के विकासवाद को एक व्यावहारिक आधार प्रदान करता है। यह दर्शाता है कि विकास की प्रक्रिया में मनुष्य की सक्रिय भागीदारी संभव है और आवश्यक भी। इस प्रकार, पूर्ण योग विकासवाद को एक सैद्धांतिक अवधारणा से एक जीवंत अनुभव में बदल देता है।

4.6 श्री अरविंद के विकासवाद की प्रक्रिया

श्री अरविंद के विकासवाद की प्रक्रिया एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है जो चेतना के विभिन्न स्तरों से गुजरती है। इस प्रक्रिया के मुख्य पहलू इस प्रकार हैं:

4.6.1 आरोहण और अवरोहण

श्री अरविंद के विकासवाद में दो मुख्य गतियाँ हैं - आरोहण और अवरोहण:

1. आरोहण (Ascent): यह चेतना का ऊपर की ओर उठना है, जड़ पदार्थ से लेकर जीवन, मन, और अंततः अतिमानस तक। यह प्रकृति की स्वाभाविक विकास प्रक्रिया है।

2. अवरोहण (Descent): यह उच्च चेतना का नीचे की ओर आना है, जो निम्न स्तरों को रूपांतरित करता है। यह दिव्य शक्ति का अवतरण है जो विकास की प्रक्रिया को तेज और पूर्ण करता है।

श्री अरविंद के अनुसार, विकास की पूर्णता के लिए आरोहण और अवरोहण दोनों आवश्यक हैं। आरोहण के माध्यम से, निम्न प्रकृति उच्च चेतना की ओर उठती है, जबकि अवरोहण के माध्यम से, उच्च चेतना निम्न प्रकृति को रूपांतरित करती है।

4.6.2 मानव चेतना का विकास

श्री अरविंद के विकासवाद में मानव चेतना के विकास की प्रक्रिया को निम्नलिखित चरणों में समझा जा सकता है:

1. भौतिक मन (Physical Mind): यह मन का सबसे निचला स्तर है जो भौतिक अनुभवों और आवश्यकताओं से संबंधित है।

2. प्राणिक मन (Vital Mind): यह भावनाओं, इच्छाओं और आवेगों से संबंधित मन का स्तर है।

3. मानसिक मन (Mental Mind): यह तर्क, विचार और बौद्धिक गतिविधियों का स्तर है।

4. उच्चतर मन (Higher Mind): यह व्यापक दृष्टि और समग्र समझ का स्तर है।

5. प्रबुद्ध मन (Illumined Mind): यह अंतर्दृष्टि और आंतरिक ज्ञान का स्तर है।

6. अंतर्बोध मन (Intuitive Mind): यह प्रत्यक्ष ज्ञान और तत्काल समझ का स्तर है।

7. अधिमानस (Overmind): यह सर्वोच्च मानसिक स्तर है जो एकता में विविधता को देख सकता है।

8. अतिमानस (Supermind): यह चेतना का सर्वोच्च स्तर है जो पूर्ण एकता और ज्ञान का स्तर है। श्री अरविंद के अनुसार, मानव चेतना का विकास इन विभिन्न स्तरों के माध्यम से होता है। हालांकि, यह प्रक्रिया स्वचालित नहीं है और इसमें व्यक्ति की सचेत भागीदारी की आवश्यकता होती है।

4.6.3 अतिमानसीय चेतना की प्राप्ति

अतिमानसीय चेतना की प्राप्ति श्री अरविंद के विकासवाद का चरम लक्ष्य है। यह प्रक्रिया निम्नलिखित चरणों से गुजरती है:

1. आत्मा की जागृति: व्यक्ति को अपनी आंतरिक सत्ता या आत्मा के प्रति जागरूक होना होता है।

2. मन का शुद्धिकरण: मन को अपनी सीमाओं और विकृतियों से मुक्त करना होता है।

3. प्राणिक स्तर का रूपांतरण: भावनाओं और इच्छाओं को शुद्ध और उदात्त बनाना होता है।

4. शारीरिक चेतना का उत्थान: शरीर को उच्च चेतना के प्रति ग्रहणशील बनाना होता है।

5. उच्च चेतना का अवतरण: व्यक्ति को उच्च चेतना के प्रति खुला रहना होता है और उसे अपने अस्तित्व में उतरने देना होता है।

6. अतिमानसीय रूपांतरण: अंतिम चरण में, संपूर्ण व्यक्तित्व अतिमानसीय चेतना द्वारा रूपांतरित हो जाता है।

श्री अरविंद के अनुसार, अतिमानसीय चेतना की प्राप्ति केवल व्यक्तिगत मोक्ष नहीं है, बल्कि यह पूरी मानवता और प्रकृति के रूपांतरण की शुरुआत है। यह एक नए प्रजाति, जिसे उन्होंने 'अतिमानव' कहा, के उद्भव का मार्ग प्रशस्त करता है।

4.7 श्री अरविंद के विकासवाद का दार्शनिक महत्व

श्री अरविंद का विकासवाद भारतीय दर्शन और वैश्विक दार्शनिक चिंतन में एक महत्वपूर्ण योगदान है। इसका दार्शनिक महत्व निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

1. पूर्व और पश्चिम का समन्वय: श्री अरविंद का विकासवाद भारतीय आध्यात्मिक परंपरा और पाश्चात्य वैज्ञानिक विकासवाद का एक अनूठा संश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह दर्शाता है कि कैसे प्राचीन ज्ञान और आधुनिक विज्ञान एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं।

2. आध्यात्मिक विकासवाद: श्री अरविंद ने विकासवाद को एक नया आध्यात्मिक आयाम दिया। उन्होंने दिखाया कि विकास केवल भौतिक नहीं, बल्कि चेतना का भी है, जो अंततः दिव्य चेतना की प्राप्ति की ओर ले जाता है।

3. मानव क्षमता का विस्तार: श्री अरविंद का विकासवाद मानव क्षमता के अपार विस्तार की संभावना प्रस्तुत करता है। यह दर्शाता है कि मनुष्य अपनी वर्तमान सीमाओं से परे जा सकता है और एक उच्चतर चेतना प्राप्त कर सकता है।

4. जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण: श्री अरविंद का विकासवाद जीवन और जगत के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह जीवन से पलायन या इसे नकारने की बजाय जीवन के दिव्यीकरण पर जोर देता है।

5. व्यक्तिगत और सामूहिक विकास का समन्वय: श्री अरविंद का विकासवाद व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास और सामूहिक मानव विकास को एक साथ जोड़ता है। यह दर्शाता है कि व्यक्तिगत रूपांतरण और सामाजिक प्रगति एक दूसरे के पूरक हैं।

6. चेतना के स्तरों का विस्तृत विवरण: श्री अरविंद ने चेतना के विभिन्न स्तरों का विस्तृत विवरण दिया, जो मनोविज्ञान और आध्यात्मिक अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है।

7. नई मानवता की दृष्टि: श्री अरविंद का विकासवाद एक नई मानवता की दृष्टि प्रस्तुत करता है जो अतिमानसीय चेतना से युक्त है। यह मानव जाति के भविष्य के लिए एक आशावादी दृष्टिकोण प्रदान करता है।

8. प्रकृति और पुरुष का समन्वय: श्री अरविंद का विकासवाद प्रकृति (जड़ पदार्थ) और पुरुष (चेतना) के बीच एक गहरा संबंध स्थापित करता है। यह दर्शाता है कि दोनों एक ही दिव्य सत्ता के पहलू हैं और एक दूसरे के पूरक हैं।

9. योग का नया दृष्टिकोण: श्री अरविंद का 'पूर्ण योग' योग के पारंपरिक दृष्टिकोण को विस्तारित करता है। यह योग को केवल व्यक्तिगत मोक्ष का साधन नहीं, बल्कि समग्र मानव विकास का माध्यम बनाता है।

10. विश्व एकता का दर्शन: श्री अरविंद का विकासवाद विश्व एकता के एक गहरे दर्शन को प्रस्तुत करता है। यह दर्शाता है कि सभी अस्तित्व एक ही दिव्य सत्ता की अभिव्यक्ति है और विकास की प्रक्रिया इस एकता की पूर्ण अनुभूति की ओर ले जाती है।

इस प्रकार, श्री अरविंद का विकासवाद न केवल एक दार्शनिक सिद्धांत है, बल्कि यह मानव जीवन और समाज के लिए एक नया दृष्टिकोण और लक्ष्य प्रदान करता है। यह भारतीय दर्शन को एक नया आयाम देता है और वैश्विक दार्शनिक चिंतन को समृद्ध करता है।

4.8 श्री अरविंद के विकासवाद की आलोचनात्मक समीक्षा

श्री अरविंद का विकासवाद एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली दार्शनिक सिद्धांत है, लेकिन जैसे हर दार्शनिक विचार की आलोचना होती है, वैसे ही इसकी भी कुछ आलोचनाएँ की गई हैं। यहाँ हम श्री अरविंद के विकासवाद की कुछ आलोचनाओं और उनके संभावित जवाबों पर विचार करेंगे:

1. वैज्ञानिक प्रमाणों का अभाव:

- आलोचना: कुछ आलोचक कहते हैं कि श्री अरविंद के विकासवाद के लिए पर्याप्त वैज्ञानिक प्रमाण नहीं हैं, विशेष रूप से अतिमानस और अतिमानव की अवधारण

2. वैज्ञानिक प्रमाणों का अभाव (जारी):

- आलोचना: कुछ आलोचक कहते हैं कि श्री अरविंद के विकासवाद के लिए पर्याप्त वैज्ञानिक प्रमाण नहीं हैं, विशेष रूप से अतिमानस और अतिमानव की अवधारणाओं के लिए।

- संभावित जवाब: श्री अरविंद के समर्थक तर्क दे सकते हैं कि उनका सिद्धांत केवल भौतिक विज्ञान पर आधारित नहीं है, बल्कि यह आध्यात्मिक अनुभव और अंतर्दृष्टि पर भी आधारित है। वे यह भी कह सकते हैं कि विज्ञान अभी भी चेतना की प्रकृति को पूरी तरह से समझने में असमर्थ है।

3. अति-आदर्शवादी दृष्टिकोण:

- आलोचना: कुछ लोग मानते हैं कि श्री अरविंद का विकासवाद बहुत आदर्शवादी है और वर्तमान मानव स्थिति की जटिलताओं और चुनौतियों को पर्याप्त रूप से संबोधित नहीं करता।

○ संभावित जवाब: श्री अरविंद के अनुयायी कह सकते हैं कि उनका सिद्धांत दीर्घकालिक दृष्टि प्रदान करता है और मानव क्षमता की पूर्ण संभावना को पहचानता है। वे यह भी कह सकते हैं कि आदर्शवाद आवश्यक है क्योंकि यह प्रगति और परिवर्तन के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

4. व्यावहारिक अनुप्रयोग की कमी:

○ आलोचना: कुछ आलोचक मानते हैं कि श्री अरविंद का विकासवाद बहुत सैद्धांतिक है और इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग स्पष्ट नहीं हैं।

○ संभावित जवाब: श्री अरविंद के समर्थक उनके 'पूर्ण योग' की ओर इशारा कर सकते हैं, जो उनके सिद्धांत का व्यावहारिक पक्ष है। वे यह भी बता सकते हैं कि अरविंद आश्रम और ऑरोविल जैसे प्रयोग इस सिद्धांत के व्यावहारिक अनुप्रयोग के उदाहरण हैं।

5. पश्चिमी विकासवाद से अंतर:

○ आलोचना: कुछ लोग कहते हैं कि श्री अरविंद का विकासवाद पश्चिमी वैज्ञानिक विकासवाद से बहुत भिन्न है और इसलिए इसे 'विकासवाद' कहना उचित नहीं है।

○ संभावित जवाब: श्री अरविंद के अनुयायी कह सकते हैं कि उनका सिद्धांत विकासवाद का विस्तार है, जो न केवल भौतिक विकास को, बल्कि चेतना के विकास को भी समाहित करता है। वे इसे एक व्यापक और समग्र विकासवाद के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं।

6. सांस्कृतिक पूर्वाग्रह:

○ आलोचना: कुछ आलोचक मानते हैं कि श्री अरविंद का विकासवाद भारतीय दर्शन और संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित है और इसलिए यह सार्वभौमिक रूप से लागू नहीं हो सकता।

○ संभावित जवाब: श्री अरविंद के समर्थक तर्क दे सकते हैं कि उनका सिद्धांत भारतीय और पश्चिमी विचारों का एक संश्लेषण है और इसलिए यह एक व्यापक, वैश्विक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

7. अतिमानवीय अवधारणा की नैतिक चुनौतियाँ:

○ आलोचना: कुछ लोग चिंता व्यक्त करते हैं कि 'अतिमानव' की अवधारणा नस्लीय श्रेष्ठता या सामाजिक असमानता के विचारों को बढ़ावा दे सकती है।

○ संभावित जवाब: श्री अरविंद के अनुयायी स्पष्ट कर सकते हैं कि 'अतिमानव' एक आध्यात्मिक अवधारणा है, न कि जैविक या सामाजिक। वे यह भी कह सकते हैं कि श्री अरविंद ने सभी मनुष्यों की समानता और एकता पर जोर दिया था।

8. प्रमाणीकरण की कठिनाई:

○ आलोचना: कुछ आलोचक कहते हैं कि श्री अरविंद के विकासवाद के कई पहलुओं को प्रमाणित करना या खंडित करना मुश्किल है, विशेष रूप से अतिमानवीय अनुभवों के संदर्भ में।

○ संभावित जवाब: श्री अरविंद के समर्थक कह सकते हैं कि कुछ आध्यात्मिक अनुभव व्यक्तिगत होते हैं और उन्हें पारंपरिक वैज्ञानिक विधियों से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। वे यह भी सुझा सकते हैं कि इन अनुभवों को समझने के लिए नए अनुसंधान तरीकों की आवश्यकता है।

9. समय की अवधारणा:

○ आलोचना: कुछ लोग श्री अरविंद के विकासवाद में समय की अवधारणा पर सवाल उठाते हैं, विशेष रूप से अतिमानसीय चेतना की प्राप्ति के संदर्भ में।

○ संभावित जवाब: श्री अरविंद के अनुयायी कह सकते हैं कि विकास एक लंबी प्रक्रिया है और समय की पारंपरिक अवधारणाएँ उच्च चेतना के स्तरों पर लागू नहीं हो सकतीं।

इन आलोचनाओं और संभावित जवाबों से पता चलता है कि श्री अरविंद का विकासवाद एक जटिल और बहुआयामी सिद्धांत है। यह महत्वपूर्ण है कि हम इस सिद्धांत को एक खुले दिमाग से समझें, इसकी संभावनाओं पर विचार करें, और साथ ही इसकी सीमाओं के प्रति भी सचेत रहें। श्री अरविंद के विकासवाद की आलोचनात्मक समीक्षा हमें इस सिद्धांत को और अधिक गहराई से समझने में मदद करती है और इसके विभिन्न पहलुओं पर गंभीरता से विचार करने के लिए प्रेरित करती है।

4.9 श्री अरविंद के विकासवाद की वर्तमान प्रासंगिकता

श्री अरविंद का विकासवाद, हालांकि 20वीं सदी के प्रारंभ में प्रतिपादित किया गया था, आज भी कई मायनों में प्रासंगिक है। यहाँ हम इस सिद्धांत की वर्तमान प्रासंगिकता के कुछ पहलुओं पर विचार करेंगे:

1. मानव क्षमता का विस्तार:

○ आज के तेजी से बदलते विश्व में, जहाँ तकनीकी प्रगति मानव क्षमताओं को लगातार विस्तारित कर रही है, श्री अरविंद का विकासवाद मानव चेतना के विस्तार की संभावना को रेखांकित करता है।

○ यह सिद्धांत हमें याद दिलाता है कि मानव विकास केवल तकनीकी या बौद्धिक नहीं, बल्कि चेतना का भी हो सकता है।

2. समय दृष्टिकोण:

○ श्री अरविंद का विकासवाद एक समय दृष्टिकोण प्रदान करता है जो आज के विभाजित और विशेषीकृत विश्व में महत्वपूर्ण है।

○ यह सिद्धांत विज्ञान, दर्शन, और आध्यात्मिकता के बीच संवाद को प्रोत्साहित करता है, जो आज के जटिल वैश्विक मुद्दों को समझने और हल करने के लिए आवश्यक है।

3. पर्यावरण चेतना:

○ श्री अरविंद का विचार कि सभी प्रकृति में चेतना है, पर्यावरण संरक्षण के लिए एक नैतिक आधार प्रदान करता है।

○ यह दृष्टिकोण हमें प्रकृति के साथ एक अधिक सद्भावपूर्ण संबंध विकसित करने के लिए प्रेरित करता है, जो वर्तमान पर्यावरणीय संकट के समय में महत्वपूर्ण है।

4. मानवीय एकता:

○ श्री अरविंद का विकासवाद मानव एकता पर जोर देता है, जो आज के विभाजित विश्व में एक महत्वपूर्ण संदेश है।

○ यह सिद्धांत वैश्विक सहयोग और शांति के लिए एक दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

5. व्यक्तिगत और सामाजिक रूपांतरण:

○ श्री अरविंद का विचार कि व्यक्तिगत रूपांतरण और सामाजिक प्रगति एक दूसरे से जुड़े हैं, वर्तमान सामाजिक परिवर्तन के प्रयासों के लिए प्रासंगिक है।

○ यह दृष्टिकोण हमें याद दिलाता है कि वास्तविक सामाजिक परिवर्तन के लिए व्यक्तिगत चेतना में बदलाव आवश्यक है।

6. तनाव और अवसाद से निपटना:

○ श्री अरविंद का 'पूर्ण योग' आज के तनावपूर्ण जीवन में मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

○ यह योग पद्धति जीवन के सभी पहलुओं को संतुलित करने और आंतरिक शांति प्राप्त करने में मदद कर सकती है।

7. शिक्षा का नया दृष्टिकोण:

○ श्री अरविंद का विकासवाद शिक्षा के एक समग्र मॉडल को प्रोत्साहित करता है जो न केवल बौद्धिक, बल्कि भावनात्मक और आध्यात्मिक विकास पर भी ध्यान देता है।

○ यह दृष्टिकोण वर्तमान शैक्षिक सुधारों के लिए प्रासंगिक है जो छात्रों के समग्र विकास पर केंद्रित हैं।

8. नैतिकता और मूल्यों का आधार:

○ श्री अरविंद का विकासवाद एक ऐसे समय में नैतिक मूल्यों का एक मजबूत

9. नैतिकता और मूल्यों का आधार (जारी):

○ श्री अरविंद का विकासवाद एक ऐसे समय में नैतिक मूल्यों का एक मजबूत आधार प्रदान करता है जब परंपरागत नैतिक मूल्य चुनौती के दौर से गुजर रहे हैं।

○ यह सिद्धांत सुझाता है कि नैतिकता केवल सामाजिक समझौता नहीं है, बल्कि यह चेतना के विकास का एक अनिवार्य हिस्सा है।

10. तकनीकी प्रगति और मानवीय मूल्य:

○ आज के तकनीकी युग में, जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता और अन्य उन्नत तकनीकें मानव क्षमताओं को चुनौती दे रही हैं, श्री अरविंद का विकासवाद मानव चेतना की अद्वितीय क्षमता पर जोर देता है।

○ यह सिद्धांत हमें याद दिलाता है कि तकनीकी प्रगति के साथ-साथ मानवीय मूल्यों और चेतना के विकास पर भी ध्यान देना महत्वपूर्ण है।

11. वैश्विक चुनौतियों का सामना:

○ जलवायु परिवर्तन, महामारियाँ, और वैश्विक असमानता जैसी चुनौतियों का सामना करने के लिए, श्री अरविंद का विकासवाद एक समग्र और सहयोगात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता पर जोर देता है।

○ यह सिद्धांत सुझाता है कि इन चुनौतियों का समाधान न केवल तकनीकी या राजनीतिक स्तर पर, बल्कि चेतना के स्तर पर भी खोजा जाना चाहिए।

12. आध्यात्मिकता और विज्ञान का समन्वय:

○ श्री अरविंद का विकासवाद आध्यात्मिकता और विज्ञान के बीच एक सेतु का काम करता है, जो आज के विश्व में जहाँ दोनों क्षेत्र अक्सर विरोधी माने जाते हैं, महत्वपूर्ण है।

○ यह दृष्टिकोण वैज्ञानिक खोज और आध्यात्मिक अनुभव दोनों को महत्व देता है, जो एक अधिक संतुलित और समग्र ज्ञान की ओर ले जा सकता है।

13. सामाजिक न्याय और समानता:

○ श्री अरविंद का विचार कि सभी मनुष्य एक ही दिव्य चेतना के अभिव्यक्तियाँ हैं, सामाजिक न्याय और समानता के लिए एक मजबूत दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

○ यह दृष्टिकोण जाति, वर्ग, लिंग, या नस्ल के आधार पर भेदभाव के विरुद्ध एक शक्तिशाली तर्क प्रस्तुत करता है।

14. मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण:

○ श्री अरविंद का विकासवाद व्यक्तिगत विकास और आत्म-खोज पर जोर देता है, जो आज के तनावपूर्ण और अक्सर अलगाव भरे समाज में मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है।

○ उनका 'पूर्ण योग' एक समग्र जीवन शैली प्रदान करता है जो शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को संतुलित करता है।

15. नेतृत्व और प्रबंधन:

○ श्री अरविंद के विचार नेतृत्व और प्रबंधन के क्षेत्र में भी प्रासंगिक हैं, जहाँ वे एक अधिक समग्र और मानवीय दृष्टिकोण की आवश्यकता पर जोर देते हैं।

○ उनका सिद्धांत सुझाता है कि प्रभावी नेतृत्व केवल कौशल और ज्ञान पर नहीं, बल्कि चेतना के विकास पर भी निर्भर करता है।

16. अंतरराष्ट्रीय संबंध:

○ श्री अरविंद की मानव एकता की अवधारणा अंतरराष्ट्रीय संबंधों और वैश्विक शासन के लिए एक नया दृष्टिकोण प्रदान करती है।

○ यह सिद्धांत राष्ट्रीय हितों से परे एक वैश्विक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर जोर देता है। इस प्रकार, श्री अरविंद का विकासवाद 21 वीं सदी में भी अत्यंत प्रासंगिक है। यह सिद्धांत न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में काम करता है, बल्कि समाज, शिक्षा, पर्यावरण, नेतृत्व, और वैश्विक सहयोग जैसे क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। श्री अरविंद के विचार हमें याद दिलाते हैं कि मानव विकास की असीम संभावनाएँ हैं और हम एक उच्चतर चेतना की ओर बढ़ सकते हैं जो व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से हमारे जीवन को बदल सकती है।

4.10 सारांश

श्री अरविंद का विकासवाद 20 वीं सदी के भारतीय दर्शन का एक महत्वपूर्ण योगदान है। यह सिद्धांत प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक विकासवाद का एक अद्वितीय संश्लेषण प्रस्तुत करता है। श्री अरविंद ने विकास की प्रक्रिया को केवल भौतिक या जैविक नहीं, बल्कि चेतना के विकास के रूप में देखा।

इस स्वयं अध्ययन सामग्री में हमने श्री अरविंद के विकासवाद के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया है:

1. हमने श्री अरविंद के जीवन और दर्शन का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया, जो उनके विकासवाद को समझने के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि प्रदान करता है।
2. हमने श्री अरविंद के विकासवाद की मूल अवधारणाओं - सच्चिदानंद, अतिमानस, और पूर्ण योग - का अध्ययन किया। ये अवधारणाएँ उनके विकासवाद के आधार हैं।
3. हमने श्री अरविंद के विकासवाद की प्रक्रिया का विस्तार से अध्ययन किया, जिसमें आरोहण और अवरोहण की गतियाँ, मानव चेतना का विकास, और अतिमानसीय चेतना की प्राप्ति शामिल हैं।
4. हमने श्री अरविंद के विकासवाद के दार्शनिक महत्व पर विचार किया, जो दर्शाता है कि कैसे यह सिद्धांत भारतीय दर्शन और वैश्विक दार्शनिक चिंतन को समृद्ध करता है।
5. हमने श्री अरविंद के विकासवाद की आलोचनात्मक समीक्षा की, जो इस सिद्धांत की सीमाओं और चुनौतियों को समझने में मदद करती है।
6. अंत में, हमने श्री अरविंद के विकासवाद की वर्तमान प्रासंगिकता पर विचार किया, जो दर्शाता है कि यह सिद्धांत आज भी कैसे महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है।

श्री अरविंद का विकासवाद हमें एक ऐसे विश्व की कल्पना करने के लिए आमंत्रित करता है जहाँ मानव चेतना अपनी वर्तमान सीमाओं से आगे बढ़ सकती है। यह सिद्धांत हमें याद दिलाता है कि विकास की प्रक्रिया निरंतर जारी है और हम सभी इस प्रक्रिया के सक्रिय प्रतिभागी हैं।

श्री अरविंद का विकासवाद केवल एक दार्शनिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि यह एक जीवन दर्शन है जो व्यक्तिगत और सामूहिक रूपांतरण की संभावना प्रस्तुत करता है। यह हमें चुनौती देता है कि हम अपनी

चेतना के विकास पर ध्यान दें और एक ऐसे समाज की ओर बढ़ें जो अधिक न्यायसंगत, शांतिपूर्ण, और आध्यात्मिक रूप से जागृत हो।

अंत में, श्री अरविंद का विकासवाद हमें याद दिलाता है कि मानव जाति की यात्रा अभी समाप्त नहीं हुई है। हम एक ऐसी यात्रा पर हैं जो हमें एक उच्चतर चेतना की ओर ले जा रही है, एक ऐसी चेतना जो हमारे व्यक्तिगत जीवन और समाज को रूपांतरित कर सकती है। यह हमारा कर्तव्य है कि हम इस प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनें और अपने व्यक्तिगत और सामूहिक विकास के लिए प्रयास करें।

4.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. श्री अरविंद के विकासवाद की मुख्य अवधारणाओं का वर्णन करें। सच्चिदानंद, अतिमानस, और पूर्ण योग की अवधारणाओं को विस्तार से समझाएँ।
2. श्री अरविंद के विकासवाद में आरोहण और अवरोहण की प्रक्रियाओं का क्या महत्व है? इन प्रक्रियाओं को उदाहरण सहित समझाएँ।
3. श्री अरविंद के अनुसार मानव चेतना के विकास के विभिन्न स्तर क्या हैं? इन स्तरों की विशेषताओं का वर्णन करें।
4. श्री अरविंद के विकासवाद का भारतीय दर्शन और वैश्विक दार्शनिक चिंतन में क्या महत्व है? विस्तार से समझाएँ।
5. श्री अरविंद के विकासवाद की प्रमुख आलोचनाएँ क्या हैं? इन आलोचनाओं के संभावित जवाब क्या हो सकते हैं?
6. श्री अरविंद के विकासवाद और डार्विन के जैविक विकासवाद के बीच मुख्य अंतर क्या हैं? दोनों सिद्धांतों की तुलना और विश्लेषण करें।
7. श्री अरविंद के 'पूर्ण योग' की अवधारणा को समझाएँ। यह कैसे उनके विकासवाद से संबंधित है और व्यक्तिगत तथा सामाजिक रूपांतरण में इसकी क्या भूमिका है?
8. श्री अरविंद के विकासवाद में 'अतिमानव' की अवधारणा क्या है? यह अवधारणा किस प्रकार मानव क्षमता और भविष्य के बारे में हमारी समझ को प्रभावित करती है?
9. श्री अरविंद के विकासवाद के अनुसार, प्रकृति और चेतना के बीच क्या संबंध है? यह दृष्टिकोण कैसे पर्यावरण संरक्षण और स्थिरता के प्रति हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित कर सकता है?
10. श्री अरविंद के विकासवाद में 'सच्चिदानंद' की अवधारणा की व्याख्या करें। यह अवधारणा कैसे उनके समग्र दर्शन का आधार बनती है?

4.12 उपयोगी पुस्तकें व संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्री अरविंद. (1990). द लाइफ डिवाइन. पांडिचेरी: श्री अरविंदो आश्रम.

2. श्री अरविंद. (1999). द सिंथेसिस ऑफ योग. पांडिचेरी: श्री अरविंदो आश्रम.
3. श्री अरविंद. (1950). सावित्री: ए लीजेंड एंड ए सिंबल. पांडिचेरी: श्री अरविंदो आश्रम.
4. दलाल, ए.एस. (2001). ए ग्रेटर साइकोलॉजी: एन इंट्रोडक्शन टू द साइकोलॉजिकल थॉट ऑफ श्री अरविंदो. पांडिचेरी: श्री अरविंदो आश्रम.
5. मुखर्जी, रमेश. (1990). श्री अरविंदो: द स्टोरी ऑफ हिज लाइफ. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स इंडिया.
6. सत्प्रेम. (2010). द मदर: द स्टोरी ऑफ हर लाइफ. पांडिचेरी: श्री अरविंदो आश्रम.
7. चट्टोपाध्याय, दीपक कुमार. (1988). श्री अरविंदोज फिलॉसोफी ऑफ एवोल्यूशन. कलकत्ता: श्री अरविंदो पाठमंडल.
8. हीराननदानी, जगमोहन. (2012). श्री अरविंदो एंड द फ्यूचर ऑफ मैनेकाइंड. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
9. रेडी, वी. मधुसूदन. (1966). द योगिक एंड द अस्पिरेंट: ए कमेंट्री ऑन द सिंथेसिस ऑफ योग ऑफ श्री अरविंदो. पांडिचेरी: श्री अरविंदो सोसाइटी.
10. मैकडरमॉट, रॉबर्ट ए. (1972). द एसेंशियल अरविंदो. नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस.
11. वरदा, एम.पी. (1998). श्री अरविंदोज फिलॉसोफी ऑफ मैने एंड एवोल्यूशन. पांडिचेरी: श्री अरविंदो इंटरनेशनल सेंटर ऑफ एजुकेशन.
12. नंदा, बी.आर. (1998). इन सर्च ऑफ गांधी: एसेज एंड रिफ्लेक्शंस. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
13. फिलिप्स, एस.एच. (2009). योग, कर्म, एंड रिबर्थ: ए क्लासिकल इंडियन ट्रेडिशन. न्यूयॉर्क: कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.
14. हीराननदानी, जगमोहन. (1987). इंट्रोडक्शन टू द इंटीग्रल योग ऑफ श्री अरविंदो. पांडिचेरी: श्री अरविंदो आश्रम.
15. ब्रूकमैन, डेविड. (2000). श्री अरविंदो एंड वेस्टर्न थॉट: फ्रॉम द रेनेसांस टू द न्यू एज. पांडिचेरी: श्री अरविंदो इंटरनेशनल सेंटर ऑफ एजुकेशन.

-----●●●●●-----

इकाई 5 - अति मानस

विषय सूची

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 अध्ययन के उद्देश्य
- 5.3 अतिमानस की अवधारणा
- 5.4 अतिमानस की विशेषताएँ
- 5.5 अतिमानस और मानव चेतना
- 5.6 अतिमानस और विकास का सिद्धांत
- 5.7 अतिमानस और योग
- 5.8 अतिमानस और समाज
- 5.9 अतिमानस सिद्धांत की आलोचनात्मक समीक्षा
- 5.10 सारांश
- 5.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न
- 5.12 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ सूची

5.1 प्रस्तावना

श्री अरविंद (1872-1950) भारतीय दर्शन और आध्यात्मिकता के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व थे। उन्होंने अपने जीवन के दौरान न केवल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, बल्कि एक गहन दार्शनिक और योगी के रूप में भी अपनी पहचान बनाई। उनके दर्शन का एक केंद्रीय सिद्धांत 'अतिमानस' (Supermind) है, जो उनकी विश्व दृष्टि और मानव विकास की अवधारणा का मूल आधार है।

इस स्व-अध्ययन सामग्री में हम श्री अरविंद के अतिमानस सिद्धांत का विस्तृत अध्ययन करेंगे। यह सामग्री एम.ए. दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए तैयार की गई है, जिसका उद्देश्य इस जटिल अवधारणा को सरल और व्यवस्थित तरीके से समझाना है। हम अतिमानस की अवधारणा, उसकी विशेषताओं, मानव चेतना और समाज पर उसके प्रभाव, तथा इस सिद्धांत के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे।

5.2 अध्ययन के उद्देश्य

इस स्व-अध्ययन सामग्री को पढ़ने के बाद, आप निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे:

1. अतिमानस की अवधारणा को समझना और उसकी मुख्य विशेषताओं को पहचानना।
2. अतिमानस और मानव चेतना के बीच संबंध का विश्लेषण करना।
3. श्री अरविंद के विकास के सिद्धांत में अतिमानस की भूमिका को समझना।
4. अतिमानस और योग के बीच संबंध की व्याख्या करना।
5. अतिमानस सिद्धांत के सामाजिक निहितार्थों पर चिंतन करना।
6. अतिमानस सिद्धांत की आलोचनात्मक समीक्षा करने की क्षमता विकसित करना।

श्री अरविंद के दर्शन का सामान्य परिचय

श्री अरविंद का दर्शन एक व्यापक और समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो पूर्व और पश्चिम के ज्ञान को समन्वित करने का प्रयास करता है। उनका दर्शन वेदांत, तंत्र, योग और आधुनिक विज्ञान के तत्वों को एक साथ लाता है, जिससे एक नया और समग्र दृष्टिकोण उभरता है।

श्री अरविंद के दर्शन के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं:

1. पूर्ण अद्वैतवाद: श्री अरविंद मानते हैं कि सब कुछ एक ही दिव्य सत्ता का प्रकटीकरण है। यह सत्ता सच्चिदानंद (सत्-चित्-आनंद) है, जो अस्तित्व, चेतना और आनंद का एकीकरण है।
 2. विकासवाद: उनका दर्शन एक आध्यात्मिक विकासवाद प्रस्तुत करता है, जिसमें प्रकृति क्रमशः उच्च चेतना की ओर विकसित हो रही है।
 3. पूर्णयोग: श्री अरविंद ने 'पूर्णयोग' की अवधारणा दी, जो विभिन्न योग मार्गों का समन्वय है और जीवन के सभी पहलुओं के रूपांतरण पर जोर देता है।
 4. अतिमानस: यह उनके दर्शन का केंद्रीय सिद्धांत है, जो एक उच्च चेतना स्तर को दर्शाता है जो मानव चेतना और दिव्य चेतना के बीच की कड़ी है।
 5. दिव्य जीवन: श्री अरविंद का अंतिम लक्ष्य पृथ्वी पर एक दिव्य जीवन की स्थापना है, जहाँ मानव चेतना पूरी तरह से रूपांतरित हो जाए।
- श्री अरविंद का दर्शन आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों पहलुओं को संतुलित करने का प्रयास करता है। वे मानते हैं कि आध्यात्मिक विकास का लक्ष्य केवल व्यक्तिगत मोक्ष नहीं, बल्कि समग्र मानवता और प्रकृति का रूपांतरण है।

5.3 अतिमानस की अवधारणा

अतिमानस श्री अरविंद के दर्शन का एक केंद्रीय सिद्धांत है। यह शब्द संस्कृत के 'अति' (परे) और 'मनस' (मन) से बना है, जिसका अर्थ है 'मन से परे'। अंग्रेजी में इसे 'Supermind' कहा जाता है।

अतिमानस की अवधारणा को समझने के लिए, हमें पहले श्री अरविंद के चेतना के विभिन्न स्तरों के बारे में जानना होगा।

श्री अरविंद के विकासवाद में मानव चेतना के विकास की प्रक्रिया को निम्नलिखित चरणों में समझा जा सकता है:

1. भौतिक मन (Physical Mind): यह मन का सबसे निचला स्तर है जो भौतिक अनुभवों और आवश्यकताओं से संबंधित है।
2. प्राणिक मन (Vital Mind): यह भावनाओं, इच्छाओं और आवेगों से संबंधित मन का स्तर है।
3. मानसिक मन (Mental Mind): यह तर्क, विचार और बौद्धिक गतिविधियों का स्तर है।
4. उच्चतर मन (Higher Mind): यह व्यापक दृष्टि और समग्र समझ का स्तर है।
5. प्रबुद्ध मन (Illumined Mind): यह अंतर्दृष्टि और आंतरिक ज्ञान का स्तर है।

6. अंतर्बोध मन (Intuitive Mind): यह प्रत्यक्ष ज्ञान और तत्काल समझ का स्तर है।
7. अधिमानस (Overmind): यह सर्वोच्च मानसिक स्तर है जो एकता में विविधता को देख सकता है।
8. अतिमानस (Supermind): यह चेतना का सर्वोच्च स्तर है जो पूर्ण एकता और ज्ञान का स्तर है।

अतिमानस इन स्तरों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह मानव चेतना (मन) और दिव्य चेतना (सच्चिदानंद) के बीच की कड़ी है। श्री अरविंद के अनुसार, अतिमानस वह चेतना है जो सृष्टि के मूल में काम करती है। यह एक ऐसी शक्ति है जो एकता और विविधता दोनों को एक साथ धारण कर सकती है।

अतिमानस की कुछ मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1. समन्वयात्मक ज्ञान: अतिमानस में ज्ञान का द्वैत समाप्त हो जाता है। यहाँ जाननेवाला, ज्ञान और ज्ञेय एक हो जाते हैं।
2. सृजनात्मक शक्ति: अतिमानस केवल ज्ञान का स्तर नहीं है, बल्कि एक सृजनात्मक शक्ति भी है जो अपने विचारों को वास्तविकता में बदल सकती है।
3. एकता में विविधता: अतिमानस एकता और विविधता के बीच संतुलन बनाए रखता है। यह सभी विरोधाभासों का समाधान करता है।
4. स्वतः पूर्णता: अतिमानस स्वयं में पूर्ण है और इसमें कोई अपूर्णता या त्रुटि नहीं होती।
5. रूपांतरणकारी शक्ति: अतिमानस की शक्ति निचले स्तरों की चेतना को रूपांतरित कर सकती है। श्री अरविंद मानते हैं कि अतिमानस का अवतरण मानव विकास का अगला चरण है। उनके अनुसार, जैसे मन का उदय जानवरों में हुआ, वैसे ही अतिमानस का उदय मनुष्य में होगा, जो मानव जाति को एक नए स्तर की चेतना की ओर ले जाएगा।

5.4 अतिमानस की विशेषताएँ

अतिमानस की अवधारणा को और गहराई से समझने के लिए, हम इसकी कुछ प्रमुख विशेषताओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे:

1. सत्य-चेतना: अतिमानस सत्य-चेतना है, जिसका अर्थ है कि यह सत्य को प्रत्यक्ष रूप से जानती और अनुभव करती है। यह ज्ञान तर्क या अनुमान पर आधारित नहीं होता, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित होता है। इस स्तर पर, ज्ञाता और ज्ञेय के बीच का अंतर मिट जाता है।

2. स्व-प्रकाशित ज्ञान: अतिमानस में ज्ञान स्व-प्रकाशित होता है। यह बाहरी स्रोतों या इंद्रियों पर निर्भर नहीं करता। यह अपने आप में पूर्ण और स्पष्ट होता है, जिसमें किसी संदेह या भ्रम की गुंजाइश नहीं होती।
 3. एकता और विविधता का समन्वय: अतिमानस एकता और विविधता के बीच पूर्ण संतुलन बनाए रखता है। यह सभी वस्तुओं और घटनाओं को एक समग्र दृष्टि से देखता है, लेकिन साथ ही उनकी विशिष्टताओं को भी पहचानता है। यह विरोधाभासों को समाहित करने की क्षमता रखता है।
 4. सृजनात्मक शक्ति: अतिमानस केवल एक ज्ञान का स्तर नहीं है, बल्कि एक सक्रिय, सृजनात्मक शक्ति भी है। यह अपने विचारों और संकल्पों को सीधे वास्तविकता में परिवर्तित कर सकता है। इस स्तर पर, विचार और क्रिया के बीच का अंतर समाप्त हो जाता है।
 5. स्वायत्त और स्वतंत्र: अतिमानस पूरी तरह से स्वायत्त और स्वतंत्र है। यह किसी बाहरी नियम या सीमा से बंधा नहीं है, बल्कि अपने अंतर्निहित सत्य और ज्ञान के अनुसार कार्य करता है।
 6. समग्र दृष्टि: अतिमानस एक समग्र दृष्टि रखता है। यह किसी भी स्थिति या समस्या के सभी पहलुओं को एक साथ देख सकता है। इसकी दृष्टि खंडित या एकांगी नहीं होती, बल्कि पूर्ण और समग्र होती है।
 7. रूपांतरणकारी शक्ति: अतिमानस की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी रूपांतरणकारी शक्ति है। यह निचले स्तरों की चेतना को अपने स्तर तक उठा सकता है और उनका रूपांतरण कर सकता है।
 8. अनंत क्षमता: अतिमानस अनंत क्षमता रखता है। यह सीमित मानवीय क्षमताओं से परे है और दिव्य शक्तियों का वाहक है।
 9. स्व-विकासशील: अतिमानस स्व-विकासशील है, अर्थात् यह अपने आप में विकसित होता रहता है। यह एक गतिशील और जीवंत चेतना है जो निरंतर विकास की प्रक्रिया में रहती है।
 10. सामंजस्यपूर्ण: अतिमानस सभी विरोधाभासों और द्वंद्वों का समाधान करता है। यह विभिन्न दृष्टिकोणों और विचारों के बीच सामंजस्य स्थापित करता है।
- इन विशेषताओं से स्पष्ट है कि अतिमानस एक अत्यंत उच्च और विकसित चेतना का स्तर है। श्री अरविंद के अनुसार, यह मानव विकास का अगला चरण है और इसका अवतरण मानव जाति के लिए एक नए युग की शुरुआत करेगा।

5.5 अतिमानस और मानव चेतना

अतिमानस और मानव चेतना के बीच संबंध श्री अरविंद के दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यह समझना आवश्यक है कि वर्तमान मानव चेतना और अतिमानस के बीच क्या अंतर है और किस प्रकार मानव चेतना अतिमानस की ओर विकसित हो सकती है।

1. वर्तमान मानव चेतना की सीमाएँ: वर्तमान मानव चेतना मुख्य रूप से मन पर आधारित है। मन की कुछ सीमाएँ हैं:

यह खंडित दृष्टिकोण रखता है और अक्सर वस्तुओं को अलग-अलग देखता है।

- यह द्वैत पर आधारित है, जैसे सही-गलत, अच्छा-बुरा।
- यह सीमित ज्ञान पर काम करता है और अक्सर भ्रम और गलतियों से ग्रस्त होता है।
- इसकी सृजनात्मक शक्ति सीमित है और यह अपने विचारों को सीधे वास्तविकता में नहीं बदल सकता।

2. अतिमानस की श्रेष्ठता: अतिमानस इन सीमाओं से परे है:

- यह एक समग्र दृष्टिकोण रखता है और सभी वस्तुओं को एकता में देखता है।
- यह द्वैत से परे है और विरोधाभासों का समाधान करता है।
- इसका ज्ञान प्रत्यक्ष और पूर्ण है, जो भ्रम या गलती से मुक्त है।
- यह अपने विचारों को सीधे वास्तविकता में बदलने की क्षमता रखता है।

3. मानव चेतना का अतिमानस की ओर विकास: श्री अरविंद मानते हैं कि मानव चेतना धीरे-धीरे अतिमानस की ओर विकसित हो रही है। यह विकास निम्नलिखित चरणों से होकर गुजरता है:

- मन का शुद्धीकरण और विस्तार
- उच्चतर मानसिक क्षमताओं का विकास (अतिमानस)
- आध्यात्मिक अनुभवों का उदय
- अतिमानस का अवतरण और मानव चेतना का रूपांतरण

4. अतिमानस का अवतरण: श्री अरविंद का मानना है कि अतिमानस का अवतरण एक ऐतिहासिक घटना होगी जो मानव जाति के विकास में एक नया युग लाएगी। यह अवतरण:

- मानव चेतना को रूपांतरित करेगा
- पृथ्वी पर दिव्य जीवन की स्थापना करेगा
- मानव समाज और संस्कृति को नया आकार देगा

5. मानव की भूमिका: हालांकि अतिमानस का अवतरण एक दैवीय प्रक्रिया है, फिर भी मनुष्य की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका है:
- व्यक्तिगत साधना और आध्यात्मिक अभ्यास
 - मन का शुद्धीकरण और विस्तार
 - दिव्य चेतना के प्रति खुलापन और ग्रहणशीलता
 - समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास
6. अतिमानस और मानव स्वतंत्रता: श्री अरविंद के अनुसार, अतिमानस मानव स्वतंत्रता को सीमित नहीं करता, बल्कि उसे विस्तारित करता है:
- यह मनुष्य को अज्ञान और भ्रम से मुक्त करता है
 - यह उसे अपनी सच्ची प्रकृति और क्षमताओं का ज्ञान देता है
 - यह उसे अधिक जागरूक और सचेत बनाता है
7. अतिमानस और मानव समस्याएँ: श्री अरविंद का मानना है कि अतिमानस का अवतरण मानव जाति की अधिकांश समस्याओं का समाधान करेगा:

- यह अज्ञान, स्वार्थ और हिंसा को कम करेगा
- यह मानव संबंधों में सद्भाव और एकता लाएगा
- यह प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंधों को सुधारेगा

अतिमानस और मानव चेतना के बीच यह संबंध श्री अरविंद के दर्शन का एक आशावादी पहलू है। वे मानते हैं कि मानव

जाति का भविष्य उज्ज्वल है और अतिमानस के अवतरण के साथ एक नए युग की शुरुआत होगी।

5.6 अतिमानस और विकास का सिद्धांत

श्री अरविंद का अतिमानस सिद्धांत उनके विकासवादी दृष्टिकोण से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनका विकास का सिद्धांत डार्विन के जैविक विकासवाद से आगे जाता है और एक आध्यात्मिक आयाम जोड़ता है। इस खंड में हम अतिमानस और विकास के सिद्धांत के बीच संबंध को समझेंगे।

1. आध्यात्मिक विकासवाद:

- श्री अरविंद का विकासवाद केवल भौतिक या जैविक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक भी है।
- वे मानते हैं कि प्रकृति में चेतना क्रमशः विकसित हो रही है - जड़ पदार्थ से लेकर जीवन, मन और उससे आगे।

- इस विकास का चरम लक्ष्य अतिमानस का प्रकटीकरण है।
2. विकास की प्रक्रिया:
- श्री अरविंद के अनुसार, विकास की प्रक्रिया में दो पहलू हैं: a) निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर उत्थान b) उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर अवतरण
 - अतिमानस इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह उच्चतम चेतना (सच्चिदानंद) और निम्नतम चेतना (जड़ पदार्थ) के बीच की कड़ी है।
3. विकास के चरण: श्री अरविंद विकास के निम्नलिखित चरणों की बात करते हैं:
- जड़ पदार्थ
 - जीवन (प्राण)
 - मन
 - अतिमानस
 - अतिमानस
 - सच्चिदानंद प्रत्येक चरण पिछले चरण से अधिक जटिल और चेतन होता है।
4. अतिमानस का महत्व:
- अतिमानस विकास प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण मोड़ है।
 - यह मानव चेतना और दिव्य चेतना के बीच की कड़ी है।
 - इसका अवतरण विकास प्रक्रिया को एक नई दिशा और गति प्रदान करेगा।
5. विकास का लक्ष्य:
- श्री अरविंद के अनुसार, विकास का अंतिम लक्ष्य पृथ्वी पर दिव्य जीवन की स्थापना है।
 - यह तब होगा जब अतिमानस पूरी तरह से मानव चेतना में प्रकट हो जाएगा।
6. विकास और व्यक्तिगत प्रयास:
- हालांकि विकास एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, व्यक्तिगत प्रयास इसे तेज कर सकते हैं।
 - योग और आध्यात्मिक अभ्यास व्यक्ति को अतिमानस की ओर तेजी से बढ़ने में मदद कर सकते हैं।
7. विकास और समाज:
- श्री अरविंद मानते हैं कि विकास केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक भी है।

○ अतिमानस का अवतरण पूरे समाज और मानव जाति को प्रभावित करेगा।

8. विकास की बाधाएँ:

- अज्ञान, अहंकार और आसक्ति विकास की मुख्य बाधाएँ हैं।
- अतिमानस इन बाधाओं को दूर करने में मदद करेगा।

9. विकास और समय:

- श्री अरविंद मानते हैं कि विकास एक लंबी प्रक्रिया है।
- हालांकि अतिमानस का अवतरण इस प्रक्रिया को तेज करेगा, फिर भी यह एक क्रमिक प्रक्रिया ही रहेगी।

10. विकास और प्रकृति का रूपांतरण:

- अतिमानस का अवतरण न केवल मानव चेतना को, बल्कि संपूर्ण प्रकृति को भी रूपांतरित करेगा।
- यह प्रकृति के नियमों और कार्यप्रणाली को बदल देगा।

श्री अरविंद का विकास का सिद्धांत एक आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। वे मानते हैं कि मानव जाति और पृथ्वी एक उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं, जहाँ अतिमानस की शक्ति प्रकट होगी और एक नए युग की शुरुआत होगी।

5.7 अतिमानस और योग

श्री अरविंद के दर्शन में योग एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होंने 'पूर्णयोग' की अवधारणा दी, जो अतिमानस के अवतरण और मानव चेतना के रूपांतरण का एक साधन है। इस खंड में हम अतिमानस और योग के बीच संबंध को समझेंगे।

1. पूर्णयोग की अवधारणा:

- पूर्णयोग श्री अरविंद द्वारा विकसित एक समग्र योग पद्धति है।
- यह ज्ञान योग, भक्ति योग और कर्म योग का समन्वय है।
- इसका लक्ष्य केवल व्यक्तिगत मुक्ति नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन का रूपांतरण है।

2. योग का उद्देश्य:

- श्री अरविंद के अनुसार, योग का मुख्य उद्देश्य अतिमानस के अवतरण के लिए मानव चेतना को तैयार करना है।
- यह मन, प्राण और शरीर के रूपांतरण की प्रक्रिया है।
- 3. साधना के चरण: श्री अरविंद पूर्णयोग में निम्नलिखित चरणों की बात करते हैं:
 - शुद्धि (शुद्धीकरण)
 - मुक्ति (मुक्ति)
 - सिद्धि (पूर्णता)
 - भागवत जीवन (दिव्य जीवन)
- 4. अतिमानस और समर्पण:
 - समर्पण पूर्णयोग का एक महत्वपूर्ण पहलू है।
 - यह अतिमानस की शक्ति को अपने में कार्य करने देने की प्रक्रिया है।
 - समर्पण जितना पूर्ण होगा, अतिमानस का कार्य उतना ही प्रभावी होगा।
- 5. अतिमानस और रूपांतरण:
 - योग की प्रक्रिया में, अतिमानस मानव चेतना के सभी पहलुओं का रूपांतरण करता है।
 - यह मन, प्राण और शरीर को दिव्य चेतना के वाहक बनाता है।
- 6. अतिमानस और साधक की भूमिका:
 - साधक की भूमिका स्वयं को अतिमानस के लिए खोलना और उसके कार्य में सहयोग करना है।
 - यह एक सक्रिय और सचेत सहयोग की प्रक्रिया है।
- 7. योग और जीवन:
 - श्री अरविंद के अनुसार, योग केवल ध्यान या आध्यात्मिक अभ्यास तक सीमित नहीं है।
 - यह जीवन के हर पहलू में अतिमानस की अभिव्यक्ति है।
 - कार्य, संबंध, और दैनिक जीवन के सभी क्षेत्र योग का हिस्सा बन जाते हैं।
- 8. योग और विश्व-परिवर्तन:
 - श्री अरविंद का योग केवल व्यक्तिगत मुक्ति या सिद्धि के लिए नहीं है।
 - इसका उद्देश्य संपूर्ण विश्व का रूपांतरण है।

○ अतिमानस के अवतरण के माध्यम से, यह योग पृथ्वी पर दिव्य जीवन की स्थापना करना चाहता है।

9. योग की चुनौतियाँ:

- अतिमानस के अवतरण की प्रक्रिया चुनौतीपूर्ण हो सकती है।
- साधक को अपने अंदर के प्रतिरोधों और बाधाओं का सामना करना पड़ता है।
- धैर्य, दृढ़ता और विश्वास इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण हैं।

10. योग और सामूहिक चेतना:

- श्री अरविंद का योग व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर काम करता है।
- जैसे-जैसे अधिक लोग इस योग को अपनाते हैं, वैसे-वैसे सामूहिक चेतना में परिवर्तन आता है।
- यह परिवर्तन अतिमानस के अवतरण को और अधिक संभव बनाता है।

श्री अरविंद का पूर्णयोग अतिमानस सिद्धांत का व्यावहारिक पहलू है। यह एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से व्यक्ति और समाज अतिमानस की ओर बढ़ सकते हैं। यह योग जीवन के सभी पहलुओं को समाहित करता है और एक समग्र रूपांतरण की ओर ले जाता है।

5.8 अतिमानस और समाज

श्री अरविंद का अतिमानस सिद्धांत केवल व्यक्तिगत विकास तक सीमित नहीं है। उनका मानना है कि अतिमानस का अवतरण समाज और मानव सभ्यता को गहराई से प्रभावित करेगा। इस खंड में हम अतिमानस के सामाजिक प्रभावों और निहितार्थों पर चर्चा करेंगे।

1. समाज का रूपांतरण:

- श्री अरविंद मानते हैं कि अतिमानस का अवतरण समाज के सभी पहलुओं को रूपांतरित करेगा।
- यह रूपांतरण राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, कला और संस्कृति सहित जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करेगा।

2. नया सामाजिक आदर्श:

- अतिमानस के प्रभाव में, समाज एक नए आदर्श की ओर बढ़ेगा।
- यह आदर्श एकता, सद्भाव और परस्पर सहयोग पर आधारित होगा।
- व्यक्तिगत और सामूहिक हितों के बीच संतुलन स्थापित होगा।

3. सामाजिक संगठन का नया रूप

- अतिमानस के प्रभाव में, सामाजिक संगठन का एक नया रूप उभरेगा।

- यह संगठन अधिक लचीला, समावेशी और प्रगतिशील होगा।
 - इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक एकता के बीच सामंजस्य होगा।
4. नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का उत्थान:
- अतिमानस समाज में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को बढ़ावा देगा।
 - स्वार्थ, लोभ और हिंसा जैसी नकारात्मक प्रवृत्तियाँ कम होंगी।
 - करुणा, सेवा और आत्म-त्याग जैसे गुणों का विकास होगा।
5. शिक्षा का रूपांतरण:
- शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन होगा।
 - यह केवल बौद्धिक विकास पर केंद्रित नहीं होगी, बल्कि समग्र व्यक्तित्व के विकास पर जोर देगी।
 - आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा महत्वपूर्ण हो जाएगी।
6. अर्थव्यवस्था का नया मॉडल:
- अतिमानस के प्रभाव में, अर्थव्यवस्था का एक नया मॉडल विकसित होगा।
 - यह मॉडल केवल भौतिक समृद्धि पर नहीं, बल्कि सामाजिक कल्याण और आध्यात्मिक विकास पर भी ध्यान देगा।
 - संसाधनों का न्यायसंगत वितरण और पर्यावरण संरक्षण महत्वपूर्ण मुद्दे होंगे।
7. राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन:
- राजनीतिक व्यवस्था अधिक पारदर्शी, न्यायसंगत और लोकतांत्रिक होगी।
 - नेतृत्व का आधार शक्ति या धन नहीं, बल्कि ज्ञान और चरित्र होगा।
 - अंतरराष्ट्रीय संबंधों में सहयोग और शांति की भावना बढ़ेगी।
8. कला और संस्कृति का नवीनीकरण:
- अतिमानस कला और संस्कृति को नई ऊंचाइयों पर ले जाएगा।
 - कलाकृतियाँ अधिक आध्यात्मिक और रूपांतरणकारी होंगी।
 - सांस्कृतिक विविधता का सम्मान होगा, साथ ही मानवता की एकता का बोध भी बढ़ेगा।
9. पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन:
- पारिवारिक संबंध अधिक गहरे और सार्थक होंगे।

- पीढ़ियों के बीच का अंतर कम होगा।
 - लैंगिक समानता और सम्मान बढ़ेगा।
10. विज्ञान और प्रौद्योगिकी का नया दृष्टिकोण:
- विज्ञान और आध्यात्मिकता के बीच एकीकरण होगा।
 - प्रौद्योगिकी का उपयोग मानव कल्याण और आध्यात्मिक विकास के लिए होगा।
 - नई खोजें और आविष्कार मानव चेतना के विस्तार में मदद करेंगे।
11. पर्यावरण के प्रति नया दृष्टिकोण:
- प्रकृति के साथ मानव का संबंध अधिक सामंजस्यपूर्ण होगा।
 - पर्यावरण संरक्षण एक स्वाभाविक प्रवृत्ति बन जाएगी।
 - प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अधिक विवेकपूर्ण और टिकाऊ तरीके से होगा।
12. सामाजिक न्याय और समानता:
- अतिमानस के प्रभाव में, समाज में न्याय और समानता की भावना बढ़ेगी।
 - जाति, वर्ग, लिंग या धर्म के आधार पर भेदभाव कम होगा।
 - सभी व्यक्तियों की गरिमा और मूल्य को स्वीकार किया जाएगा।
13. नए सामाजिक संस्थान:
- अतिमानस के अवतरण के साथ, नए प्रकार के सामाजिक संस्थान उभरेंगे।
 - ये संस्थान व्यक्तिगत और सामूहिक विकास को बढ़ावा देंगे।
 - समुदाय-आधारित संगठन और सहकारी समितियाँ अधिक प्रभावी होंगी।
14. वैश्विक एकता की ओर:
- अतिमानस मानवता को वैश्विक एकता की ओर ले जाएगा।
 - राष्ट्रीय सीमाएँ कम महत्वपूर्ण हो जाएंगी।
 - एक वैश्विक संस्कृति का उदय होगा, जो विविधता में एकता का प्रतीक होगी।

श्री अरविंद का यह दृष्टिकोण एक आदर्श समाज की कल्पना प्रस्तुत करता है। हालांकि यह एक दूरदर्शी और आशावादी दृष्टिकोण है, श्री अरविंद मानते हैं कि यह परिवर्तन धीरे-धीरे और क्रमिक रूप से होगा। उनके अनुसार, अतिमानस का अवतरण इस परिवर्तन को संभव बनाएगा, लेकिन इसके लिए मानव जाति को भी अपनी ओर से प्रयास करना होगा।

5.9 अतिमानस सिद्धांत की आलोचनात्मक समीक्षा

श्री अरविंद का अतिमानस सिद्धांत भारतीय दर्शन और आध्यात्मिकता में एक महत्वपूर्ण योगदान है। हालांकि, जैसा कि किसी भी दार्शनिक सिद्धांत के साथ होता है, इस सिद्धांत की भी कुछ आलोचनाएँ और चुनौतियाँ हैं। इस खंड में हम अतिमानस सिद्धांत की एक संतुलित और आलोचनात्मक समीक्षा करेंगे।

1. सकारात्मक पहलू: a) समन्वयात्मक दृष्टिकोण:
 - श्री अरविंद का सिद्धांत पूर्व और पश्चिम के ज्ञान का समन्वय करता है।
 - यह आध्यात्मिकता और विज्ञान को एक साथ लाने का प्रयास करता है।
2. b) विकासवादी दृष्टिकोण:
 - यह सिद्धांत मानव विकास की एक व्यापक दृष्टि प्रस्तुत करता है।
 - यह केवल भौतिक या बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक विकास पर भी जोर देता है।
3. c) आशावादी दृष्टिकोण:
 - यह सिद्धांत मानव जाति के भविष्य के प्रति एक आशावादी दृष्टिकोण रखता है।
 - यह मानता है कि मानवता एक उच्च चेतना की ओर विकसित हो रही है।
4. d) व्यावहारिक आध्यात्मिकता:
 - श्री अरविंद का सिद्धांत केवल सैद्धांतिक नहीं है, बल्कि व्यावहारिक भी है।
 - यह योग और दैनिक जीवन में आध्यात्मिकता के एकीकरण पर जोर देता है।
5. आलोचनाएँ और चुनौतियाँ: a) वैज्ञानिक प्रमाण की कमी:
 - अतिमानस जैसी उच्च चेतना के अस्तित्व का कोई ठोस वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है।
 - यह सिद्धांत अधिकतर व्यक्तिगत अनुभवों और अंतर्दृष्टि पर आधारित है।
6. b) अत्यधिक आदर्शवादी:
 - कुछ आलोचकों का मानना है कि यह सिद्धांत वास्तविकता से दूर और अत्यधिक आदर्शवादी है।
 - वर्तमान मानव स्थिति को देखते हुए, अतिमानस का अवतरण एक दूर की कल्पना लग सकती है।
7. c) व्याख्या की कठिनाई:
 - अतिमानस जैसी अवधारणाओं को समझना और व्याख्या करना कठिन हो सकता है।

- यह सिद्धांत कभी-कभी अत्यधिक सैद्धांतिक और अमूर्त लग सकता है।
8. d) सांस्कृतिक पूर्वाग्रह:
- कुछ आलोचक मानते हैं कि यह सिद्धांत भारतीय दर्शन और संस्कृति पर अधिक निर्भर है।
 - यह वैश्विक स्तर पर स्वीकार्यता में चुनौती पेश कर सकता है।
9. e) व्यक्तिगत प्रयास बनाम सामूहिक परिवर्तन:
- यह स्पष्ट नहीं है कि व्यक्तिगत प्रयास किस प्रकार सामूहिक परिवर्तन में परिणत होंगे।
 - सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया अधिक जटिल हो सकती है।
10. f) समय सीमा का अभाव:
- श्री अरविंद ने अतिमानस के अवतरण के लिए कोई स्पष्ट समय सीमा नहीं दी है।
 - यह अनिश्चितता कुछ लोगों के लिए निराशाजनक हो सकती है।
11. g) वर्तमान समस्याओं का समाधान:
- कुछ आलोचक मानते हैं कि यह सिद्धांत वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय समस्याओं के तत्काल समाधान प्रदान नहीं करता।
12. h) व्यक्तिगत अनुभव पर अत्यधिक निर्भरता:
- सिद्धांत का एक बड़ा हिस्सा श्री अरविंद के व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित है।
 - यह इसकी वस्तुनिष्ठता और सार्वभौमिकता पर सवाल उठा सकता है।
13. संतुलित दृष्टिकोण: a) श्री अरविंद का अतिमानस सिद्धांत एक महत्वाकांक्षी और व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह मानव विकास और चेतना के विस्तार की संभावनाओं को खोलता है।
- b) हालांकि इस सिद्धांत की कुछ आलोचनाएँ हैं, लेकिन इसका महत्व और प्रभाव नकारा नहीं जा सकता। यह सिद्धांत दुनिया भर के कई लोगों को प्रेरित और प्रभावित करता है।
- c) इस सिद्धांत को एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में देखा जा सकता है, जो मानव जाति के लिए एक उच्च लक्ष्य निर्धारित करता है।
- d) वैज्ञानिक प्रमाणों की कमी एक चुनौती है, लेकिन यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कई आध्यात्मिक और दार्शनिक अवधारणाएँ वर्तमान वैज्ञानिक परिधि से परे हो सकती हैं।
- e) इस सिद्धांत को समझने और लागू करने के लिए एक खुला दिमाग और गहन अध्ययन की आवश्यकता है।

निष्कर्षतः, श्री अरविंद का अतिमानस सिद्धांत एक महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक दार्शनिक योगदान है। यह मानव क्षमता और विकास की संभावनाओं पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। हालांकि इसकी कुछ सीमाएँ और चुनौतियाँ हैं, फिर भी यह सिद्धांत मानव चेतना और समाज के भविष्य पर गहन चिंतन के लिए एक मंच प्रदान करता है।

5.10 सारांश

श्री अरविंद का अतिमानस सिद्धांत 20 वीं सदी के भारतीय दर्शन का एक महत्वपूर्ण योगदान है। यह सिद्धांत मानव चेतना के विकास और विश्व की प्रकृति के बारे में एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। निम्नलिखित बिंदु इस सिद्धांत के मुख्य निष्कर्षों को रेखांकित करते हैं:

1. चेतना का विकास:
 - अतिमानस सिद्धांत मानता है कि चेतना क्रमिक रूप से विकसित हो रही है।
 - यह विकास जड़ पदार्थ से लेकर जीवन, मन और उससे आगे तक जाता है।
2. अतिमानस की केंद्रीय भूमिका:
 - अतिमानस को मानव चेतना और दिव्य चेतना के बीच की कड़ी माना जाता है।
 - यह एक ऐसी चेतना है जो एकता और विविधता को एक साथ धारण कर सकती है।
3. मानव विकास का अगला चरण:
 - श्री अरविंद मानते हैं कि अतिमानस का अवतरण मानव विकास का अगला महत्वपूर्ण चरण है।
 - यह मानव चेतना और समाज को एक नए स्तर पर ले जाएगा।
4. समग्र दृष्टिकोण:
 - अतिमानस सिद्धांत जीवन के सभी पहलुओं - व्यक्तिगत, सामाजिक, आध्यात्मिक - को समाहित करता है।
 - यह एक समग्र रूपांतरण की बात करता है।
5. योग का महत्व:
 - श्री अरविंद का पूर्णयोग अतिमानस के अवतरण और मानव चेतना के रूपांतरण का एक साधन है।
 - यह योग जीवन के सभी पहलुओं को शामिल करता है।
6. सामाजिक परिवर्तन:
 - अतिमानस का अवतरण न केवल व्यक्तिगत, बल्कि सामाजिक स्तर पर भी परिवर्तन लाएगा।

- यह एक नए प्रकार के समाज और संस्कृति की ओर ले जाएगा।
- 7. आध्यात्मिक विकासवाद:
 - श्री अरविंद का सिद्धांत एक आध्यात्मिक विकासवाद प्रस्तुत करता है।
 - यह भौतिक और आध्यात्मिक विकास को एक साथ देखता है।
- 8. भविष्य की दृष्टि:
 - अतिमानस सिद्धांत मानव जाति के भविष्य के प्रति एक आशावादी दृष्टिकोण रखता है।
 - यह पृथ्वी पर एक दिव्य जीवन की स्थापना की संभावना की बात करता है।
- 9. चुनौतियाँ और आलोचनाएँ:
 - इस सिद्धांत की कुछ आलोचनाएँ भी हैं, जैसे वैज्ञानिक प्रमाण की कमी और अत्यधिक आदर्शवादी होना।
 - फिर भी, यह सिद्धांत मानव क्षमता और विकास पर गहन चिंतन के लिए एक मंच प्रदान करता है।
- 10. व्यावहारिक प्रासंगिकता:
 - हालांकि यह सिद्धांत बहुत दूरदर्शी लग सकता है, लेकिन इसके कई पहलू वर्तमान जीवन में लागू किए जा सकते हैं।
 - यह व्यक्तिगत विकास, सामाजिक सद्भाव और पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है।

श्री अरविंद का अतिमानस सिद्धांत एक गहन और व्यापक दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। यह सिद्धांत मानव चेतना के विकास और विश्व की प्रकृति के बारे में नए तरीके से सोचने के लिए प्रेरित करता है। हालांकि इसकी कुछ चुनौतियाँ हैं, फिर भी यह सिद्धांत मानव जाति के भविष्य और संभावनाओं पर एक आशावादी दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह हमें अपनी क्षमताओं की पूर्ण अभिव्यक्ति और एक बेहतर दुनिया की ओर प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है।

5.11 स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. श्री अरविंद के अतिमानस सिद्धांत की मुख्य अवधारणा क्या है? इसे अपने शब्दों में समझाइए।
2. अतिमानस और मानव चेतना के बीच क्या संबंध है? इस संबंध के क्या निहितार्थ हैं?
3. श्री अरविंद के विकास के सिद्धांत में अतिमानस की क्या भूमिका है?
4. पूर्णयोग क्या है और यह अतिमानस सिद्धांत से कैसे संबंधित है?

5. अतिमानस के अवतरण के सामाजिक प्रभावों की व्याख्या कीजिए। क्या आप इन प्रभावों से सहमत हैं?
6. अतिमानस सिद्धांत की मुख्य आलोचनाएँ क्या हैं? क्या आप इन आलोचनाओं से सहमत हैं या असहमत? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।
7. श्री अरविंद के अतिमानस सिद्धांत का वर्तमान समय में क्या महत्व है? क्या यह सिद्धांत आज के समाज के लिए प्रासंगिक है?
8. अतिमानस सिद्धांत और आधुनिक विज्ञान के बीच क्या संबंध हो सकता है? क्या इन दोनों के बीच कोई संभावित समन्वय हो सकता है?
9. श्री अरविंद के अनुसार, अतिमानस के अवतरण में व्यक्ति की क्या भूमिका है? इस संदर्भ में आप अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी को कैसे देखते हैं?
10. अतिमानस सिद्धांत की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए और बताइए कि ये विशेषताएँ मानव चेतना से कैसे भिन्न हैं।
इन प्रश्नों पर चिंतन करने और उत्तर देने से आपको श्री अरविंद के अतिमानस सिद्धांत को गहराई से समझने में मदद मिलेगी। याद रखें, इन प्रश्नों का कोई एक सही उत्तर नहीं है। आपके व्यक्तिगत विचार और समझ महत्वपूर्ण हैं।

5.12 उपयोगी पुस्तकें व संदर्भ सूची

1. अरविंद, श्री. (1990). द लाइफ डिवाइज. पांडिचेरी: श्री अरविंद आश्रम।
2. अरविंद, श्री. (1999). द सिंथेसिस ऑफ योगा. पांडिचेरी: श्री अरविंद आश्रम।
3. अरविंद, श्री. (2005). सावित्री: ए लीजेंड एंड ए सिंबल. पांडिचेरी: श्री अरविंद आश्रम।
4. द मदर. (1998). श्री अरविंद ऑन हिमसेल्फ एंड ऑन द मदर. पांडिचेरी: श्री अरविंद आश्रम।
5. मुखर्जी, आर. (2014). श्री अरविंद: ए बाइयोग्राफी. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।
6. मैकडर्मोट, आर. (1972). द एसेंशियल अरविंद. न्यू यॉर्क: शॉकेन बुक्स।
7. ब्रूकमैन, जे. (2012). श्री अरविंद'स फिलॉसफी ऑफ एवोल्यूशन. पांडिचेरी: श्री अरविंद सेंटर फॉर एडवांस्ड रिसर्च।
8. दलाल, ए.एस. (2001). ए ग्रेटर साइकोलॉजी: एन इंट्रोडक्शन टू द साइकोलॉजिकल थॉट ऑफ श्री अरविंद. पांडिचेरी: श्री अरविंद आश्रम।

9. हीरानंदानी, के. (2012). श्री अरविंद एंड द फ्यूचर ऑफ ह्युमैनिटी. नई दिल्ली: मनोहर पब्लिशर्स।
10. रेडी, वी.एम. (1966). द कॉन्सेप्ट ऑफ मैन इन श्री अरविंद एंड अदर थिंक्स. पांडिचेरी: श्री अरविंद स्टडी सर्किल।

-----0000-----

खण्ड—3 जे० कृष्णमूर्ति

खण्ड परिचय:

जे. कृष्णमूर्ति की दर्शनशास्त्रीय विचारधारा अपने में एक विधा है। उनका दर्शनव्यक्तिगत विकास, मानवता के महत्व, और समाज में सामंजस्य और शांति के प्रति महान आकर्षण से भरा हुआ है। उनके विचार व्यापक समाजिक, धार्मिक और मानवतावादी मुद्दों पर एक अद्वितीय प्रकार से ध्यान केंद्रित करते हैं। कृष्णमूर्ति ने मानव चेतना के विकास और आत्म-मुक्ति के माध्यम से वास्तविक धर्म की खोज की है, जो सम्पूर्ण मानवजाति के लिए एक प्रेरणा स्रोत है। उनके दर्शन में स्वतंत्रता, विचारशीलता और सच्चाई की ऊंची भावना ने उन्हें एक महान धार्मिक विचारक के रूप में जानाजाता है। प्रस्तुत खण्ड में जे. कृष्णमूर्ति के जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण विषय के महत्व, उपयोगिता और उसको प्रभावित करने वाले तथ्यों एवं कारकों को इंगित किया गया है। साथ ही बुद्धि की सीमाएं विषय पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है कि कैसे हम रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, नवीनविचारों के प्रति असहजकता आदि से ग्रसित होकर बौद्धिकता के चरम पर प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। बुद्धि जो असीमित और अनन्त संभावनाओं से युक्त है, उसे हम सीमित एवं बंधन युक्त कर देते हैं।

इकाई—6 जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण: जे. कृष्णमूर्ति का जीवन के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण एक अद्वितीय पहलू है। अगर हम कहें कि यह मानव और समाज को जे. कृष्णमूर्ति की एक अतुलनीय भेट है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण न केवल एक सिद्धांत है, बल्कि एक जीवन शैली और सोच का जीवन्त उदाहरण है। उन्होंने मानव जीवन की सच्ची प्रकृति और उसके अद्वितीयता को गहराई से जानने की कोशिश की है, जिससे हमारे जीवन को एक सार्थक और संवेदनशील दृष्टिकोण से देखा जासके। कृष्णमूर्ति का आदर्शवादी दृष्टिकोण हमें आत्म-समझ, सही विचारशीलता और अनुभव में आधारित जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है, जो हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सहायक सिद्ध होता है।

इकाई—7 बुद्धि की सीमाएं: जे. कृष्णमूर्ति के विचार में मन की सीमाओं का विषय एक गहरा और महत्वपूर्ण विचार है। उन्होंने मानव मन की कठिनाइयों, उसकी सीमाओं और उसके प्रभावों को समझाने का प्रयास किया है। कृष्णमूर्ति ने बताया है कि मन विचारों, धारणाओं और सांस्कारिक प्रभावों से परिपूर्ण होता है, जिसके कारण यह अक्सर हमारी सोच और अनुभव में सीमाओं का कारण बन जाता है। वे यह भी बताते हैं कि मानव मन की इस सीमा से उबरने के लिए आत्म ज्ञान और आत्म चिंतन की आवश्यकता होती है, जिससे हम अपने विचारों को शुद्ध करके सत्य को अनुभव सकें। इस प्रकार, जे. कृष्णमूर्ति के द्वारा मन की सीमाओं का विश्लेषण हमें अपने अंदर के विचारों और स्वभाव के गहरे पहलुओं को समझने में मदद करता है।

इकाई-6

जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण

6.3 सारांश

6.4 शब्दावली

6.5 प्रश्नावली

6.6 सन्दर्भग्रन्थ

.....000.....

6.0 उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको जे. कृष्णमूर्ति के 'जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण' के सन्दर्भ में उनके विचारों से अवगत कराना है। इस इकाई के पूर्ण होने पर आप निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो पायेंगे—

- जे. कृष्णमूर्ति के जीवन का सामान्य परिचय प्राप्त कर पायेंगे।
- जे. कृष्णमूर्ति के विचार में जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण को समझ पायेंगे।
- व्यक्ति का जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए, यह समझ पायेंगे।
- आदर्श जीवन के दृष्टिकोण को प्रभावित करनेवाले कारकों से परिचित होंगे।

6.1 प्रस्तावना:

जिहू कृष्णमूर्ति का जन्म 12 मई 1895 को आन्ध्रप्रदेश के चिन्तूर जिले के मदनपल्ली नामक स्थानपर एक तेलुगु ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम संजीवम्मा एवं पिता का नाम जिहूनारायणीय था और वे एक अवकाश प्राप्त सर्वेन्ट के साथ-साथ पुराने थियोसोफिस्ट थे। दस वर्ष की आयु में जब इनकी माता श्री का देहावसान हो गया तो इनके पिता अपने पुत्रों समेत श्रीमती एनी बेसेन्ट के आमन्त्रण पर 1908 में मद्रास के उडयार नामक

स्थान पर स्थित थियोसोफिकल सोसायटी के परिसर में जाकर रहने लगे। कृष्णमूर्ति विलक्षण एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इनकी प्रखर बुद्धि और गहरी आध्यात्मिक समझ को देखकर उस समय के प्रमुख थियोसोफिस्ट, सी.डब्लू. लीडबीटर और श्रीमती एनी बेसेन्ट ने यह स्वीकार किया कि यह बालक भविष्य में एक महान् आध्यात्मिक शिक्षक के रूप में विश्व का मार्गदर्शन कर सकता है। इस प्रकार इन्हें 1927 में विश्वगुरु घोषित किया, किन्तु इन्होंने दो वर्ष बाद ही थियोसोफिकल सोसायटी से नाता तोड़कर अपने नवीन दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया।

इन्होंने अपना स्वतन्त्र विचार एवं चिन्तन किया। उनका कहना था कि व्यक्तित्व के पूर्ण रूपान्तरण से ही विश्व को संघर्ष एवं पीड़ा को हटाया जा सकता है। उन्होंने 'आर्डर ऑफ द स्टार' को भंग कर दिया। कृष्णमूर्ति की नवीन एवं उत्कृष्ट विचार धारा ने समाज के बौद्धिक वर्ग को आकर्षित किया। इसके साथ ही इन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जो आज भी भारत सहित विश्व में अपना एक स्थान रखते हैं।

दक्षिणभारत का ऋषिवैलीस्कूल इनमें विशेष उल्लेखनीय है। इसी के साथ ही इनके साहित्य में सार्वजनिक वार्ताएं, प्रश्नोत्तर, परिचर्चाएँ, साक्षात्कार, परस्पर संवाद, डायरी एवं उनकी प्रमुख पुस्तकें सम्मिलित हैं। उनका मूल साहित्य अंग्रेजी भाषा में है, जिसका अनुवाद कई प्रचलित भाषाओं में किया गया है। इनका देहान्त 17 फरवरी, 1986 को 91 वर्ष की आयु में हुआ।

6.2 जीवन के प्रतिआदर्शदृष्टिकोण :

मानव जीवन में आदर्श दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन दृष्टिकोणों के माध्यम से हम अपने जीवन को सही दिशा में ले जा सकते हैं और अपने कार्यों को उच्चतम मानकों पर स्थापित कर सकते हैं। जीवन के प्रति ये अदार्श दृष्टिकोण हमें एक सार्थक और संतुलित जीवन जीने में मदद करते हैं। जीवन में सदैव उतार-चढ़ाव लगे रहते हैं। कभी धूप तो कभी छांव, कभी गम तो कभी खुशी, कभी ज्यादा तो कभी कम, ये सभी मानव जीवन के अभिन्न अंग हैं। आप इनसे पृथक नहीं रह सकते हैं, लेकिन यदि आप जीवन के प्रति सरल, सहज और आदर्शात्मक दृष्टिकोण रखते हैं तो आप सदैव जीवन में सुख-शान्ति को प्राप्त करेंगे।

जे. कृष्णमूर्ति का मानना था कि मानव में जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण और आत्मबोध तभी पुष्पित एवं पल्लवित होगा, जब वह अपनी परम्परागत सोच-समझ और विचारों से आगे बढ़कर अपने को नवीन विचारों एवं धाराणाओं के परिप्रेक्ष्य में कोरेकागज के समान रखेगा क्योंकि यदि वह पूर्व के दुराग्रहों और विचारों से स्वयं को पृथक नहीं करेगा, तब तक नवीन विचार और धाराणाएं उसके ज्ञान को परिष्कृत और परिमार्जित नहीं कर पायेंगी। इन नवीन विचारों और धाराणाओं से एक सशक्त, कर्मठ और ओजस्वी व्यक्तित्व का निर्माण होता है। कोई भी मानव अपने जीवन में तभी नवीन ऊँचाईयों को प्राप्त कर सकता जब वह समय

के अनुरूप अपने आचरण एवं कर्तव्यों का पालन करेगा। उसे समय के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का निर्माण, नवीन दृष्टिकोण एवं धारणाएं ही करेंगी। व्यक्तित्व के पूर्ण रूपान्तरण से ही विश्व से संघर्ष और पीड़ा को मिटाया जा सकता है। हम अन्दर से अतीत का बोझ और भविष्य का भय हटा दें और अपने मस्तिष्क को मुक्त रखें, तभी हमें अपने ध्येय की प्राप्ति हो पायेगी।

जे. कृष्णमूर्ति कहते हैं, कि हम परम्पराओं और रूढ़ियों के दास हैं। हम भले ही खुद को आधुनिक समझ बैठे हैं, मान लें कि हम स्वतन्त्र हो गए, हम पर किसी भी प्रकार का कोई बन्धन नहीं है, लेकिन जब हम इस पर गहन दृष्टिपात करें तो देखते हैं कि हम रूढ़िवादी ही हैं। कुछ भी नया करने से डरते हैं, करना तो दूर की बात हम अपनी परम्पराओं और रूढ़िवादियों पर विचार भी करने से डरते हैं और इसका यह परिणाम होता है कि हम सदैव ही मत-मतान्तरों, परम्पराओं, रूढ़िवादियों और कल्पनाओं से घिरे रहते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है, क्योंकि हम लोगों ने ही छवि-रचना के खेल को स्वीकार किया है और परस्पर सम्बन्धों को इसी के आधार पर स्थापित किया है। यह बात उतनी ही पुरातन है, जितनी कि ये पहाड़ियाँ, नदी-झरनें और आकाश। यह हमारी नियती बन गई है। हम इसे अपनाते हैं, इसी में जीते हैं और इसी से एक-दूसरे को यातनाएँ देते हैं। आज का मानव इतिहास के एक बहुत ही उत्तेजना पूर्ण युग के द्वार पर खड़ा है। भौतिक उपलब्धियों के बावजूद मानव मन दुराग्रहों और अशान्ति से भरा हुआ है। हम ऐसे संसार में जी रहे हैं जहाँ विषाद, दुःख और पीड़ा सर्वव्यापी है। सम्पूर्ण वातावरण सन्देह, कटुता एवं अविश्वासों से युक्त है। मूल्यों का कोई सर्वस्वीकृत सिद्धान्त नहीं रहा, जो क्षण-क्षण परिवर्तित परिवेश में मनुष्य का दिशा-निर्देश कर सके। नैतिक अवसान ने मानवता के सम्मुख एक प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया है, ऐसी स्थिति में मनुष्य व उसके अस्तित्व सम्बन्धी प्रश्नों पर पुनर्विचार अत्यन्त आवश्यक है।

जीवन को उसकी सम्पूर्णता में ग्रहण करने हेतु सर्वप्रथम हमें उन जीवन-मूल्यों से मुक्त होना होगा, जिन्हें इस समाज ने परम्पराओं के रूप में हमारे ऊपर थोप रखा है। परम्पराओं ने गरीबी व शोषण को कर्मों का फल या पापों का दण्ड बताकर ईश्वरीय कृपा को उच्च वर्ग तक सीमित कर रखा। अतः सर्वप्रथम आवश्यकता है, इस संस्कार रूप में अर्जित भय से मुक्ति की क्योंकि मानवीय शक्ति अनन्त सम्भावनाओं से युक्त है, किन्तु उसकी इस सम्भावना के आगे परम्पराओं और रूढ़िवादी विचारधारा ने प्रश्नचिन्ह खड़े कर रखे हैं।

भय एक ऐसा भीषण रोग है, जिसके होते जीवन-वृक्ष हरा-भरा रह ही नहीं सकता। भय समस्त मानवीय सम्भावनाओं को क्षीण कर देता है और जीवन एक बोझ बनकर रह जाता है। यदि जीवन को सार्थक बनाना है तो भय का निदान एवं निराकरण आवश्यक है। भय एक मिथक कल्पना है, भय कोई विवशता नहीं, अबोधता है। जीवन के हर क्षण को मनुष्य स्वयं अपने प्रयासों से सुन्दर बना सकता है। आत्म-विश्वास से धैर्य उत्पन्न होता है, जो मनुष्य का सच्चा साथी है।

कृष्णमूर्ति का दर्शन मनुष्य में एक ऐसे अडिग विश्वास को जाग्रत करना चाहता है, जो उसे गहरे जीवन मूल्यों और आदर्शों के प्रति उन्मुख कर सके। वे निःसंदेह सामाजिक क्रांति की भूमिका प्रस्तुत करना चाहते हैं। वे स्वयं को किसी विचारधारा के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। सत्य के अतिरिक्त परम सत् तक पहुँचने का कोई अन्य मार्ग नहीं है। व्यक्ति की प्रबुद्धता एवं जीवन के प्रति उसके आदर्श दृष्टिकोण ही उसके वास्तविक निर्देशक हैं। व्यक्ति को संघर्षों का स्वयं ही सामना करना पड़ेगा।

यहाँ यह प्रश्न स्वतः उठता है कि क्या इस रीति को रोका नहीं जा सकता है? इसके समाधान के सन्दर्भ में जे. कृष्णमूर्ति कहते हैं कि इसका हल किसी तथाकथित धार्मिक गुरुओं, ठेकेदारों और राजनीतिज्ञों के पास नहीं है। इसका हल आपके भीतर है, आप स्वयं में सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ हैं, बस आवश्यकता है स्वयं को पहचानने की, स्वयं को जानने की। जिसने स्वयं को जान लिया, पहचान लिया, उसने इस संसार और चराचर जगत को भी जान और पहचान लिया।

वे कहते हैं कि यह कोई सैद्धांतिक संकल्पना नहीं है। यह मेरे जीवन का अनुभव है, मैं इसकी उपलब्धि के लिए क्या आवश्यक है, यह कह सकता हूँ। और मैं कहता हूँ कि पहली चीज यह है कि जो वस्तु जैसी है, हम उसे वैसा का वैसा ही पहचाने। क्योंकि हम सदैव वस्तुओं को किसी अन्य की आँखों से देखने, किसी अन्य के मुख से सुनने, किसी अन्य के स्पर्श से महसूस करने के आदी हो चुके हैं। यह रीति—रिवाज, आदतें, परम्पराएं और धाराणाएं हमें वस्तु के वास्तविक स्वरूप को माया की भाँति ढक लेती हैं और हमें जो देखना है, हम उससे वंचित रह जाते हैं। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम वस्तु को जैसी है, उसे वैसा देखने का अभ्यास करें और अपने अन्दर किसी अन्य प्रकार की विसंगतियों और दुराग्रहों को न पनपने दें। सदैव रचनात्मक और सृजनात्मक विचारों का सहर्ष स्वागत करें। जे. कृष्णमूर्ति एक बात बड़ी दृढ़ता और कर्मदत्ता के साथ कहते हैं कि “मनुष्य स्वतंत्र हो मैं केवल इस जरूरी बात से स्वयं को सम्बन्धित करता हूँ। मैं उसे सभी पिंजरों, सभी भय से मुक्त करना चाहता हूँ, मैं नहीं चाहता मनुष्य कोई नया धर्म, नया सम्प्रदाय, नया सिद्धान्त या फिर नया दर्शन ढूँढे।”

वे आगे कहते हैं कि शिक्षा के माध्यम से आप स्वयं का स्वयं से साक्षात्कार करा सकते हैं। आदर्श जीवन और आदर्श दृष्टिकोण की प्राप्ति हमें शिक्षा से ही प्राप्त हो सकती है। प्रत्येक मनुष्य को प्रकृतिक सौन्दर्य को देखने और समझने की दृष्टि विकसित करनी होगी। यह एक सतत् प्रक्रिया है, जिसे हम शिक्षा और समझ से प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षा मात्र पुस्तकों को पढ़ना और तथ्यों को कंठस्थ करना नहीं है। यह कोई दिखावे की वस्तु नहीं है क्योंकि दिखावा दूसरों के लिए होता है और यहाँ बात स्वयं के साक्षात्कार की है। माता—पिता अपने बच्चों को ऐसे विद्यालयों में भेजते हैं, जहाँ महत्वकांक्षा है, प्रतिस्पर्धा है, जहाँ

प्रेम का नामों—निशान नहीं है। यही कारण है कि हमारा समाज निरन्तर सड़ता जा रहा है, यह सतत् संघर्षमय बनता जा रहा है। हम जाने—अनजाने एक ऐसे समाज या सृष्टि का निर्माण कर रहे हैं जो एक खोखली और दिखावे की दुनिया मात्र रह गयी है, जिसका वास्तविक मानवीय मूल्यों और सिद्धान्तों से कोई सरोकार नहीं है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ हमें उस योग्य बनाना है कि हम पक्षियों के कलरव को सुन सकें, आकाश को देख सकें, वृक्षों और पहाड़ियों के अनुपम एवं अद्वितीय सौन्दर्य को महसूस कर सकें। अर्थात् हम प्रकृति प्रेमी, मानवीय मूल्यों और आत्म—प्रेमी बनें ताकि हम स्वतंत्र, निष्पक्ष और सजग होकर वस्तुओं का चुनाव कर सकें। आप प्रकृति से अलग नहीं हैं और न ही समाज से इसलिए आपका हर एक कदम अपने आपमें बहुत ही महत्व पूर्ण होता है।

8.3 सारांश

अतः सांराशतः जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार कहा जा सकता है कि जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण के निर्माण के निमित्त आपका स्वतंत्र आचरण, चिन्तन, मनन और व्यवहार आता है। आत्मा, परमात्मा या इन्द्रियातीत सत्ता आपकी क्षमता और शक्ति को क्षीण करती है। परम्परा, रूढ़ियाँ और रीति—रिवाज आपके बहुमुखीचिन्तन और मनन को प्रभावित करती हैं। आपका जीवन के प्रति उत्कृष्ट दृष्टिकोण कहें या जीवन का परिवर्तन सिर्फ इसी बोध में निहित है की आप स्वतंत्र रूप से सोचते हैं कि नहीं और आप अपनी सोच पर ध्यान देते हैं कि नहीं। यदि आप अन्य के विचारों, धाराणाओं और बातों से सदैव असहमति ही व्यक्त करते हैं तो आप कभी भी नये विचारों और सिद्धान्तों को नहीं गढ़ सकते हैं। आपकी सोच और समझ में समग्रता ही आपके व्यक्तित्व का परिचायक है। जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण की परिभाषा भी इसी बात में निहित है।

6.4 शब्दावली : आदर्श दृष्टिकोण, स्वतंत्रता, प्रतिस्पर्धा, निडरता, सशक्त और सार्थक विचार, दार्शनिक, धार्मिक विद्वान, मनोवैज्ञानिक, संस्कार, धर्म, नैतिकता, आध्यत्मिकता, निष्पक्षता और केन्द्रीभूत।

6.5 प्रश्नावली:

- 1- जे. कृष्णमूर्ति का संक्षिप्त परिचय प्रदान करें।
- 2- जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण से क्या तात्पर्य है ?
- 3- व्यक्ति का जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए?
- 4- जीवन के निर्माण में आदर्श दृष्टिकोण की क्या भूमिका है?

6.6 सन्दर्भग्रन्थ :

- 1- सक्सेना, लक्ष्मी, "समकालीन भारतीय दर्शन", उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2016
- 2- शर्मा, ए. सी., "प्रेम क्या है? अकेलापन क्या है?", राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरीगेट, दिल्ली, 2013.
- 3- गुप्ता, मुकेश, " जे. कृष्णमूर्ति: एक जीवनी", राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरीगेट, दिल्ली, 2013.
- 4- https://en.wikipedia.org/wiki/Jiddu_Krishnamurti
- 5- <https://www.jstor.org/stable/23607349>

.....000.....

इकाई-7

बुद्धि की सीमाएं

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 बुद्धि की सीमाएं

7.3 सारांश

7.4 शब्दावली

7.5 प्रश्नावली

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

.....0000.....

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको जे. कृष्णमूर्ति के 'बुद्धि की सीमाएं' विषय के सन्दर्भ में उनके विचारों से अवगत कराना है। इस इकाई के पूर्ण होने पर आप निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो पायेंगे—

- बुद्धि, बौद्धिक क्षमता और सीमा के प्रति सामान्य समझ विकसित कर पायेंगे।
- जे. कृष्णमूर्ति के 'बुद्धि की सीमाओं' से सम्बन्धित विचार को जान पायेंगे।
- बुद्धि को प्रभावित करने वाले तथ्यों और कारकों से परिचित होंगे।

7.1 प्रस्तावना: प्रस्तुत इकाई में जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार 'बुद्धि की सीमा' से सम्बन्धित तथ्यों और जानकारियों पर गहन और विस्तृत दृष्टिपात किया जायेगा। सामान्य अर्थों में बुद्धि से क्या तात्पर्य है? बुद्धि की सीमाओं से क्या तात्पर्य है? बुद्धि की सीमाओं को कैसे जाना जा सकता है? वे कौन से तथ्य एवं कारक हैं जो बुद्धि की सीमा को प्रभावित करते हैं? बुद्धि की सीमा को क्यों जानना जरूरी है? आदि प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत इकाई में खोजने का प्रयास किया

गया है। जे. कृष्णमूर्ति के द्वारा व्यक्त किया है, यह विषय बहुत ही गहरा और विशिष्ट है। उन्होंने कहा है कि बुद्धि की सीमा सिर्फ स्मृति और ज्ञान से बहुत आगे बढ़ने की सक्षमता को निर्धारित करती है। यह आत्म-स्वीकृत और सामाजिक प्रतिरोध के बीच एक संतुलन बनाए रखती है, जिसमें समय, स्थिति, और परिस्थितियों के अनुकूल विचार करना आवश्यक होता है।

कृष्णमूर्ति ने समझाया कि बुद्धि की सीमा जिसमें लोग स्वयं को रोक लेते हैं, वहां उन्हें अपने स्वार्थी और स्वाभिमानी विचारों से बाहर निकलकर व्यापक और समग्र दृष्टिकोण को समझने की क्षमता होनी चाहिए। इस प्रकार, वे बुद्धि को एक स्थिर, अपरिपक्व स्थिति में देखते हैं जो स्वतंत्रता, समझ, और सहानुभूति के साथ जुड़ी होती है। सीमाएं देश की संस्कृति की हैं, परिवेश की हैं और उन आर्थिक परिस्थितियों की हैं, जिनमें रहकर ही हम बड़े हुए हैं। अतः इन बंधनों और सीमाओं से ऊपर उठे बिना हम कैसे चीजों को सही प्रकार से देख एवं समझ सकते हैं। कहने का तात्पर्य है कि हमारी बुद्धि सरल, सहज और सारगर्भित तथ्यों से ओत-प्रोत है, बस आवश्यकता है तो उसको सही अर्थों में जानने की।

7.2 बुद्धि की सीमाएं:

जे. कृष्णमूर्ति बाल्यकाल से ही उत्कृष्ट आध्यात्मिक समझ एवं विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। समय के साथ इनकी आध्यात्मिक समझ, श्रेष्ठ ज्ञान और उच्च व्यवहार ने न केवल भारत अपितु विश्व के समस्त दार्शनिकों, धार्मिक विद्वानों एवं मनोवैज्ञानिकों को अपनी ओर आकर्षित किया।

जे. कृष्णमूर्ति विचारों की स्वतंत्रता और निडरता को लेकर बहुत ही मुखर थे, वे कहते थे कि मानव ने जितनी भी परम्परा और संस्कार, देश एवं काल से जानी है, उससे मुक्त होकर ही आप सच्चे अर्थों में मानव बन पाएंगे। जीवन की समृद्धि और सार्थकता इसी बोध में निहित है कि आप स्वतंत्र चिन्तन और मनन कर सकते हैं कि नहीं। आपको अपनी शक्ति और सामर्थ्य का भान होना ही चाहिए। उनके अनुसार विश्व को बेहतर बनाने के लिए यथार्थवादी और स्पष्टवादी मार्ग पर चलना ही होगा। आप के भीतर कुछ भी नहीं होना चाहिए, तब आप एक साफ एवं स्पष्ट आकाश देखने के लिए तैयार हो पायेंगे। आप धरती का भाग नहीं, आप स्वयं आकाश हैं। यदि आप कुछ भी हैं, तो फिर आप कुछ नहीं। अपनी महात्मा की छवि को दृढ़तापूर्वक नकारने के साथ ही उन्होंने 'ऑर्डर ऑफ दि स्टार' को भंग करते स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'सत्य एक मार्ग रहित भूमि' है, उस तक किसी औपचारिक धर्म, दर्शन अथवा किसी सम्प्रदाय के माध्यम से नहीं पहुँचा जा सकता है। अब से कृपा करके याद रखें कि मेरा कोई शिष्य नहीं है, क्योंकि गुरु तो सब को दबाता है। वे किसी का भी गुरु नहीं बनना चाहते थे। लोग उनके पीछे अन्धे और आज्ञाकारी होकर चलें, वह यह नहीं चाहते थे। गुरु सत्ता तथा भारत से पश्चिम पहुँची अनुभवातीत ध्यान पद्धतियाँ उनके लिए अफसोस का विषय थीं। खास

तौर पर वे ऐसे अनुयायियों और समर्थकों की एक भीड़ नहीं चाहते थे जो उन्हें भगवान घोषित कर दे और उनके चारों ओर धर्म खड़ा कर दे तथा गद्दी-पदवी की रचना कर एक अधिसत्ता बना दे।

स्पष्ट है कि जे. कृष्णमूर्ति यह बताना चाहते हैं कि आपकी बौद्धिक क्षमता और सामर्थ्य को गुरुवादी परम्परा, अनुयायी विचारधारा और रूढ़िवादी विचार सीमित और संकुचित करते हैं, इन सभी से व्यक्ति को बचना चाहिए। सच तो स्वयं आपके भीतर है। उससे साक्षात्कार करना अपना कार्य है, उसके लिए प्रत्यन्त आपको करना है, साथ ही सच को ढूँढने के लिए मनुष्य को सभी बन्धनों से स्वतन्त्र होना नितान्त आवश्यक है। आपके बुद्धि की सीमाएं अनन्त और अपरा हैं। ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, धर्म और आध्यात्मिकता के द्वारा इसे सीमित करना कहीं से उचित नहीं है। समय-समय पर आपको अनन्त उदाहरण मिल जायेंगे जहाँ किसी एक मानव ने दिखाया कि आज तक जो मानव दुष्कर और असंभव मान रहा था उसे इसी बुद्धि द्वारा बहुत-ही आसानी से प्राप्त किया जा सकता है, बस जरूरत है तो अपनी बौद्धिक क्षमता और शक्ति को पहचानने की। यदि हम अपने

कृष्णमूर्ति ने बड़ी ही स्पष्टता, मुखरता एवं जीवटता से लगातार दुनिया के अनेकों भागों में भ्रमण किया और लोगों को शिक्षा दी तथा लोगों से शिक्षा भी ग्रहण की। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन एक शिक्षक और छात्र की तरह व्यतीत किया। मनुष्य के सर्वप्रथम मनुष्य होने से ही मुक्ति की शुरुआत होती है, किंतु आज का मानव हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, मुस्लिम, अमेरिकी या अरबी है। उन्होंने कहा था कि संसार विनाश की राह पर आ चुका है और इसका हल तथाकथित धार्मिकों और राजनीतिज्ञों के पास नहीं है।

वे कहते थे कि “गंगा बस उतनी नहीं है, जो ऊपर-ऊपर हमें नजर आती है। गंगा तो पूरी की पूरी नदी है, शुरु से आखिर तक, जहाँ से उद्गम होता है, उस जगह से वहाँ तक, जहाँ यह सागर से एक हो जाती है। सिर्फ सतह पर जो पानी दीख रहा है, वही गंगा है, यह सोचना तो नासमझी होगी। ठीक इसी तरह से हमारे होने में भी कई चीजें शामिल हैं, और हमारी समझ, सीमायें, हमारे अंदाजे, विश्वास, पूजा-पाठ, मंत्र-ये सब के सब तो सतह पर ही हैं। इनकी हमें जाँच-परख करनी होगी, और तब इनसे मुक्त हो जाना होगा—इन सबसे, सिर्फ उन एक या दो विचारों, एक या दो विधि-विधानों से ही नहीं, जिन्हें हम पसंद करते हैं या नहीं।”

किसी चीज को सहज रूप से जैसी वह है, वैसी ही देखना, यह संसार सर्वाधिक कठिन चीजों में से एक है, क्योंकि हमारा दिल व दिमाग बहुत जटिल, जो वस्तु जितनी सरल, सहज और सही जान पड़ती है, उतनी होती नहीं है और हमने सहजता का गुण खो दिया है। धार्मिक मन, प्रेम का विस्फोटक है। यह प्रेम किसी भी अलगाव को नहीं जानता। यह न एक है न अनेक, अपितु यह प्रेम की अवस्था है, जिसमें सारा विभाजन समाप्त हो चुका होता है।

सौन्दर्य की तरह उसे भी शब्दों के द्वारा मापा नहीं जा सकता । इस मौन से ही एक ध्यानपूर्ण मन का समस्त क्रियाकलाप जन्म लेता है। कृष्णमूर्ति ने सत्य को एक 'मार्गरहित भूमि' बताया है और यह भी कहा है कि किसी भी औपचारिक धर्म, सम्प्रदाय एवं दर्शन के माध्यम से इस तक नहीं पहुँचा जा सकता।

जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि शिक्षा का सबसे बड़ा कार्य एक ऐसे समग्र व्यक्तित्व का विकास है जो जीवन की समग्रता को पहचान सके, उसे जान और समझ सके। वे विचार-विमर्श एवं वार्ताओं द्वारा अपने विचारों को लोगों तक पहुँचाते थे, क्योंकि मानव मूल के मूलभूत परिवर्तनों से तथा एक नवीन संस्कृति के सृजन से जो केन्द्रीभूत है, उसके सम्प्रेषण के लिए शिक्षा को कृष्णमूर्ति प्राथमिक महत्त्व देते हैं।

बुद्धि की सीमाओं को इंगित करते हुए वे अनुशासन और ध्यान को बहुत ही महत्वपूर्ण मानते हैं और वे कहते हैं कि अनुशासन आन्तरिक और आध्यत्मिक प्रवृत्ति है, बाह्य अनुशासन मन को मूर्ख बनाता है। यह आप में अनुकूलता और नकल करने की प्रवृत्ति को जन्म देता है, परन्तु यदि आप अपने आन्तरिक शक्ति, चिन्तन और विचारों के माध्यम से स्वयं को अनुशासित रख सकते हो, तो इससे आप में एक उत्कृष्ट बुद्धिमत्ता का विकास और संचार होता है।। जहाँ उत्कृष्ट बुद्धिमत्ता होगी, वहाँ स्वतन्त्रता सदैव विराजमान रहेगी।

यदि आप ऐसा करने में स्वतन्त्र नहीं हैं, तो आप व्यवस्था नहीं कर सकते। व्यवस्था ही अनुशासन है। कृष्णमूर्ति अपने शैक्षिक विचारों के माध्यमों से शिक्षक एवं शिक्षार्थी को यह उत्तरदायित्व सौंपते हैं कि वे एक अच्छे समाज का निर्माण करें, जिसमें सभी लोग सुख, शान्ति, सुरक्षा, सौहार्द एवं बिना किसी हिंसा के प्रसन्नतापूर्वक जीवन जी सकें। हम अपने सशक्त और समग्र कल का निर्माण तभी कर सकते हैं जब आज हम अपने विचारों, सोच और समझ में स्वतंत्र और निडर होंगे।

सच्ची स्वतंत्रता से तात्पर्य किसी नवीन वस्तु की प्राप्ति नहीं है, वरन् अज्ञान की परतों को हटाकर अपने ही स्वरूप की प्राप्ति है। मनुष्य को स्वयं से दूर नहीं जाना है। मनुष्य स्वयं में एक अनन्त सृजनात्मता और रचनात्मकता का स्रोत है, पर दिशा विभ्रम के कारण उसे जीवन पर्यन्त भटकना पड़ता है। जीवन के तल पर प्रविष्ट होकर उस सत्य का साक्षात्कार करने की जगह मानव मन विविध प्रकार की, विविध स्तरीय उपलब्धियों के द्वारा अपने को सन्तुष्ट करने की चेष्टा करता है। यहाँ कृष्णमूर्ति के विचारों में हमें वेदान्त विचारों की स्पष्ट गूँज सुनने को मिलती है— स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि मनुष्य जब माया के पार यानी उसकी चेतना जब देश-काल के अतिक्रमण की सामर्थ्य अपने में विकसित कर लेती है, तब सहज ही उसकी दृष्टि विश्व के अधिष्ठान का साक्षात्कार करती है, पर वेदान्त के अनुसार यही मनुष्य की अन्तिम उपलब्धि नहीं है। अन्य शब्दों में, माया के अतिक्रमण के बाद जब मनुष्य अपने तथा जगत् के अधिष्ठान के रूप में ईश्वर की सत्ता की प्रतीति करता है, तो वह

उसकी यात्रा की इति नहीं है प्रारम्भ ही है : कालान्तर में वह अनुभव करता है कि जो सत्ता उसके बाहर थी और अपने वैभव एवं शक्ति में अपार श्रद्धा एवं उपासना योग्य थी, वही वस्तुतः उसके भीतर भी है और यथार्थ में उसमें और ईश्वर में तात्विक दृष्टि से पूर्ण अभेद है। स्पष्ट है कि शुद्ध एवं उच्चकोटि की आध्यात्मिकता का मूलाधार एकता की यही प्रतीति है, जिसका अनुभव मनुष्य अपनी आत्मा की गहराई से करता है।

कृष्णमूर्ति सृजनात्मक बुद्धि के विकास हेतु बोध की समग्रता पर विशेष बल देते हैं। विश्व जो अनेकानेक समस्याओं एवं दुराग्रहों के दौर से गुजर रहा है, उसे एक सर्वथा नवीन एवं नैतिक मानदण्ड की आवश्यकता है। मनुष्य को आन्तरिक परिवर्तन की आवश्यकता है, विश्व में व्याप्त कुण्ठा, हताशा, संत्रास को सिद्धान्तों एवं आदर्शों के माध्यम से नहीं पकड़ा जा सकता, इसके लिए नवीन नैतिक सिद्धान्त का आविर्भाव अपेक्षित है। यह उचित शिक्षा के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। प्रबुद्ध मस्तिष्क ही समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं अराजकता को अपनी समग्र दृष्टि के माध्यम से समाप्त कर सकता है। क्योंकि सतही तौर पर आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन के बाद भी मनुष्य को रूपान्तरित करने की आवश्यकता का प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहता है। अन्य शब्दों में, तंत्र एवं सामाजिक ढाँचा अगर बदल भी जाए, लेकिन मन में विषमतावादी जीवन मूल्य एवं लिप्साएँ बनी रहें, तो मानव का स्वतंत्र अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। अतः बिना समुचित आत्मबोध के कुछ भी सम्भव नहीं है।

जे. कृष्णमूर्ति ने वर्ष 1979 में प्रकाशित हुई अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मेडिटेशन' में ध्यान के सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने लिखा है कि ध्यान का अर्थ विचार का अन्त हो जाना है तथा एक भिन्न आयाम का प्रकट होना है जो समय से परे है। ध्यानपूर्ण मन शान्त होता है। यह मौन विचार की कल्पना से परे है। यह मौन किसी निस्तब्ध संध्या की नीरवता भी नहीं है। विचार जब अपने सारे अनुभवों, शब्दों और प्रतिभाओं सहित पूर्णतः विदा हो जाता है, तभी इस मौन का जन्म होता है। यह ध्यानपूर्ण मन ही धार्मिक मन है।

7.3 सारांश

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि क्रान्ति एवं विद्रोह से आक्रान्त इस युग में मनुष्य परायेपन के दुःख बोध से पीड़ित है। वह व्यक्ति से, समाज से, स्वयं को जोड़ सकने में सर्वथा अक्षम महसूस कर रहा है। इसी को आज की पदावली में 'एलियेशन' कहते हैं। वस्तुतः जीवन की सुव्यवस्था के लिए जीवन व मानस की समन्वित अभिव्यंजना आवश्यक है। सन्तुलित बौद्धिक आध्यात्मिक प्रगति तभी संभव है, जब व्यक्ति जीवन की सामान्य इच्छाओं से ऊपर उठते हुए, अन्तः की गहराईयों में उतरते हुए, समग्र बोध को प्राप्त करें, क्योंकि वही उसके जीवन के अंधेरे को आलोकित करने की शक्ति रखता है। इसी में उसकी विमुक्ति भी है। आपकी बुद्धि की सीमा अनन्त, अपार और अतुलनीय है तथा बुद्धि की सीमा और परिधि

को आप स्वयं परिभाषित एवं परिष्कृत करते हो। अतः आवश्यकता है, अपने बौद्धिक सीमाओं के ज्ञान का सुमचित एवं समग्र उपयोग कर अपने जीवन को उसके लक्ष्य तक ले जायें, तभी हम मानव होने के सही अर्थों को परिभाषित कर पायेंगे।

7.4 शब्दावली:

परिष्कृत, स्वतंत्रता, आविर्भाव, सृजनात्मकता, प्रतिस्पर्धा, निडरता, बुद्धि की सीमाएं, तात्विक दृष्टि, इन्द्रियातीत, पारलौकिक, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, सशक्त और सार्थक विचार, दार्शनिक, धार्मिक विद्वान, मनोवैज्ञानिक, संस्कार, सम्प्रेषण, बुद्धिमत्ता, धर्म, नैतिकता, आध्यत्मिकता, निष्पक्षता और केन्द्रीभूत।

7.5 प्रश्नावली:

- 5- जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार 'बुद्धि की सीमा' से क्या तात्पर्य है?
- 6- बुद्धि की सीमाएं क्या हैं?
- 7- बुद्धि की सीमाओं को जानना क्यों आवश्यक है?
- 8- बुद्धि की सीमा को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौन से हैं?

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ:

- 6- शर्मा, ए. सी., "प्रेम क्या है? अकेलापन क्या है?", राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2013.
- 7- गुप्ता, मुकेश, "जे. कृष्णमूर्ति: एक जीवनी", राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2013.
- 8- सक्सेना, लक्ष्मी, "समकालीन भारतीय दर्शन", उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2016
- 9- https://en.wikipedia.org/wiki/Jiddu_Krishnamurti
- 10- <https://www.jstor.org/stable/23607349>

खण्ड-4 कृष्णचंद भट्टाचार्य

खण्ड परिचय :

प्रस्तुत खण्ड में समकालीन भारत के महान दार्शनिक कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य के आत्मा या विषयी के दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। यह खण्ड दो इकाइयों में विभाजित है। पहली इकाई में विषयिता या आत्मपरकता के सिद्धांत का निरूपण किया गया है। दूसरी इकाई में आत्मा के स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति कैसे होती है, इसका विश्लेषण किया गया है।

इकाई 8 में विषयिता की अवधारणा का विवेचन किया गया है। इसमें विषयी और विषय की पृथकता और विषयिता के स्तरों—शरीररूप विषयिता, मानसिक विषयिता और आध्यात्मिक विषयिता पर चर्चा की गई है। अन्ततः विषयी के शुद्ध रूप का उद्घाटन किया गया है, जो आत्म अनुभूति से परे जाने की अवस्था है, 'मै' के निषेध की अवस्था है और अनिर्दिष्ट परमसत् का क्षेत्र है।

इकाई 9 में विषयी या आत्मा की उन्मुक्तता या स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति का विवेचन किया है। इसके अन्तर्गत यह बताया गया है कि विषयी शारीरिक आत्मपकता, मानसिक आत्मपरकता और आध्यात्मिक आत्मपरकता के स्तरों से होते हुए अनिश्चित परमसत् के क्षेत्र में प्रवेश करता है और अपने शुद्ध रूप से साक्षात्कार करते हुए विषयीरूप स्वतंत्रता की स्थिति प्राप्त कर लेता है।

.....000.....

इकाई 8 विषयिता का सिद्धांत

परिचय

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 विषयिता का सिद्धांत

8.3 सारांश

8.4 शब्दावली

8.5 प्रश्नावली

8.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

.....000.....

8.0 उद्देश्य—

- के०सी० भट्टाचार्य के दर्शन में विषयिता या आत्मपरकता के दर्शन को समझना ।
- आत्मा या विषयी के स्वरूप का निरूपण करना ।

8.1 प्रस्तावना— कृष्ण चन्द्र भट्टाचार्य ने अपने दर्शन में विषयी अथवा आत्म तथा विषय का गहन एवं गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि विषयी या आत्मा एक ऐसी सत्ता है, जिसकी अनुभूति के आधार के रूप में कोई अर्थबोध नहीं होता, लेकिन इसका आशय यह नहीं है कि आत्मा कोई अर्थहीन सत्ता है। आत्मा ऐसी सत्ता है जो कथनीय है। उसमें तात्पर्यपूर्ण कथनीयता है, जिससे उसका अन्तर्विषय

अविश्लेष्य होते हुए भी समझ लिया जाता है। आत्मा अनुभूति का विषय है। विषयिता आत्म से विषय की भिन्नता एवं मुक्तता की अनुभूति है। विषयिता विषयी के स्वतंत्रता की अनुभूति है। प्रस्तुत इकाई में विषयिता के इन्हीं विशेषताओं का सम्यक् निरूपण प्रस्तुत है।

8.2 विषयिता का सिद्धांत— कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य का कहना है कि विषयिता या आत्मपरकता शब्द का प्रयोग कई तरह से होता है, इसलिए इसके अर्थ का निरूपण दुष्कर हो जाता है। प्रो० भट्टाचार्य कहते हैं कि विषयिता के स्वरूप के स्पष्ट करने के क्रम में वे अभावात्मक विधि का सहारा लेते हैं। इसमें वे विषयिता को विषयनिष्ठता से अलगाव पर चर्चा करते हैं। इसे सम्यक् रूप से समझने के लिए सर्वप्रथम विषय और विषयी के मूलभूत अन्तर को जानना होगा, जो अधोलिखित हैं:

- विषय में अनिवार्यतः अर्थबोध होता है, जबकि विषयी में इस तरह के अर्थनिर्देश की आवश्यकता नहीं रहती है। विषयी की चेतना सदैव अर्थ—चेतना से भिन्न होती है। अर्थ चेतना में द्वैत का भाव रहता है, वहीं विषयी में स्वचेतना है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विषयी अर्थहीन है, विषयी में कथनीयता है, जिससे उसका अन्तर्विषय एक विशेष अर्थ में समझा जाता है। इस प्रकार विषय में अर्थबोध (Meanable) है जबकि विषयी में कथनीयता (Significant speakable) है।
- विषय 'यह' शब्द से सूचित होता है और सभी लोग यह शब्द से उसी विषय को सूचित करते हैं। उदाहरण के लिए मोहन पुस्तक के रूप में एक विशेष वस्तु की ओर संकेत कर रहा है। इसी प्रकार सोहन भी 'यह पुस्तक है' कहकर पुस्तक के रूप में उसी विशेष वस्तु को सूचित कर रहा है। यहाँ 'यह' शब्द का व्यवहार इस प्रकार किया जा रहा है कि दोनों व्यक्ति पुस्तक रूप एक विशेष वस्तु को 'यह' कहकर सूचित कर सकते हैं। जबकि विषयी के लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग होता है जो प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने लिए निर्देश करता है। जैसे— यदि मोहन

‘मैं’ शब्द का प्रयोग करेगा तो वह स्वयं को निर्देश करके करेगा, उसी प्रकार सोहन भी मैं का निर्देश मोहन के लिए न करके अपने लिए करेगा। ‘वह’ और ‘तुम’ शब्द भी विषयी के लिए प्रयुक्त होते हैं। किन्तु कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य ने इसके लिए विशिष्ट शब्द मैं का प्रयोग किया है। ‘मैं’ को ‘वह’ और ‘तुम’ से अधिक मौलिक बताया है, क्योंकि ‘वह’ और ‘तुम’ भी अपने आपको ‘मैं’ से संबोधित कर सकते हैं। विषय ग्रहण सर्वनिष्ठ होता है, जबकि विषयी ग्रहण आत्मनिष्ठ। प्रो० भट्टाचार्य मैं को विषयी का प्रतीक बना देते हैं। वे उसे ‘तुम’ और ‘वह’ से अधिक महत्व देते हैं, क्योंकि वह उनसे अधिक विशिष्ट है। इसमें वह व्यापकता नहीं है जो विषय में है।

- ध्यातव्य है कि आत्मा या विषयी के लिए विषय शब्द का प्रयोग हो सकता है, लेकिन विषय के लिए विषयी का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। जैसे—यदि मोहन पुस्तक की ओर इशारा करके कहे कि “यह मैं हूँ” तो यह असत्य कथन हो जायेगा, जबकि यदि वह कहता है कि “मैं यह हूँ” जैसे— मैं अध्यापक हूँ, तो यह असत्य नहीं कहा जायेगा। इस प्रकार सामान्य भाषीय प्रयोग में विषयी को विषयरूप बना दिया जाता है। किन्तु इस प्रकार की विषयरूपता, विषयी का लक्षण नहीं है। वास्तव में विषयिता या आत्मपरकता के लिए विषय का निषेध परम आवश्यक है।
- यह शब्द से प्रदर्शित वस्तु व्यष्टि भी हो सकती है और सामान्य भी। जबकि अहं से प्रदर्शित विषयी सदैव एक व्यक्ति या सामान्य को संदर्भित नहीं करता। इसका उपयोग न केवल एक चीज को इंगित करने के लिए किया जाता है, बल्कि ऐसी चीज को इंगित करने के लिए भी किया जाता है, जिसे एक समय में केवल एक वक्ता द्वारा इंगित किया जा सकता है। हालाँकि अलग—अलग वक्ता स्वयं को संदर्भित करने के लिए अहं का उपयोग कर सकता है। और प्रत्येक को श्रोता द्वारा एक विशिष्ट व्यक्ति समझा जा सकता है।

- प्रो० भट्टाचार्य कहते हैं कि विषय का निराकरण हो सकता है, उस पर संदेह किया जा सकता है, लेकिन विषयी की सत्ता का निराकरण किसी भी स्थिति में संभव नहीं है। किसी तथ्य का निराकरण अन्य तथ्यों के आधार पर हो जाता है, लेकिन विषयी स्वयं निराकरण को संभव बनाने वाला आधारभूत तत्व है, उसका निराकरण कैसे संभव हो सकता है? तो फिर क्या विषयी अचिंत्य है? प्रो० भट्टाचार्य कहते हैं कि वह अचिंत्य भी नहीं है, बल्कि एक ऐसी सत्ता है, जिसका अन्तर्विषय अविश्लेष्य और अपूर्व है। जो सभी अर्थपूर्ण सत्ताओं से भिन्न होते हुए भी समझी जाती है और बिना प्रश्न के विश्वास किया जाता है।

ध्यातव्य है कि विषयिता के तीन स्तर हैं—

1- **शरीर रूप विषयिता**— उपर्युक्त विश्लेषण में यह स्पष्ट हो गया कि विषयिता, विषयी की विषय से भिन्नता का ज्ञान है। परन्तु यह ज्ञान हुआ कैसे? यह ज्ञान इसलिए संभव हो पाया क्योंकि हमें हमारे शरीर का ज्ञान है। जैसे— मैं अपने सामने मेज पर रखी एक पुस्तक देख रहा हूँ। इस पुस्तक से मेरा संपर्क मेरी इन्द्रियों, यथा—आंख और त्वचा द्वारा होता है। यह संपर्क का माध्यम ही हमें इस भिन्नता का भान भी कराता है। इस प्रकार विषयी की वस्तु—जगत से भिन्नता शरीर पर आधारित हो गई। इसीलिए यह शरीररूप विषयिता है। शारीरिक विषयिता के तीन स्तर हैं— दृश्य शरीर, अनुभूत शरीर तथा अनुपस्थित शरीर। वे कहते हैं कि दृश्य शरीर वह शरीर है जो बाहर से दिखाई पड़ता है, अपने को भी और दूसरों को भी, अनुभूत शरीर स्वयं को ही अनुभूत होता है, वहीं अनुपस्थित शरीर में अभाव का ज्ञान होता है। शारीरिक आत्मपरकता के प्रथम स्तर में पहले आत्मा अपने आप को दृश्य शरीर से एकरूप कर लेता है। वहीं अगले स्तर में अनुभूत शरीर या शरीर की आन्तरिक भावना से एकाकार कर लेता है। अनुपस्थित शरीर वह तीसरा आयाम है, जिसमें हम शारीरिक सीमाओं से ऊपर उठते हैं। इसमें हम एक शरीर या वस्तु का अभाव महसूस करते हैं। इस अनुपस्थिति या

अभाव का ज्ञान दो तरह से हो सकता है—पहला, काल्पनिक प्रत्यक्ष के द्वारा अनुपस्थिति का ज्ञान, दूसरा, सचेतन अप्रत्यक्ष के द्वारा अनुपस्थिति का ज्ञान।

पहले की व्याख्या के लिए प्रो० भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक “स्टडीज इन फिलॉसफी” में एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो यहां उल्लेखनीय है। मान लिया कि एक स्थान पर एक वृक्ष था। कुछ समय के बाद देखते हैं कि उस स्थान पर भिन्न दृश्य है। हम यह जान जाते हैं कि किसी वस्तु की अनुपस्थिति है, लेकिन किसकी है, यह नहीं जान पाते। एक दूसरा उदाहरण इस तरह दिया जा सकता है कि एक व्यक्ति अपने अध्ययन कक्ष में किसी पुस्तक को खोज रहा है, लेकिन वह पुस्तक नहीं मिलती। यहां उसे ज्ञान है कि पुस्तक अनुपस्थित है। यहां द्रष्टव्य है कि दृश्य शरीर और अनुभूत शरीर में अन्तर पूर्ण न होकर आंशिक है। क्योंकि काल्पनिक प्रत्यक्ष के द्वारा जो अनुपस्थिति का भान होता है, वह अनुभूत शरीर के ज्ञान के स्तर का ही ज्ञान है। जैसे—वृक्ष के उदाहरण में कुछ के अनुपस्थित होने का ज्ञान है। यहां कुछ शब्द से आशय वृक्ष से नहीं है, क्योंकि वृक्ष का ज्ञान ही नहीं है, यह कुछ कल्पना में अनुभूत हो रहा है।

- 2- **मानसिक विषयिता**— इस स्तर पर शरीर का निषेध हो जाता है और आत्मपरकता को शरीर से निषेध का ज्ञान हो जाता है। जब भी किसी भी वस्तु का हम अनुभव करते हैं तो उस वस्तु या विषय के साथ उसके अनुभव करने की भी समझ होती है। यह समझ एक मानसिक तथ्य है। विषयी वस्तु से संबंधित प्रतिमा या विचार अर्थात् मानसिक तथ्यों से एकरूप हो जाता है। परन्तु यह भी अंतिम स्तर नहीं है, क्योंकि मानसिक तथ्य किसी न किसी रूप में वस्तु से संबंधित होते हैं। विचार या भाव के स्तर पर ‘अन्तर्वस्तु’ और ‘चेतना’ का द्वैत बना रहता है। प्रो० भट्टाचार्य के अनुसार आत्मा की स्वतंत्र चेतना का तात्पर्य ‘अन्तर्वस्तु’ और ‘चेतना’ के द्वैत से पूर्ण मुक्ति है। इस तरह वे मानसिक विषयिता को नकारकर आध्यात्मिक विषयिता को स्वीकार करते हैं।

3- **आध्यात्मिक विषयिता**—इस स्तर में मानसिक तथ्यों का भी निषेध हो जाता है। यह शुद्ध विषयिता में प्रवेश का द्वार है। आध्यात्मिक विषयिता को तीन अर्थों में समझने का प्रयास किया जाता है, पहला, विषयिता को भावना के रूप में, द्वितीय, विषयिता को मैं या अन्तर्निरीक्षण के रूप में एवं तीसरा, विषयिता को अन्तर्निरीक्षण से परे स्वतंत्र आत्म के रूप में। तीनों अर्थों का संक्षिप्त विवेचन अधोलिखित है—

भावनात्मक अनुभूति—यहां अर्थ का कोई महत्व नहीं रह जाता। मानसिक स्तर तक अर्थ से सम्पर्क बना रहता है। यहां विषयी वैचारिकता से मुक्त होता है और अपने प्राकृतिक रूप में अवस्थित होता है। इसे भावना की भावनात्मक अनुभूति भी कहा जाता है।

अन्तर्दृष्टि— यह विषयिता की स्पष्टतम अनुभूति प्रदान करती है। यह मैं चेतना की अनुभूति है। प्रो० भट्टाचार्य कहते हैं कि आत्म को व्यक्त करने का सबसे उपयुक्त प्रतीक 'मैं' ही है। मैं विशिष्ट है। वहीं वह और तुम शब्द भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए वह शब्द का प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिए कई लोग कर करते हैं। वहीं तुम शब्द का जब हम प्रयोग करते हैं तो सामने वाले व्यक्ति के शरीर पर ही केन्द्रित होते हैं। जबकि मैं एकदम अलग है। उससे आत्मचेतना का ज्ञान होता है। मैं की चेतना उपभोगी चेतना है। यह समस्त प्रकार की विषयता एवं अर्थबोध से मुक्त होने की स्थिति है। ध्यातव्य है कि यह भी विषयिता की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं है, क्योंकि अन्य लोगों को भी मैं का बोध होता ही है। ऐसी व्यापकता विषयिता या आत्मपरकता के प्रतिकूल है, क्योंकि आत्मरकता को नितान्त विशिष्ट होना चाहिए।

अन्तर्दृष्टि से परे— यह शुद्ध विषयिता है। इस स्तर में मैं चेतना का निषेध हो जाता है। यह स्थिति वर्णन एवं रूपांकन से परे है। इसका कोई स्वरूप नहीं

है। यह पूर्णतया अनिश्चित निरपेक्ष सत् का क्षेत्र है तथा इसी को स्वतंत्र रूप विषयी कहा जा सकता है जो विषयिता के विकास का परम लक्ष्य है।

8.3 सारांश— के० सी० भट्टाचार्य के अनुसार विषयिता विषय और विषयी से भिन्नता की एक समझ है। विषयिता अर्थ निरपेक्ष है। विषयिता विषयीरूप में जीना है, विषयपरकता नहीं है। विषयिता को तीन स्तरों में विभाजित किया गया है— शारीरिक स्तर, मानसिक स्तर और आध्यात्मिक स्तर। शारीरिक स्तर में विषयी अपने आप को शरीर से एकरूप कर लेता है। मानसिक स्तर में विषयी मानसिक तथ्यों से एकरूप होता है। इसके अंतर्गत प्रतिमा और विचार आते हैं। आध्यात्मिकता के स्तर में विषयिता स्वयं को अर्थ संदर्भ से पूर्णतया मुक्त कर लेती है। इसके तीन उप स्तर हैं। भावनात्मक अनुभूति, अन्तर्दृष्टि और अन्तर्दृष्टि से परे का स्तर। भावनात्मक स्तर में विषयिता विचार की हर संभावना से ऊपर उठ जाती है। अन्तर्दृष्टि के अंतर्गत विषयिता की स्पष्ट अनुभूति होती है। यह समझ बन जाती है कि विषयिता को व्यक्त नहीं किया जा सकता। अंतिम स्तर में मैं की चेतना का भी निषेध हो जाता है। यह आत्म अनुभूति से परे की अवस्था है, यह पूर्णतया अनिर्दिष्ट परमसत् का क्षेत्र है।

8.4 शब्दावली— विषय, विषयी, विषयिता

8.5 प्रश्नावली—

- 1- के० सी० भट्टाचार्य के विषयिता के सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
- 2- के० सी० भट्टाचार्य के दर्शन में विषयिता के सभी स्तरों की समीक्षात्मक व्याख्या कीजिए।
- 3- के० सी० भट्टाचार्य के दर्शन में आत्मा की प्रकृति का निरूपण कीजिए।

8.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ —

- 1- टाक, ओमप्रकाश, *आधुनिक भारतीय चिंतक*, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2008 ।
- 2- लाल, बसंत कुमार, *समकालीन भारतीय दर्शन*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006 ।
- 3- सक्सेना, लक्ष्मी (सं०), *समकालीन भारतीय दर्शन*, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2005 ।
- 4- सिन्हा, रमेश चन्द्र एवं विजयश्री, *समकालीन भारतीय चिंतक*, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2013 ।
- 5- भट्टाचार्य, के०सी०, *द सब्जेक्ट ऐज फ्रीडम*, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ फिलासफी, अमलनेर, 1930 ।

इकाई 9

स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति

9.3 सारांश

9.4 शब्दावली

9.5 प्रश्नावली

9.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

.....000.....

9.0 उद्देश्य—

- के०सी० भट्टाचार्य के दर्शन में आत्मा या विषयी की उन्मुक्तता या स्वतंत्रता की अनुभूति के क्रमिक स्तरों को समझना।
- के०सी० भट्टाचार्य के दर्शन में आत्म के यथार्थ स्वरूप को समझना।

9.1 प्रस्तावना— के०सी० भट्टाचार्य ने अपने दर्शन में आत्मपरकता का गहन एवं गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। प्रो० भट्टाचार्य का मानना है कि आत्मपरकता की अनुभूति से तात्पर्य है, विषयी या आत्मा की यथार्थ अनुभूति। यहाँ यथार्थ अनुभूति का आशय है, आत्म के स्वतंत्रता की अनुभूति, उन्मुक्तता की अनुभूति। ध्यातव्य है कि स्वतंत्रता आत्मा का विशेषण नहीं, बल्कि उसका अन्तस्तम तत्व है। प्रस्तुत इकाई में स्वतंत्ररूप आत्म के साक्षात्कार करने की क्रमिक पद्धति का विवेचन किया गया है।

9.2 स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति— के०सी० भट्टाचार्य के अनुसार आत्मपरकता की अनुभूति का अर्थ आत्म के अपने वास्तविक आत्म—रूप की अनुभूति अपनी उन्मुक्तता की अनुभूति है। यह अनुभूति विभिन्न स्तरों से होती हुई अग्रसर होती है। इन स्तरों को क्रमिक कहा गया है, क्योंकि एक स्तर के निषेध के आधार पर आत्मपरकता दूसरे स्तर तक पहुँचती है। यह क्रमिक प्रक्रिया तब तक चलती है, जब तक निषेध योग्य कोई रूप बचा नहीं रह जाता।

साधारण मनुष्य एक विशिष्ट वातावरण में वस्तुओं से घिर कर जीता है। यह उसके आत्मरूप पर एक प्रकार का घेरा है। क्योंकि उसी सीमा के अन्तर्गत ही वह क्रियाशील हो पाता है। वैसे इस क्षेत्र में भी उसे अपनी उन्मुक्तता का भान रहता है। किन्तु वह उन्मुक्तता उस घेरे से सीमित रहती है। प्रो० भट्टाचार्य ने दो प्रकार की स्वतंत्रता का उल्लेख किया— संकल्पनात्मक स्वतंत्रता और तात्विक स्वतंत्रता। अनुभूति की प्रक्रिया संकल्पनात्मक स्वतंत्रता के स्तर से तात्विक स्वतंत्रता तक के विकास की क्रमिक प्रक्रिया है।

इस क्रमिक विकास की प्रक्रिया के कई स्तर हैं, जिनका विवरण निम्नवत् है:—

- 1- प्रथम स्तर वस्तुनिष्ठता के निषेध का स्तर है। यह आत्मा की स्वतंत्रता पर घेरा डाल कर बैठा रहता है। इसी कारण से आत्मा, आत्मरूपता की ओर केन्द्रित नहीं हो पाता। यह निषेध शरीर एवं शारीरिक वृत्ति के स्वीकार करने पर आधारित है। अन्य वस्तुओं की अपेक्षा शरीर आत्मा के अधिक निकट होता है। इस निकटता के कारण वह भी विषयिता या आत्मपरकता का अंग बन जाता है। यह स्तर **शारीरिक आत्मपरकता** का स्तर कहा जाता है। प्रो० भट्टाचार्य दृश्य शरीर, अनुभूत शरीर तथा अनुपस्थित शरीर में एक भेद करते हैं। वे कहते हैं कि दृश्य शरीर वह शरीर है जो बाहर से दिखाई पड़ता है, अपने को भी और दूसरों को भी, अनुभूत शरीर स्वयं को ही अनुभूत होता है, वहीं अनुपस्थित शरीर में अभाव

का ज्ञान होता है। शारीरिक आत्मपरकता के प्रथम स्तर में पहले आत्मा अपने आप को दृश्य शरीर से एकरूप कर लेता है। वहीं अगले स्तर में अनुभूत शरीर या शरीर की आन्तरिक भावना से एकाकार कर लेता है। अनुपस्थित शरीर वह तीसरा आयाम है, जिसमें हम शारीरिक सीमाओं से ऊपर उठते हैं। इसमें हम एक शरीर या वस्तु का अभाव महसूस करते हैं। इस अनुपस्थिति या अभाव का ज्ञान दो तरह से हो सकता है—

काल्पनिक प्रत्यक्ष के द्वारा अनुपस्थिति का ज्ञान

सचेतन अप्रत्यक्ष के द्वारा अनुपस्थिति का ज्ञान

पहले की व्याख्या के लिए प्रो० भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक “स्टडीज इन फिलॉसफी” में एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो यहां उल्लेखनीय है। मान लिया कि एक स्थान पर एक वृक्ष था। कुछ समय के बाद देखते हैं कि उस स्थान पर भिन्न दृश्य है। हम यह जान जाते हैं कि किसी वस्तु की अनुपस्थिति है, लेकिन किसकी है, यह नहीं जान पाते। एक दूसरा उदाहरण इस तरह दिया जा सकता है कि एक व्यक्ति अपने अध्ययन कक्ष में किसी पुस्तक को खोज रहा है, लेकिन वह पुस्तक नहीं मिलती। यहां उसे ज्ञान है कि पुस्तक अनुपस्थित है। यहां द्रष्टव्य है कि दृश्य शरीर और अनुभूत शरीर में अन्तर पूर्ण न होकर आंशिक है। क्योंकि काल्पनिक प्रत्यक्ष के द्वारा जो अनुपस्थिति का भान होता है, वह अनुभूत शरीर के ज्ञान के स्तर का ही ज्ञान है। जैसे—वृक्ष के उदाहरण में कुछ के अनुपस्थित होने का ज्ञान है। यहां कुछ शब्द से आशय वृक्ष से नहीं है, क्योंकि वृक्ष का ज्ञान ही नहीं है, यह कुछ कल्पना में अनुभूत हो रहा है।

2- दूसरा स्तर शारीरिक आत्मपरकता का निषेध है। इसमें आत्मपरकता को शरीर से भिन्नता की समझ हो जाती है। यह **मानसिक आत्मपरकता** का स्तर है। मानसिक तथ्यों का है। जब भी किसी भी वस्तु का हम अनुभव करते हैं तो उस

वस्तु या विषय के साथ उसके अनुभव करने की भी समझ होती है। यह समझ एक मानसिक तथ्य है। विषयी वस्तु से संबंधित प्रतिमा या विचार अर्थात् मानसिक तथ्यों से एकरूप हो जाता है। परन्तु यह भी अंतिम स्तर नहीं है, क्योंकि मानसिक तथ्य किसी न किसी रूप में वस्तु से संबंधित होते हैं। विचार या भाव के स्तर पर 'अन्तर्वस्तु' और 'चेतना' का द्वैत बना रहता है। प्रो० भट्टाचार्य के अनुसार आत्मा की स्वतंत्र चेतना का तात्पर्य 'अन्तर्वस्तु' और 'चेतना' के द्वैत से पूर्ण मुक्ति है। इस तरह वे मानसिक विषयिता को नकारकर आध्यात्मिक विषयिता को स्वीकार करते हैं।

3- धीरे-धीरे आत्मा को यह अनुभूति हो जाती है कि मानसिक तथ्य उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। क्योंकि प्रतिमा विषय से संबंधित होती है और विचार चेतना एवं चेतना के विषय के द्वैत से ऊपर नहीं उठ पाता। आत्मपरकता इस प्रकार के द्वैत से परे है। इस मानसिक अवस्था का निषेध करके आगे का स्तर **आध्यात्मिक स्तर** है। इसकी पहली कड़ी भावनात्मक अनुभूति है। इसमें आत्मपरकता का भावना से तादात्म्य स्थापित किया जाता है। यहां आत्मा अर्थ से निरपेक्ष हो जाता है। वैचारिकता के घेरे से बाहर निकल जाता है और भावनात्मकता के स्तर में पहुंच जाता है। परन्तु शुद्ध भावनात्मकता के स्तर के लिए भावनात्मकता की चेतना से मुक्त होना होगा, जिसे भावना की भावनात्मक अनुभूति कहते हैं। इसमें आत्मा वास्तविक विषयिता के स्तर में प्रवेश करता है।

इस भावनात्मक स्तर का निषेध आत्मा को अगले स्तर पर ले जाता है जिसे **अन्तर्दृष्टि** कहते हैं। ध्यातव्य है कि यह मनोवैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षण नहीं है। यह आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि है, जो संज्ञानात्मक है। इस स्तर पर आत्मा वस्तुगत बोध से स्वयं को पूर्णतः मुक्त कर लेता है। यहां अर्थबोध समाप्त हो जाता है। अर्थबोध समाप्त होने का अर्थ है कि अन्तर्वस्तु और चेतना का द्वैत समाप्त हो जाता है। यहां 'मैं' का बोध होता है। इस बोध को मैं की उपभोगी चेतना (Enjoying

Consciousness) कहते हैं, क्योंकि यहां आत्मा भोगता है। यहां ज्ञान-ज्ञाता का द्वैत समाप्त हो जाता है।

आगे के स्तर में इस 'मैं' का भी निषेध हो जाता है। यह **अन्तर्दृष्टि के परे** जाने की अवस्था है। इस प्रकार आत्मा के उन्मुक्त होने का भान अन्तर्दृष्टि का स्तर है, परन्तु इस अनुभूति के स्तर को पार कर जाना ही वास्तविक अवस्था है। इस चरम स्थिति का कोई निर्धारित स्वरूप नहीं है। अब इस स्तर का निषेध भी नहीं हो सकता। यह अनिश्चितता का क्षेत्र है। इसे आत्म की तरह भोगा भी नहीं जा सकता। यह पूर्ण स्वतंत्रता की स्थिति है। यही आत्मा का चरम लक्ष्य है। यही विषयीरूप स्वतंत्रता (Subject as Freedom) है।

उपर्युक्त विवरण से सपष्ट है कि सर्वप्रथम शरीर में आत्मगत भावना होती है। यहाँ 'मैं' शरीर से तादात्म्य भाव रखता है। उसी को 'मैं' जानकर शरीर से भिन्न वस्तुओं के प्रति वस्तुगत भावना रखता है। दूसरे स्तर में 'मैं' अपना तादात्म्य मन से कर लेता है और शरीर से लेकर अन्य वस्तुओं के प्रति वस्तुगत दृष्टिकोण रखता है। तीसरे स्तर पर 'मैं' शरीर और मन दोनों से ऊपर उठ जाता है। लेकिन अन्ततः इस 'मैं' का भी निरसन हो जाता है। प्रो० भट्टाचार्य कहते हैं कि आत्मा की उन्मुक्तता की क्रमिक अनुभूति 'मैं' से ऊपर उठने, अन्तर्दृष्टि से परे की अवस्था में अपने चरम पर पहुँचती है। परन्तु यह एक ऐसी अवस्था है, जहाँ कोई निश्चितता नहीं है। यहाँ निषेध का भी कोई स्थान नहीं बचता। यह अनिश्चित क्षेत्र, निरपेक्ष सत् का क्षेत्र है। यही स्वतंत्रता रूपी आत्म है।

9.3 सारांश— के० सी० भट्टाचार्य के अनुसार विषयी या आत्मा के वास्तविक रूप का परिचय आत्मा के स्वतंत्रता की अनुभूति है। यह अनुभूति क्रम से, विभिन्न स्तरों से होते हुए अग्रसर होती है। यह प्रक्रिया निषेध के माध्यम से आगे बढ़ती है और तब तक चलती रहती है, जब तक कि निषेध के योग्य कुछ शेष रह जाता है। प्रथम स्तर के निषेध में वस्तुनिष्ठता का निषेध होता है। यह शरीर का स्तर है। शारीरिक स्तर में

विषयी या आत्मा अपने आप को शरीर से एकरूप कर लेता है। दूसरा स्तर मानसिक स्तर है। इसमें विषयी मानसिक तथ्यों से एकरूप होता है। इसके अंतर्गत प्रतिमा और विचार आते हैं। तीसरे स्तर अर्थात् अध्यात्मिकता के स्तर में विषयिता स्वयं को अर्थ संदर्भ से पूर्णतया मुक्त कर लेती है। इसके तीन उप-स्तर हैं। भावनात्मक अनुभूति, अन्तर्दृष्टि और अन्तर्दृष्टि से परे का स्तर। भावनात्मक स्तर में विषयिता विचार की हर संभावना से ऊपर उठ जाती है। अन्तर्दृष्टि के अंतर्गत विषयिता की स्पष्ट अनुभूति होती है। यह समझ बन जाती है कि विषयिता को व्यक्त नहीं किया जा सकता। अंतिम स्तर में मैं की चेतना का भी निषेध हो जाता है। यह आत्म अनुभूति से परे की अवस्था है, यह पूर्णतया अनिर्दिष्ट परमसत् का क्षेत्र है। पूर्ण स्वतंत्रता की स्थिति है, उन्मुक्तता की स्थिति है। यही विषयीरूप स्वतंत्रता है।

9.4 शब्दावली— विषय, विषयी, विषयिता, आत्मपरकता, विषयीरूप स्वतंत्रता, उन्मुक्तता

9.5 प्रश्नावली—

- 1- के० सी० भट्टाचार्य के अनुसार आत्मा के स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति पर प्रकाश डालिए।
- 2- के० सी० भट्टाचार्य के दर्शन में विषयी रूप स्वतंत्रता की अवधारणा का विवेचन कीजिए।
- 3- के० सी० भट्टाचार्य के दर्शन में आत्मपरकता की अनुभूति के विभिन्न स्तरों की व्याख्या कीजिए।

9.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ—

- 1- टाक, ओमप्रकाश, *आधुनिक भारतीय चिंतक*, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2008

- 2- लाल, बसंत कुमार, *समकालीन भारतीय दर्शन*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006
- 3- सक्सेना, लक्ष्मी (सं०), *समकालीन भारतीय दर्शन*, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2005
- 4- भट्टाचार्य, के०सी०, *द सब्जेक्ट ऐज फ्रीडम*, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ फिलॉसफी, अमलनेर, 1930

.....000.....

खण्ड—5 मानवेन्द्र नाथ राय

खण्ड –परिचय

एम. एन. राय के 'दर्शन के कार्य' एवं 'नव मानवतावाद' सिद्धान्त की प्रासंगिकता

मानवेन्द्रनाथ राय ने समाज, राजनीति और मानवीय स्वतंत्रता के मुद्दों पर अपने विचार बहुत ही बेबाकी से रखे। उनके द्वारा प्रस्तुत की गई 'नवमानववाद' की सोच आज भी मानविकी और सामाजिक विचार में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, जो समाजवाद, मानववाद और व्यक्तिवाद के विभिन्न पहलुओं को समाहित करती है।

इकाई—10 दर्शन का कार्य: एम.एन. राय समकालीन भारतीय दर्शन में एक उत्कृष्ट दार्शनिक एवं रहस्यवादी पुरुष के रूपमें ख्याति प्राप्त है। उनका दर्शन समाजवाद, मानवतावाद और राष्ट्रवाद के मध्य में स्थित है। उन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक समरसता के माध्यम से समाज में समानता, बन्धुत्व और न्यायको स्थापित करने की कोशिश की। उनकी दर्शनशास्त्रीय योजना नवमानवतावाद, उत्थानवाद और स्वतंत्रतावाद के विचारों का संयोजन करती है, जिससे उनका दर्शन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। कोई भी दर्शन अपने देश, काल, परिस्थिति और सामाजिक संरचना की देन होती है। जब समाज गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हो, नागरिकों को जीवन के मूलभूत अधिकार तो दूर की बात मूलभूत जरूरतों को भी पूरा करने की न तो सहूलियत हो न ही इजाजत, चारों ओर रूढ़िवादियों और अन्धविश्वासों का बोल-बाला हो उस समय में वैज्ञानिकता और मानव मूल्यों की बात करना अपने में एक दुरूह कार्य है। राय का दर्शन बौद्धिकता एवं प्रयोग को प्रमुखता प्रदान करता है। उनका दर्शन परम्परागत अन्धविश्वासों से ऊपर उठकर शुद्ध बौद्धिक एवं वैज्ञानिकता को प्रश्रय प्रदान करता है। उनका दर्शन मनुष्य को कोरा भाग्यवादी और अकर्मठ होने से रोकता है। मानव स्वयं का भाग्य विधाता और निर्माण कर्ता है। आज का विश्व, मानव के कार्यों का लेखा-जोखा है। इसलिए मानवको अपने पौरुष में विश्वास करते हुए कर्म पथ पर सतत् अग्रसर रहना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में इसे 'अनासक्ति कर्मयोग' तो महान समीक्षावादी दार्शनिक इमैनुअल काण्ट के शब्दोंमें 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य' कहेंगे।

इकाई—11 नवमानवतावाद: यद्यपि एम.एन. राय ने 'नवमानवतावाद' के सिद्धान्त को विकसित नहीं किया, लेकिन उन्होंने इस सिद्धान्त को उसके सही मुकाम पर पहुँचाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। नवमानवतावाद उनका स्वयं का मौलिक सिद्धान्त है जो मानव समाज

के निर्माण और प्रगति का समर्थन करता है अपितु उसके केन्द्र में मानव ही रहता है। इस सिद्धांत के अनुसार, समाज में समानता, समरसता और न्याय की प्राप्ति होनी चाहिए। राय ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक समरसता को ध्यान में रखते हुए, नवमानवतावाद के सिद्धांत को स्थापित किया, जो व्यापक सामाजिक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण है। इस प्रकार, एम.एन. राय का 'नवमानवतावाद' समाजवादी और मानववादी विचारधारा के संगठन के लिए एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और राजनीतिक विचार है। राय कहते हैं कि पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों ही अपूर्ण एवं अपर्याप्त सिद्धान्त हैं। उन्होंने पहले ही हिटलर के हार की और रूस एवं अमेरिका के दो ध्रुवों के रूप में उभरने की भविष्यवाणी कर दी थी। उनका मानना था कि विश्व में सुख, शान्ति, समृद्धि और विकास के लिए इन दो महाशक्तियों के संघर्ष को रोकना परमावश्यक है। इसका उत्तर न तो पूँजीवाद के पास, न ही साम्यवाद के पास है। इसके लिए इन दोनों विचार धाराओं का अतिक्रमण करके एक ऐसी विचारधारा, राजनैतिक संरचना तथा सामाजिक परिस्थिति के निर्माण की आवश्यकता थी जिसमें सबकी स्वतंत्रता और समानता सुरक्षित रह सके, जिसमें सबके विकास का उन्मुक्त अवसर हो। राय का नवमानववाद इसी का परिणाम है।

.....000.....

इकाई-10

दर्शन का कार्य

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 दर्शन का कार्य

12.3 सारांश

12.4 शब्दावली

12.5 प्रश्नावली

12.6 सन्दर्भग्रन्थ

.....000.....

12.0 उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको मानवेन्द्रनाथ राय के 'दर्शन का कार्य' के सन्दर्भ में उनके विचारों से अवगत कराना है। एम.एन. राय के दर्शन का विकास कैसे और किन परिस्थितियों में हुआ, वे कौन से कारक एवं तथ्य हैं जो उनके दर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन सभी बातों पर गहनता से विचार किया गया है। इस इकाई के पूर्णहोने पर आप निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो पायेंगे—

- एम. एन. राय के जीवन का सारगर्भित परिचित प्राप्त कर पायेंगे।
- एम.एन. राय के अनुसार दर्शन के कार्य को जान एवं समझ पायेंगे।
- उनका दर्शन किस प्रकार मानव जीवन को नई दिशा प्रदान करता है, यह जान पायेंगे।
- समकालीन समय में एम.एन. राय के दर्शन की प्रासंगिकता को समझ पायेंगे।

12.1 प्रस्तावना:

19 वीं सदी के महान चिन्तकों, स्वतंत्रता सेनानी, विश्वप्रसिद्ध राजनीतिक सिद्धान्तकार, समाजसेवी एवं उत्कृष्ट कोटि के दार्शनिक मानवेन्द्र नाथ राय का जन्म 6 फरवरी 1886 को पश्चिम बंगाल के चौबीस परगना जिले में हुआ। इनके बचपन का नाम नरेन्द्र नाथ भट्टाचार्य था। इनका जन्म ब्रिटिश शासित भारत में हुआ था, इस समय सामाजिक और राजनीतिक ताना-बाना ऐसा था कि वे देश और दुनिया की राजनीति एवं दर्शन से भलि-भाँति परिचित होगये। गहन आध्यात्मिक चिन्तन और गूढ़ राजनीति के ममर्ज़ बनने में इन्हें देर न लगी। इनके जीवन पर स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विनायक दामोदर सावरकर और विपिन चन्द्र पाल का अत्यधिक प्रभावरहा।

यदि हम कहेंकि मानवेन्द्र नाथ राय ने न सिर्फ भारत अपितु समूचे विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त की तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। राय की लम्बी राजनैतिक वैचारिक यात्रा का परिणाम है, कि वे किसी विचारधारा से बँधे नहीं रहे। उन्होंने विचारों की भौतिक वादी आधार भूमि एवं मानव के अस्तित्व के नैतिक प्रयोजन के मध्य समन्वय करना आवश्यक समझा। वे जीवन की सस्याओं, चिन्तन और मनन में व्यवहारवादी समाधान के समर्थक थे। अतः राय के दर्शन में भौतिकता, व्यक्ति की स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, अन्तर्राष्ट्रीयता एवं उग्रमानवतावाद का विशेष महत्त्व है। इन्होंने मानवतावाद की संकल्पना एवं मानवतावाद सम्बन्धित विचार का अपनी प्रमुख पुस्तकों 'द प्रॉब्लम ऑफ फ्रीडम' 'साइण्टिफिक पॉलिटिक्स', 'रीजन' एवं 'रोमेण्टिसिज्म एण्ड रिवोल्यूशन', में विशेष रूप से वर्णन किया है।

लेनिन और अमेरिकी मार्क्सवादी विचाराधारा के प्रभाव में इनकी राजनीतिक, दार्शनिक एवं राष्ट्रवादी विचार धारा को और दृढ़ता प्रदान की। मैक्सिको की क्रान्ति में इन्होंने ऐतिहासिक योगदान दिया, जिससे इनकी ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो गई। आपके कार्यों से प्रभावित होकर थर्ड इंटर नेशनल में आपको आमंत्रित किया गया था और उन्हें उसके अध्यक्ष मंडल में स्थान दिया गया। 1921 में वे मास्को के प्राच्य विश्वविद्यालय के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। 1921 से 1928 के बीच उन्होंने कई पत्रों का संपादन किया, जिनमें 'वानगार्ड' और 'मासेज' मुख्य थे। सन् 1927 ई. में चीनी क्रांति के समय आपको वहाँ भेजा गया किंतु आपके स्वतंत्र विचारों से वहाँ के नेता सहमत न हो सके और मतभेद उत्पन्न हो गया। रूसी नेता इस पर आप से क्रुद्ध हो गए और स्टालिन के राजनीतिक कोप का आप को शिकार बनना पड़ा। विदेशों में आप की हत्या का कुचक्र चला। जर्मनी में आप को विष देने की चेष्टा की गई पर सौभाग्य से आप बच गए।

इधर देश में आपकी क्रांतिकारी गतिविधि के कारण आपकी अनुपस्थिति में कानपुर षड्यंत्र का मुकदमा चलाया गया। ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर आप पर कड़ी नजर रखे हुए थे,

फिर भी 1930 में आप गुप्त रूप से भारत लौटने में सफल हो गए। मुंबई आकर आप डाक्टर महमूद के नाम से राजनीतिक गतिविधि में भाग लेने लगे। 1931 में आप गिरफ्तार कर लिए गए। छह वर्षों तक कारावास जीवन बिताने पर 20 नवम्बर 1936 को आप जेल से मुक्त किए गए। कांग्रेस की नीतियों से आपका मतभेद हो गया था। ये गांधी के अनुनय और विनय के सिद्धान्त से असहमत थे। क्योंकि आपके सोचने और समझने की चिन्तन प्रक्रिया भिन्न थी और आप राष्ट्र के लिए कुछ कर गुजरने की चाह थी अतः आप ने रेडिकल डिमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना की ताकि अपनी शैली में राष्ट्र को नये शिखर पर ले जा सके। इनका जीवन सतत संघर्ष और प्रयास का एक जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। सक्रिय राजनीति से अवकाश ग्रहण कर आप जीवन के अंतिम दिनों में देहरादून में रहने लगे और यहीं 25 जनवरी 1954 को आपका निधन हुआ।

12.2 दर्शन का कार्य: दर्शन मानव जाति को प्राप्त एक अमूल्य निधि है। यह न तो किसी एक व्यक्ति, जाति या समुदाय, न ही किसी दैवीय सत्ता की देन है अपितु यह समस्त मानवजाति की उच्चतम बौद्धिक प्रक्रिया की सृष्टि है जो मानव के सुख-शान्ति और कल्याण को प्रथामिकता प्रदान करती है।

एम.एन. राय पूर्णतः प्रखर वक्ता, राजनीति के मर्मज्ञ और स्वतंत्र चिन्तन के उपासक रहे हैं। उनकी दार्शनिक शैली में भौतिकवाद तथा निरीश्वरवाद के दर्शन होते हैं। उनका मत था कि सम्पूर्ण जगत की व्याख्या भौतिकवाद के आधार पर की जा सकती है। इसके निमित्त किसी अतिन्द्रिय सत्ता या ईश्वर जैसी कोई शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम बौद्धिक प्राणी हैं, अन्य जीवों की भाँति न तो हम सीमित साधन, न ही सीमित क्षमतावाले हैं। यदि ऐसा होता तब हमें अतिन्द्रिय सत्ताओं या ईश्वर जैसी शक्ति के आश्रित रहना पड़ता जो कि नहीं है और यदि हम अब भी उस सत्ता की कल्पना करते हैं एवं उसके सहारे अपने जीवन और दर्शन को आगे की ओर ले जाना चाहते हैं तो यह स्वयं अपने को सीमित करना और बन्धनों में बाँधना होगा। बेहद ही आसन तरीके से प्राकृतिक घटनाओं के समुचित प्रेक्षण तथा सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा ही सम्पूर्ण वास्तविक तथ्यों और कारणों को समझा जा सकता है। ग्रीक दार्शनिक थेलीस की भाँति एम.एन. राय भी कहते हैं कि विश्व का मूल तत्त्व भौतिक द्रव्य अथवा पुद्गल है तथा सभी वस्तुएँ इसी पुद्गल के अन्तर्गत रूपान्तरित हैं, जो निश्चित प्राकृतिक नियमों के द्वारा नियन्त्रित होती हैं। जगत के मूल आधार इस पुद्गल के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की अन्तिम सत्ता नहीं हैं। राय, चार्वाकों की तरह ही मानवीय प्रत्यक्ष को सम्पूर्ण ज्ञान का मूल आधार स्वीकार्य करते हैं। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं कि “मनुष्य द्वारा जिस वस्तु का प्रत्यक्ष सम्भव है, वास्तव में, उसी का अस्तित्व है और मानव के लिए जिस वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव नहीं है, उसका अस्तित्व भी नहीं है।” राय के अनुसार,

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भौतिक परमाणुओं के संघात का परिणाम है, जिसका कोई सृजन कर्ता या रचनाकार नहीं है।

वैज्ञानिक विचारधारा विश्व के सृजनकर्ता के रूप में सर्वशक्तिमान ईश्वर की प्राकल्पना का समर्थन नहीं करती। इसी प्रकार शरीर से पृथक् तथा स्वतन्त्र आत्मा की प्राकल्पना भी निराधार है, क्योंकि प्राणी की मृत्यु के पश्चात् उसका कुछ भी शेष नहीं रहता, जिसे आत्मा कहा जाए, वह मात्र प्राणी की चेतना है, जो भौतिक परमाणुओं के संघात से ही उत्पन्न होती है। इस प्रकार राय ईश्वर की सत्ता के साथ-साथ आत्मा की सत्ता तथा अमरता का भी खण्डन करते हैं।

वे चावार्को की भाँति पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भी अस्वीकार किया है। वेपुनर्जन्म के सिद्धान्त को प्रशासक वर्ग के पुरोहितों की कल्पना मानते हैं, जो समाज में उनकी उच्च स्थिति को बनाए रखने के लिए ही की गई है। उनका विचार है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त समाज में नियतिवाद एवं भाग्यवाद को प्रश्रय प्रदान करता है, जो मनुष्य को जड़, निष्क्रिय तथा कर्तव्यहीन बना देता है। भौतिकवाद की सुदृढ़ परम्परा का उल्लेख करते हुए राय कहते हैं कि भौतिकवादी विचारधारा उतनी ही प्राचीन है, जितना स्वयं मानवीय चिन्तन। हमारे वेदों एवं उपनिषदों में भी भौतिकवाद के मूलतत्त्व विद्यमान हैं, अपने इस मत की पुष्टि के लिए राय 'उपनिषद् सूत्र-2' से निम्न लिखित वाक्य को उद्धृत करते हैं "कोई अवतार नहीं होता, न ईश्वर है, न स्वर्ग और न नरक, समस्त पारम्परिक धर्मशास्त्र का साहित्य दम्भीमूर्खों की कृति है।"

राय कहते हैं कि वर्तमान युग में मनुष्य की महान वैज्ञानिक प्रगति भी इसी विचार धारा की पुष्टि करती है। उन्होंने भौतिकवाद के विरुद्ध आध्यात्मिक दार्शनिकों के आरोपों का दृढ़ता पूर्वक खण्डन किया है। उनका मत है कि भौतिकवादी दर्शन 'खाओ, पियो और मौज करो' का दर्शन नहीं है जैसा कि इसके विरोधी इसका उपहास करते हुए प्रायः कहा करते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि भौतिकवाद, पारलौकिक जीवन के काल्पनिक सुख के लिए वर्तमान जीवन के स्पष्ट और वास्तविक सुख के परित्याग का समर्थन नहीं करता, किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि वहमनुष्य को आत्मकेन्द्रित तथा स्वार्थी हो जाने के लिए प्रेरित करता है। वस्तुतः भौतिकवादी दर्शन मनुष्य के सद्गुण में कोई बाधा नहीं डालता। अतः राय अध्यात्मवादियों के आरोपों को निराधार बताते हुए इसका खण्डन करते हैं।

सामान्यतः यह माना जाता है कि अध्यात्मवादी दर्शन, आदर्शों का दर्शन है। किन्तु अध्यात्मवाद और आदर्श के अर्थभिन्न-भिन्न हैं। अध्यात्मवाद का व्यावहारिक अध्यात्मवाद से कोई संबंध नहीं है। दार्शनिक भौतिकवाद सबसे बड़ा व्यावहारिक आदर्शवाद है।' ऐसे संसार का निर्माण करना जिसमें मनुष्य सुख, शान्ति, स्वतंत्रता और समृद्धि के साथ जीवन व्यतीत कर सके, जिसमें मनुष्य के समक्ष विकास और प्रगति की अनंत संभावनाएँ हो, इससे बढ़कर ऊँचा

आदर्श और क्या हो सकता है? मनुष्य को उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए भौतिकवादी वादी बड़ा से बड़ा बलिदान करने को तैयार रहता है। एम.एन. राय का प्रश्न बड़ा ही मार्मिक तथा व्यंजनात्मक है : कौन अधिक आध्यात्मिक अथवा आदर्शवादी है? घातक रोगों का निदान ढूँढने के लिए अपने जीवन को खतरे में डालने वाला निरीश्वरवादी वैज्ञानिक अथवा अपनी मूल्यवान् आत्मा की रक्षा में अपने आप ही में संकुचित पवित्र संन्यासी तथा धार्मिक अनुभूति में मोक्ष का भी आत्म-तुष्ट व्यक्ति? कौन अध्यात्मवाद के प्रति अधिक ईमानदार है? मानव-स्वातन्त्रता के लिए पीड़ा, अभियोग, भूख और मृत्यु का साहस पूर्ण सामना करने वाला क्रांतिकारी नास्तिक अथवा सुखासीन बुर्जुआ और उनके गुर्गे, जो उच्च आदर्शों का कपट पूर्ण नारा लगाते हैं जिनसे दासता, दरिद्रता, अज्ञान, अनैतिकता तथा पतन का सामाजिक तंत्र और मजबूत होता है?

भौतिकवादी दार्शनिक व्यावहारिक आदर्शवाद का विरोधी नहीं है। वस्तुतः ही उसका मनसा और कर्मणा पालन करता है। आदर्श ही भौतिकवादी के जीवन की प्रेरक शक्ति है, व्यवहारिक आदर्शवाद उसके लिए स्वाभाविक है। वह, आदर्शों (आइडिल्स) के लिए ही जीता है। उन आदर्शों को वास्तविक बनाने का प्रयास उसके लिए एक सुखद प्रक्रिया है। उसका आदर्शवाद विवशता का अध्यात्मवाद नहीं है। अध्यात्मवादियों की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। वे स्वभावतः आध्यात्मिक नहीं हैं, कोई बाह्य शक्ति, जैसे ईश्वर, उन्हें ऐसा होने के लिए विवश करती है। मनुष्य के आध्यात्मिक स्वरूप के ठेकेदार मनुष्य की आध्यात्मिक और नैतिक महानता में विश्वास नहीं करते। मनुष्य में स्वतः नैतिक बनने की क्षमता होती है उसके लिए ईश्वर के निर्देशन और प्रेरणा की जरूरत नहीं है। राय के अनुसार राधा कृष्णन् के निम्नलिखित वाक्य इसी बात की पुष्टि करते हैं। “हमारी नैतिक अनुभूति सर्वोच्च अनुभूति नहीं है। धार्मिक अनुभूति धार्मिक आश्वासन के बिना नैतिक जीवन का कोई अर्थ उससे परे है नहीं है और नैतिक संघर्ष प्रेरणाहीन है।”

भौतिकवाद क्रांति का दर्शन है। क्रांति मानव-विकास की प्रक्रिया में अंतर्निहित है। अतएव भौतिकवादी दर्शन सभी युगों में एक अनिवार्य दर्शन रहा है। इस दर्शन के अनुसार ज्ञान की उत्पत्ति ध्यान अथवा चिंतन से नहीं अपितु क्रिया से होती है। “दार्शनिकों ने जगत् की विभिन्न विधियों से व्याख्या की है, किन्तु वास्तविक समस्या उसे बदलना है।” जगत्-परिवर्तन की निरंतर प्रक्रिया में ही मानव-ज्ञान की अनंतवृद्धि होती है और प्रत्येक काल का ज्ञान इस नाते मूल्यवान् होता है कि उससे मनुष्य को जगत्-परिवर्तन की प्रक्रिया में सहायता मिलती है। भौतिकवाद वस्तुओं का चिंतन न करके उनकी खोज करता है। मानवीय ज्ञान को सीमित मानना शर्मनाक अज्ञान का सिद्धांत है। विज्ञान तथा मनुष्य की सच्ची आध्यात्मिक स्वतंत्रता के शत्रुओं ने ईश्वर, आस्था, तत्त्वमीमांसा, धर्म आदि का सहारा लेकर मानवीय ज्ञान की सीमितता को एक सम्मानित सिद्धांत का रूप देना चाहा। भौतिकवादी दर्शनमानवीय अनुभव के समीक्षात्मक परीक्षण पर आधारित है। यह शाश्वत् अज्ञान के सिद्धांत का निराकरण

करता है, अतीन्द्रिय कोटियों को मात्र कपोल कल्पना मानता है तथा मानव-बुद्धि की कल्पित सीमाओं को तोड़कर उसकी आत्मा को स्वतंत्र करता है। निरपेक्ष, अपरिवर्तनीय, प्रागनुभविक आदि की तत्त्वमीमांसीय धारणाओं से स्वतंत्र होकर मनुष्य परंपरा की जंजीरों को तोड़ने में समर्थ होता है। कुछ भी अनुल्लंघ्य अथवा शाश्वत् एवं स्थायी नहीं है। परिवर्तनशीलता वस्तुओं का स्वभाव है। हेराक्लाइट्स के शब्दों में “परिवर्तन ही स्थायित्व का अर्थ है।” भौतिकवादी दर्शन मनुष्य को संसार में परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित करता है और उसी प्रक्रिया में स्वयं मनुष्य में भी परिवर्तन आते हैं।

भौतिकवाद एक दर्शन तंत्र है। यह हठ मत नहीं है। यह प्रकृति, इतिहास तथा समाज, संक्षेप में, जीवन के सभी पक्षों के अध्ययन की पद्धति है। ज्ञान का अर्जन एक निरंतर प्रक्रिया है, संपूर्ण और अंतिम ज्ञान का कोई दर्शन तंत्र नहीं होता। दर्शन किसी व्यक्ति अथवा समुदाय की देन नहीं है। वह समस्त मानव जाति की उच्चतम आध्यात्मिक सृष्टि है।

12.3 सारांश: अन्ततः हम कह सकते हैं कि एम.एन. राय के अनुसार दर्शन का कार्य मनुष्य को उसकी वास्तविक शक्ति और सामर्थ्य से परिचित करना है। मानव स्वयं में सर्वशक्तिमान एवं सर्वज्ञ है बस आवश्यकता है तो स्वयं को पहचानने की। अद्वैत वेदान्त में शंकराचार्य का ‘अहंब्रह्मस्मि’ कहें या गौतमबुद्ध का ‘आत्मदीपोभवः’, ये दोनों ही वाक्य मानव को उसकी पूर्णता और सामर्थ्य का बोध कराते हैं। मानव ईश्वर, आत्मा और अतीन्द्रिय सत्ताओं के फेर में आकर स्वयं को समझ नहीं पाता है, वह समुद्र के समान गहरा, पर्वतों से ज्यादा दृढ़ और आकाश से भी ज्यादा ऊँचा है। जहाँ उसे बौद्धिकता, कर्मठता और ज्ञान का उपासक होना चाहिए, वहीं वह बाह्य आडंबरों, रूढ़िवादियों और परम्पराओं का दास हो स्वयं का नाश करता है। राय स्पष्ट रूप में कहते हैं कि मानव एक विवेकशील प्राणी है, जो अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है।

13.4 शब्दावली: राजनीतिकसिद्धान्तकार, समाजसेवी, अध्ययात्मवाद, भौतिकतवाद, स्वतंत्रता, अहंब्रह्मस्मि, आत्मदीपोभवः, स्वाधीनता, अतीन्द्रिय सत्ता, ईश्वर, साक्षात्कार, विकेन्द्रीकरण, वैचारिकता, जन्मजातप्रवृत्तियाँ, कन्फ्यूशियस, बाधिसत्त्व, राजनीतिकचिन्तक, विचारधारा, प्रासंगिकता, व्यवहारिक आदर्शवाद, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, आडंबर, और परम्पराओं।

13.5 प्रश्नावली:

- एम. एन. राय का परिचय प्रदान करें?
- एम.एन. राय के अनुसार दर्शन के क्या कार्य हैं?
- एम.एन. राय का दर्शन आज के दौर में कितना प्रासंगिक है? व्याख्या कीजिए।

13.6 सन्दर्भग्रन्थ:

- 1- दीक्षित, चन्द्रोदय, मानववादीविचारः एम.एन. राय, लोकभारतीप्रकाशन, नईदिल्ली, 2007.
- 2- पाण्डेय, ऋषिकान्त, "दार्शनिकविमर्श", श्रीभुवनेश्वरीविद्याप्रतिष्ठान, इलाहाबाद, सितम्बर, 2007
- 3- सक्सेना, लक्ष्मी, "समकालीनभारतीय दर्शन", उत्तरप्रदेशहिन्दीसंस्थान, लखनऊ, 2016
- 4- शर्मा, बी.एम., शर्मा, राम कृष्ण दत्त एवं शर्मा, सविता, भारतीय राजनीतिकविचारक, रावतप्रकाशन, जयपुर
- 5- राय, एम.एन., बियोन्डकम्यूनिज्मटूह्यूमेनिज्म
- 6- https://en.wikipedia.org/wiki/M._N._Roy
- 7- <https://www.jstor.org/stable/41856152>

.....00000.....

इकाई-11

नव मानववाद

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 नवमानववाद

11.3 मानववाद और मानवतावाद में अन्तर

11.4 सारांश

11.5 शब्दावली

11.6 प्रश्नावली

11.7 सन्दर्भग्रन्थ

.....00.....

11.0 उद्देश्य:

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको मानवेन्द्र नाथ राय के 'नवमानवतावाद' के सन्दर्भ में उनके विचारों से अवगत कराना है। इस इकाई के पूर्ण होने पर आप निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो पायेंगे—

- एम. एन. राय के नवमानववाद के सिद्धान्त से परिचित हो पायेंगे।
- मानवतावाद के सिद्धान्त से परिचित हो पायेंगे।
- मानवतावाद और नवमानववाद के मध्य विभेदों से अवगत होंगे।
- समकालीन समय में एम.एन. राय के नवमानववाद की प्रासंगिकता को समझ पायेंगे।

11.1 प्रस्तावना:

एम.एन. राय समकालीन दार्शनिक परम्परा में एक आदर्श मानववादी चिन्तक के रूपमें ख्याति प्राप्त है। उनका व्यक्तित्व मानो एक सार्वभौम और समग्र व्यक्ति का प्रकाशन है जिसके संपर्क में आने पर साधारण से साधारण व्यक्ति को भी जीवन की सार्थकता, उसके मूल्य एवं सौंदर्य का बोध होता है। जीवन से दुःखी और निराश व्यक्ति भी उनके संपर्कमें आकर सुख एवं शान्ति की अनुभूति प्राप्त करता है। उनके चिन्तन के केन्द्र में मानव एवं मानव वादी विचारधारा प्रथम सोपान पर एवं समाज व सामाजिक मान्यताएं द्वितीय स्थान पर आती हैं।

मानववादी विचार का केन्द्रव्यक्ति और उसकी स्वतंत्रता है। राय अपने मानववाद में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को केन्द्रीय स्थान प्रदान करते हुए लिखते हैं कि "नवमानववाद का आदर्श, वर्ग या समाज (राष्ट्र) नहीं है, बल्कि इसका सम्बन्ध मनुष्य से है। इसमें स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता का तात्पर्यव्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता से है।" इस प्रकार राय के दर्शन में "व्यक्ति और उसकी स्वतंत्रता साध्य है तथा सामाजिक संगठन इस के साधन। जहाँ व्यक्ति के बौद्धिक, मानसिक, नैतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक इन सभी पक्षोंमें आमूल चूल परिवर्तन की बात की जाती है। इसमें न तो राष्ट्रवाद की भावना का समावेश होगा और न ही रंगभेद का, न जाति का, न वर्ग का, समाजका।

यदि दर्शन सिर्फ सिद्धान्तों और कल्पनाओं के स्तर पर होगा तो वह कभी-भी मनुष्य के व्यावहारिक और सामाजिक समस्याओं को भली-भांति न समझ पायेगा न ही उसका समाधान कर पायेगा। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसके जीवन से सम्बन्धित सभी पहलूपूर्णतः व्यावहारिक हैं और यदि हम उसका समाधान किसी अदृश्य जगत या अदृश्य शक्ति से करेंगे, तब हम कभी-भी सफल नहीं हो सकेंगे। जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान कोई सिद्धान्त या कल्पना नहीं कर सकती है, इसके लिए हमें इसके व्यावहारिक समाधान की ओर ही देखना होगा और यह व्यावहारिक समाधान नव-मानववाद ही प्रदान करता है।

11.2 नवमानवतावाद :

राय के नवमानववाद (New Humanism) को 'वैज्ञानिक मानववाद (Scientific Humanism)', 'उग्रमानववाद' या आमूल परिवर्तनवादी मानववाद (Radical Humanism), एवं 'पूर्णमानवतावाद' (Absolute Humanism) की संज्ञा प्रदान की गई है। राय के नवमानववाद का उद्देश्य मूल्यों की प्रधानता एवं शाश्वत स्वतन्त्रता के लिए आग्रह करना है। इन्होंने कहा है कि लोकतन्त्र तभी प्रभावकारी होगा, जब व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से स्वतन्त्र सार्वजनिक मामलों के आचरण को मानेंगे और इनकी दृष्टि किसी भी स्तर पर न्यायपरक, मानव परक और व्यावहारिक होगी।

राय के अनुसार, अज्ञान की स्थितिमें मनुष्य अन्धविश्वासों में फँस जाता है तथा अलौकिक शक्तियों में विश्वास करते हुए स्वयं को विवश महसूस करता है, जिससे उसकी रचनात्मक और सृजनात्मक शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, जबकि ज्ञान और विज्ञान मनुष्य को इन निराधार विश्वासों से मुक्ति प्रदान करते हैं। सामान्य तौर पर जो मनुष्य ज्ञान और विज्ञान की समझ रखता है वह न सिर्फ अन्धविश्वासों, दुराग्रहों और कुण्ठाओं से मुक्त रहता है अपितु वह जीवन को सही मायनेमें जीता है क्योंकि अन्धविश्वासों और रूढ़ि वादिता में फँसकर मनुष्य न सिर्फ अपना अपितु सम्पूर्ण मानवजाति को खतरे में डालता है।

राय ने विज्ञान के ज्ञान के विषय में कहा है कि आधुनिक समय में विज्ञान ने प्राचीन रूढ़िबद्धता, निराधार विचारों एवं अन्धविश्वासों को चुनौती दी है। जीवन को देखने और समझने का नया नजरिया प्रदान किया है, यह मानवको एक ऐसे समाधान प्रदान करता है जो सामान्य से सामान्य मानव को बहुत ही सहज और सरल तरीके से समझ में आ जाता है। राय का यह मानना है कि विज्ञान के ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। अतः मनुष्य के भविष्य की कोई निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती।

अग्रतर बढ़ते हुए मानवेन्द्रनाथराय ने मूल्यों की प्रधानता एवं शाश्वत स्वतन्त्रता के लिए आग्रह किया है। मानव ज्ञान की ओर तभी अग्रसर होगा जब वह स्वतंत्र चिन्तन-मनन करेगा। नवमानववाद में ईश्वर अथवा किसी अन्य दैवीय शक्ति को कोई स्थान नहीं दिया है। उन्होंने कहा है कि मनुष्य के लिए यह समझ लेना आवश्यक है कि अपने सुख-दुःख के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। वह स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है, इसमें कोई दैवीय शक्ति आपकी सहायता नहीं करती। यदि कोई ऐसा सोचता है कि ईश्वर उसके कष्टों एवं पीड़ा को हरलेंगे या वहीं उसके कष्टों एवं पीड़ा के कारक हैं तो यह उसकी सबसे बड़ी भूल है। राय के अनुसार, "मानववाद स्वतन्त्रता के प्रयोग की अनन्त सम्भावनाओं में आस्था रखते हुए उसे किसी ऐसी विचारधारा के साथ नहीं बाँधना चाहता, जो किसी पूर्व-निर्धारित लक्ष्य की सिद्धि को ही उसके जीवन का ध्येय मानती है।" राय ने मानवविकास के सिद्धान्तों में विश्वास करते हुए यह तर्क दिया है कि स्वयं मनुष्य का अस्तित्व भौतिक सृष्टि के विकास का परिणाम है। भौतिक सृष्टि स्वयं में निश्चित नियमों से बँधी हुई है, इसलिए इसमें सुसंगति पाई जाती है। इस सृष्टिका सृजनकर्ता एवं विनाशकर्ता स्वयं मानव ही है न कि कोई अतिन्द्रिय या दैवी सत्ता।

मानव के अस्तित्व में यह सुसंगति तर्कशक्ति के रूप में सार्थक होती है। मनुष्य का विवेक भौतिक जगत में व्याप्त सुसंगति की ही प्रतिध्वनि है। यह मनुष्य के जीव वैज्ञानिक विकास की परिणति है। अपने विवेक से प्रेरित होकर मनुष्य जिन सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण करता है, उनमें भी वे ऐसी सुसंगति लाने का प्रयास करते हैं, जो नैतिकता के रूप में व्यक्त होती हैं। राय कहते हैं कि आज देश में जो संघर्ष, निर्धनता, बेरोजगारी एवं अविश्वास व्याप्त है, उनका प्रमुख कारण संकुचित राष्ट्रीयता की भावना है।

विश्व में एकता और शान्ति तभी स्थापित हो सकती है, जब हम केवल अपने देश के हित की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवजाति के हित की दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक चिन्ताओं पर विचार करेंगे। राय मानते हैं कि वर्तमान समय में संकुचित विचारधारा से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि उस के अनुसार किया गया आचरण मानव जाति के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। यही कारण है कि उन्होंने मानववादी विचारधारा को विशेष महत्त्व दिया है तथा उग्रमानववाद एवं वैज्ञानिक मानववाद की संज्ञा दी है। उनके अनुसार सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु मानववादी दर्शन ही सहायक सिद्ध हो सकता है।

11.3 मानववाद और मानवतावाद में भेद:

प्रश्न उठता है कि मानववाद क्या है? मानवतावाद क्या है? क्या दोनों एक ही हैं या इनमें कोई भिन्नता भी है। मानववाद एक प्रकार का मानव केन्द्रित दर्शन है, जिसके अनुसार मानवीय हित ही सर्वोपरि है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसके अन्तर्गत एक मात्र मानव का ही अस्तित्व है। निस्संदेह मनुष्य के अतिरिक्त अन्य का भी अस्तित्व है लेकिन मानववाद, मानव को केन्द्रीय स्थान प्रदान करता है क्योंकि मनुष्य ही मूल्यों का स्रोत है।

मानववाद मनुष्य के हतों का समाधान धार्मिक विश्वासों की अपेक्षा, तर्कबुद्धि के आधार पर करना चाहता है। विद्वान फिंगर ही आर्थ अपनी पुस्तक 'मानववाद के परिचय' में लिखते हैं कि "मानववाद वह विचारधारा है जो मानव को केन्द्र में रखती है। यह मानवहित, मानव-कल्याण, मानव-गरिमा एवं मानवीय मूल्यों को सामने रख कर चलती है। इसमें तर्क बुद्धि को महत्त्व दिया जाता है। कुछ मानववादी अपने को बुद्धिवादी भी कहते हैं। पुनश्च, वे लिखते हैं कि मानववाद ईश्वर के स्थान पर मानव पर ध्यान केन्द्रित करता है। इसमें मनुष्य की स्वायत्तता पर बल दिया जाता है अर्थात् मनुष्य किसी अतिप्राकृतिक शक्ति पर निर्भर नहीं हैं। वह अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। इस अर्थमें 'मानववाद, धर्मनिरपेक्षता के समतुल्य है। मानववाद (Humanism), मानवतावाद (Humantarianism) से निम्नलिखित रूपों में भिन्न है—

- मानवतावाद ईश्वर को केन्द्र में रखते हुए मानवीय कल्याण एवं उसके उत्थान की बात करता है, जबकि मानववाद मनुष्य को ही सर्वशक्तिमान मानकर उसकी सेवा को परम धर्ममानता है।
- मानवतावाद एक प्रकार का नियतिवादी एवं भाग्यवादी दर्शन है, जबकि मानववाद मानव को ही अपना भाग्य विधाता मानता है।
- मानवतावाद के अनुसार ईश्वर ही मूल्यों का अन्तिम स्रोत है, जबकि मानववाद के अनुसार मनुष्य ही मूल्यों का स्रोत है, न कि ईश्वर। मानववाद वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, क्योंकि यह बौद्धिकता पर आधारित है, जबकि मानवतावाद धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर आधारित है, क्योंकि यह मूलतः आस्था पर आधृत है।

- मानवतावाद का केन्द्र सभी प्राणी (All human being) हैं, जबकि मानववाद का केन्द्र केवल मनुष्य है।
- मानवतावादियों का उद्देश्य ईश्वर-साक्षात्कार है, जबकि मानववादी ईश्वर की सत्ता का ही निषेध करते हैं।

मानववादी अवधारणा की शुरुआत ग्रीकदार्शनिक प्रोटागोरस के दर्शन से होती है, जब वह कहता है कि 'मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदण्ड है' (Man is the measure of all things). यही मानववाद की मूल संकल्पना है। इसी प्रकार मार्क्सभी कहता है कि 'मनुष्य मानवता की जड़ है' (Man is the root of mankind)। भारतीय परम्परा में चार्वाकों एवं बौद्धों ने भी मानववाद का प्रतिपादन किया है। महात्माबुद्ध ईश्वर को नहीं मानते, क्योंकि ईश्वर को नित्य एवं पूर्ण होने के साथ-साथ जगत का स्रष्टा भी माना जाता है।

यदि ईश्वर नित्य है तो जगत में भी नित्यता होनी चाहिए, जबकि जगत प्रवाहशील है। अतः इस परिवर्तनशील जगत का कारण ईश्वर नहीं हो सकता। दूसरा, यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, तब जगतमें दुःख क्यों है? क्या ईश्वर दुःखों को दूर नहीं कर सकता? इसी कारण वे ईश्वर का निषेध करते हुए 'बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय' का उपदेश देते हैं, जो कालांतर में महायान दर्शन में 'बोधिसत्व की अवधारणा के रूप में विकसित हुआ। इसके अतिरिक्त चीन में कन्फ्यूशियस, पाश्चात्य दर्शन में ऑगस्तकाम्टे, जॉनडीवी, एरिकफ्रॉम, हर्बर्टस्पेंसर, जॉनहास्पर्स, बी०रसेल, मार्क्स एवंजे०पी० सार्त्रप्रभृति के दर्शनमें भीमानववादी अवधारणा निहित है।

आधुनिक भारतीय परम्परा में मानववाद के अग्रदूत के रूप में एम० एन० राय को जाना जाता है। जिन्होंने अपनी पुस्तक 'न्यूह्यूमेनिज्म' में नवमानव वाद की स्थापना की है। जिसका स्पष्ट रूप 'रेडिकलडेमोक्रेटिकपार्टी' के २२ प्रस्तावों में निहित है। जिसमें निम्न प्रमुख हैं—

- मनुष्य समाज का आदर्श है, क्योंकि वह अस्तित्व एवं महत्व की दृष्टि से समाज से पहले है। यही नही मनुष्य ही सभी चीजों का मापदण्ड है और वही प्रत्येक दृष्टि से मूल्यों का निर्माता है।
- व्यक्तिवास्तविक इकाई है, समाज नहीं। किसी भी प्रकार का अनुभव व्यक्ति को ही होता है, समाजको नहीं।
- यद्यपि समाजव्यक्ति की भलाई के लिए है, तथापि व्यक्तियों में आपसी सहयोग से ही व्यक्ति की उन्नति सम्भव हो पाती है।
- 'स्वतंत्रता की खोज' तथा 'सत्य का अन्वेषण', ये मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियाँ हैं।
- व्यक्ति की स्वतंत्रता की किसी भी स्थिति में बलि नहीं चढ़ाई जानी चाहिए।

- ईश्वर, आत्मा जैसी अतीन्द्रिय सत्ताओं एवं पुनर्जन्म में विश्वास एक प्रकार की धर्मान्धता है।
- मनुष्य की आर्थिक व्याख्या महत्वपूर्ण होते हुए भी अपूर्ण है, क्योंकि इस के अतिरिक्त कई अन्य महत्वपूर्ण तत्व हैं, जो व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हैं।
- आर्थिक समानता के साथ-साथ राजनीतिक समानता भी समाज में होनी चाहिए। एतदर्थ, सत्ता का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। इसके लिए संगठित प्रजातंत्र (Organised Democracy) का विकास व्यक्तिगत स्तर तक होना चाहिए। जिससे सभी प्रकार की तानाशाही का अंत हो सके।
- सभी प्रकार के शोषण एवं दमन का अंत होना चाहिए, तभी व्यक्ति की जन्मजात क्षमताओं का पूर्ण विकास हो सकता है।
- नैतिकता, मानवसमाज का एक आवश्यक पहलू है, जो बौद्धिकता पर आधारित है।
- मनुष्य इतिहास का निर्माता है और उसमें इतनी सामर्थ्य है कि वह आज के विश्व को बदल कर नूतन विश्व की स्थापना कर सकता है।
- सामाजिक शिक्षा हीक्रांति का उचितमार्ग है, न किहिंसा एवं रक्तपात।
- धर्म-निरपेक्ष व्यक्तियों के संगठित प्रयत्नों से एक ऐसे विश्व का निर्माण किया जा सकता है, जहाँ व्यक्ति अधिकाधिक स्वतंत्रता का अनुभव कर सकेगा।
- साध्य के साथ-साथ साधन शुद्धता का होना आवश्यक है।
- हमारा दृष्टिकोण वैज्ञानिक होना चाहिए, जिससे हम वास्तविकता की तह तक पहुँच सकें।

11.4 सारांश: अतः हम कह सकते हैं कि एम.एन. राय का नवमानववाद वह सिद्धान्त है जो मनुष्य को अपने भाग्य का निर्माता बनाता है। इस वाद में न तो राष्ट्रवाद की भावना का समावेश है और न हीरंग भेद का। उन्होंने विचारोंमें मानव की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सर्वोपरि माना। एम.एन. राय के अनुसार, व्यक्ति की तर्कशक्ति उसके ज्ञान के विस्तार के साथ जुड़ी है। अतः जहाँ अज्ञान की सीमाएं टूटती हैं, वहाँ वह नई जीवन-पद्धति की तलाश करता है। यही तलाश उसकी स्वतंत्रता को सार्थक करती है। अतः मनुष्य की स्वतंत्रताज्ञान के विस्तार के साथ-साथ अपनी आकांक्षाओं के विस्तार में निहित है। राय का नव-मानववाद 'मनुष्य' को संपूर्ण सृष्टि की धुरी मानता है, ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य सभी ग्रहों की धुरी है। वह शुद्ध 'मनुष्य' को मान्यता देता है—ऐसे मनुष्य को नहीं जो किसी 'वर्ग', 'राष्ट्र', 'समाज', 'देश', 'धर्म', 'जाति', 'पंथ' या अन्य प्रकार के सीमित समूह के पूर्व-निर्धारित लक्ष्य के साथ बँधा हो। स्वतंत्र मनुष्य अपनी सहज-स्वाभाविक तर्कशक्ति से प्रेरित होकर अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परस्पर सहयोग के सम्बन्ध में बंध जाते हैं। संक्षेप में, राय ज्ञान के अनंत

विस्तार और मानव-विकास की अनंत संभावनाओं के प्रति आशावान हैं। चूंकि इस विकास की कोई सीमा नहीं है, इसलिए हमारे वर्तमान ज्ञान के आधार पर इसका कोई पूर्व-निर्धारित लक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता की पहली शर्त वर्तमान बंधनों का तोड़ना है। मानवेन्द्रनाथ राय का आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन में विशिष्ट स्थान है। राय का राजनीतिक चिंतन लम्बी वैचारिक यात्रा का परिणाम है। वे किसी विचारधारा से बंधे हुए नहीं रहे। उन्होंने विचारों की भौतिकवादी आधार भूमि और मानव के अस्तित्व के नैतिक प्रयोजनों के मध्य समन्वय करना आवश्यक समझा।

11.5 शब्दावली: नवमानववाद, मानवतावाद, भौतिकतवाद, स्वतंत्रता, स्वाधीनता, अतिन्द्रिय सत्ता, ईश्वर, साक्षात्कार, विकेन्द्रीकरण, वैचारिकता, जन्मजातप्रवृत्तियाँ, कम्प्यूशियस, बोधिसत्त्व, राजनीतिक चिन्तक, विचारधारा, प्रासंगिकता, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, दुराग्रह, अग्रदूत और प्रजातंत्र।

11.6 प्रश्नावली:

- एम. एन. राय के नवमानववाद से आपक्या समझते हैं?
- मानववाद और मानवतावाद की सामान्य विशेषताएं क्या हैं?
- नवमानववाद और मानवतावाद के मध्य क्या विभेद हैं? विस्तार से चर्चा करें।
- समकालीन समय में एम.एन. राय के नवमानववाद सिद्धान्त कैसे और क्यों प्रासंगिक है?

11.7 सन्दर्भग्रन्थ:

- 8- दीक्षित, चन्द्रोदय, मानववादी विचार: एम.एन. राय, लोक भारती प्रकाशन, नईदिल्ली, 2007.
- 9- पाण्डेय, ऋषिकान्त, "दार्शनिकविमर्श", श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान, इलाहाबाद, सितम्बर, 2007
- 10- सक्सेना, लक्ष्मी, "समकालीन भारतीय दर्शन", उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2016
- 11- शर्मा, बी.एम., शर्मा, राम कृष्ण दत्त एवं शर्मा, सविता, भारतीय राजनीतिक विचारक, रावत प्रकाशन, जयपुर
- 12- राय, एम.एन., बियोन्ड कम्प्यूनिज्म टूह्यूमेनिज्म
- 13- https://en.wikipedia.org/wiki/M._N._Roy
- 14- <https://www.jstor.org/stable/41856152>

खण्ड-6 पं. दीनदयाल उपाध्याय

खण्ड परिचय :

प्रस्तुत खण्ड में बीसवीं सदी के उद्भट विद्वान, युगद्रष्टा पं० दीनदयाल उपाध्याय के तात्विक चिंतन का प्रतिपादन किया गया है। यह खण्ड दो इकाइयों में विभाजित है। पहली इकाई में एकात्म मानववाद के सिद्धांत का निरूपण किया गया है। दूसरी इकाई में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के संप्रत्यय का विश्लेषण किया गया है।

इकाई 12 में पंडित जी के एकात्म मानव दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें पाश्चात्य जीवन दर्शन को भारतीय एकात्मवादी संस्कृति के साँचे में ढालकर कैसे बेहतर बनाया जा सकता है, उस पर चर्चा हुई है। एकात्म मानववाद एक बहुआयामी चिंतन है, इसलिए इसकी विवेचना में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, राज्य, धर्म, अर्थव्यवस्था आदि उन समस्त प्रत्ययों का विवेचन किया गया है, जिससे मानव प्रभावित होता है, क्योंकि इसका लक्ष्य मानव का समग्र विकास है।

इकाई 14 में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विश्लेषण किया गया है। इसमें संस्कृति और राष्ट्र को परिभाषित किया गया है, उसे भारतीय संदर्भ में समझने का प्रयास हुआ है। अन्ततः यह निष्कर्षित किया गया कि पंडित जी का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र के सतत विकास को निश्चित करता हुआ जन-जन को भारत बोध से परिचित कराता है और दृढ़ता से यह स्पष्ट करता है कि भारत एक भौगोलिक सीमा में निर्मित राज्य मात्र नहीं है, अपितु एक सांस्कृतिक नींव पर खड़ा हुआ गौरवशाली राष्ट्र है।

इकाई 12 : एकात्म मानववाद

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 एकात्म मानववाद

12.3 सारांश

12.4 शब्दावली

12.5 प्रश्नावली

12.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

.....0000.....

12.0 उद्देश्य—

- पं० दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन पर विचार करना।
- पाश्चात्य जीवन दर्शन से उत्पन्न नकारात्मक प्रभावों को समझना एवं भारतीय संस्कृति के प्रकाश में सम्यक् उपाय खोजना।

12.1 प्रस्तावना— पं० दीनदयाल उपाध्याय ने मनुष्य का समग्रता में चिंतन करते हुए जिस दर्शन का प्रवर्तन किया, उसे एकात्म मानववाद कहते हैं। एकात्म मानववाद सिद्धांत के दो आयाम हैं, पहला, मानववाद जो मुख्यतः पाश्चात्य अवधारणा है, दूसरा, एकात्मकता जो भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है। अर्थात् कहा जा सकता है कि पाश्चात्य मानववाद के भारतीयकरण का परिणाम है—एकात्म मानववाद। पाश्चात्य जीवन दर्शन से उत्पन्न भौतिकवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, फ्रांसीवाद, यंत्रवाद, असंयमित भोगवाद जैसी विकृतियों ने मानव को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। इन विकृतियों से मानव—समाज को उबारने के लिए पंडित जी ने भारतीय संस्कृति का सहारा

लिया, जिससे मनुष्य का सर्वांगीण अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समेकित उन्नयन संभव हो सके। व्यष्टि, समष्टि एवं परमेष्टि में एकात्मकता स्थापित हो। यही जीवन दर्शन 'एकात्म मानववाद' है।

12.2 एकात्म मानववाद सिद्धांत— एकात्म मानववाद सिद्धांत पं० दीनदयाल उपाध्याय द्वारा 22 से 25 अप्रैल, 1965 को बम्बई में भाषण के रूप में प्रस्तुत किया गया। कुल चार व्याख्यान हैं जो एकात्म मानववाद की विशद विवेचना करते हैं। वक्तव्य का प्रारम्भ करते हुए पंडित जी कहते हैं कि आजादी के बाद का भारत कैसा हो, इस पर ठीक से विचार नहीं किया गया। भारत की दिशा निश्चित करने का प्रयास नहीं हुआ। अब प्रश्न यह है कि भारत किधर जाने वाला है? इसके लिए हमें बड़े-बड़े नारों से अधिक आर्थिक, राजनीतिक कार्यक्रमों को व्यवस्थित करना होगा। हमें आत्माभिमुख होना पड़ेगा, हमें एक होना पड़ेगा, हमें राष्ट्र की सामान्य इच्छा को समझना होगा। स्व पर विचार करना होगा, तभी स्वराज्य का कोई अर्थ है। व्यक्ति या राष्ट्र का प्रकृति के विपरीत चलने पर पराभव हो जाता है। प्रकृति को मजबूत कर संस्कृति बनाने का काम करना चाहिए।

हम पश्चिम पर पूरी तरह निर्भर हो गए हैं। पश्चिमी सभ्यता ने एक तानाशाही का, अमानवीय धार्मिक सत्ता का ऐसा जीवन भोगा जिसकी तीव्र प्रतिक्रिया पुनर्जागरण के रूप में दिखाई दी। इसका परिणाम यह हुआ कि ईश्वरीय सत्ता, सामाजिक व्यवस्था, स्थापित मान्यताओं का विरोध हुआ और मानववाद, व्यक्तिवाद तथा अनुसंधान की प्रतिष्ठा स्थापित हुई। परन्तु इन सब प्रतिक्रियाओं के बाद परिणाम यह हुआ कि आध्यात्मिक तत्वों के विरोध से भौतिकवाद हावी हो गया, व्यक्तिवाद पूंजीवाद में बदल गया, राष्ट्रवाद फांसीवाद एवं नाजीवाद में, अनुसंधान से असंयमित भोगवाद उत्पन्न हो गया।

पश्चिम की इन्हीं विकृतियों के प्रति पं० दीनदयाल उपाध्याय सचेत हैं और चिंतित भी कि लोग भारत को पश्चिम की अनुकृति बनाने में लगे हुए हैं। उनका मानना है कि हमने अपने संपूर्ण जीवन को तथा समस्याओं को अंगरेजियत के चश्में से देखा है। फलतः हमारी राजनीति, अर्थनीति, समाज व्यवस्था, साहित्य और संस्कृति पर अंगरेजियत की गहरी छाप है। भारतीयता केवल ऊपर-ऊपर दिखती है।

अब प्रश्न यह है कि भारत की दिशा कैसी हो? इसको लेकर दो तरह के विचार हैं— पहला, भारत के हजारों वर्षों से चली आ रही प्रगति जहां गुलामी से रुक गई थी, वहां से आगे बढ़ना।

लेकिन जरूरी कितना भी हो, यह असंभव सा कार्य है। समय को पीछे नहीं ले जाया जा सकता। हजार वर्षों में हमें जो मिला, जो हम आज कर रहे हैं, या बाहरी लोगों ने जो हमें दिया, हम उसका ऐसे ही प्रतिकार नहीं कर सकते। दूसरा, भारत की पुरानी चीज को अयोग्य मानते हैं, उसकी जगह पाश्चात्य की वकालत करते हैं। ये भी सही नहीं है। पाश्चात्य सभ्यता सार्वभौमिक नहीं है। कार्लमार्क्स आदि के सिद्धांत आज फीके पड़ गए हैं। हर देश की अपनी आर्थिक, ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थिति होती है। उस देश के नेता उसी के अनुरूप देश को आगे बढ़ाते हैं। **यद्देशस्य जो जन्तु, तद्देशस्य तु त्यौषधम्।**

लेकिन अपना देश, पराया देश कहकर ही पीछा नहीं छोड़ना होगा। आखिरकार मानव ने ज्ञान अर्जित किया है। तो हमें देखना होगा कि किस हद तक वह तत्वयुक्त है, किस हद तक सारहीन। पश्चिम की राजनीति के आदर्श प्रजातंत्र, समाजवाद, राष्ट्रीयता आदि अधूरे हैं और विभिन्न समस्याओं को जन्म देने वाले हैं। उदाहरण के लिए, प्रजातंत्र में व्यक्ति की स्वतंत्रता है, लेकिन पूंजीवाद के साथ मिलकर वह शोषणकारी हो गया। या समाजवाद ने व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गरिमा नष्ट कर दी। इसके लिए अब आवश्यक है कि हम अपनी संस्कृति पर विचार करें। क्योंकि वही हमारी प्रकृति है। संस्कृति का स्वराज्य से घनिष्ठ संबंध है। स्वराज्य तभी साकार और सार्थक होगा, जब वह अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति का साधन बनेगा। इससे विकास और आनन्द दोनों मिलेंगे। राष्ट्रीय और मानवीय दोनों दृष्टियों से आवश्यक है कि हम अपनी संस्कृति पर विचार करें। यदि उसके सहारे पश्चिम के आदर्शों के बीच कोई तालमेल बिठाया जा सके तो उत्तम होगा।

भारतीय संस्कृति एकात्मवादी (Integrated) है, क्योंकि वह सृष्टि का संकलित विचार करती है। पश्चिम ने हमेशा टुकड़ों में विचार किया है, फिर उसे पैबंद लगाकर जोड़ने का प्रयास किया है। हमारे यहां सदैव विविधता में एकता खोजने का प्रयास हुआ है। यह प्रयास वैज्ञानिक भी है। जैसे—विज्ञानी भी अव्यवस्था में व्यवस्था खोजने का प्रयास करते हैं। रसायन शास्त्रियों ने संपूर्ण भौतिक जगत में कुछ आधारभूत तत्व खोजकर निकाले और बताया कि सभी वस्तुएं उनसे ही बनी हैं। हमने संपूर्ण जीवन में मूलभूत एकता का दर्शन किया। भारत में जो द्वैतवादी रहे, उदाहरण के लिए सांख्य मतानुयायी, वो भी पुरुष और प्रकृति में संघर्ष या विरोध नहीं माने, बल्कि पूरकता ही माने। जीवन की विविधता अन्तर्भूत एकता से ही प्रकट होती है, इसलिए उसमें परस्पर पूरकता होती है, अनुकूलता होती है। जैसे—बीज ही वृक्ष के जड़, तने, पत्तियाँ, फल के अनेक रूपों में प्रकट होता है, फिर भी उनमें बीज के साथ एकत्व है। यही विविधता में एकता अथवा एकता का विविध रूपों में

व्यक्त होना भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय विचार है। हमने अपनी संस्कृति का अंग उन्हें बनाया जो जीवन के अनुकूल हैं, हितकारी हैं। विकृतियों को कभी आदर्श नहीं माना।

ध्यातव्य है कि पं० दीनदयाल उपाध्याय ने व्यक्ति का एकात्म एवं सकलित विचार किया। सामान्यतः व्यक्ति का विचार उसके शरीर को केन्द्र में रखकर किया जाता है। माना जाता है कि शरीर सुखी तो व्यक्ति सुखी। लेकिन देखा जाता है कि मन में यदि कोई चिंता है या बुद्धि में कोई उलझन चल रही है तो व्यक्ति बहुत परेशान हो जाता है। इसलिए ये सब भी विचारणीय हैं। इस पर पंडित जी कहते हैं कि व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का समुच्चय है। हम उसका टुकड़ों में विचार नहीं कर सकते। पश्चिम में जो परेशानी आई वह इसीलिए आई कि व्यक्ति पर एकांगी विचार हुआ, उसे केवल राजनीतिक पशु (Political Animal) समझा गया। भारतीय संस्कृति सर्वांगीण विवेचन करती है। यह सत्य है कि भारतीय संस्कृति में आत्म तत्व पर अधिक ध्यान दिया गया है, लेकिन उपनिषदों का ऋषि शरीर को प्रमुखता देते हुए यह भी कहता है कि बलहीन व्यक्ति आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता (नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यः)। शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही हमारी संस्कृति में चार पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की संकल्पना है। उनका संकलित विचार हुआ है। यह पूर्ण मानव की, एकात्म मानव की कल्पना है।

इस पूर्ण व्यक्ति का समाज के साथ क्या संबंध होगा, व्यक्ति का समष्टि के साथ क्या संबंध है तथा समाज का संवर्धन कैसे होगा, इस पर विचार करते हुए पंडित जी कहते हैं कि समाज, मानवों का ही समूह है। लेकिन मानवों ने समाज नहीं बनाया है, समाज समझौते से नहीं बना है, बल्कि स्वयंभू है। समाज जैविक है। इसमें भी व्यक्ति की तरह ही मन, शरीर, बुद्धि एवं आत्मा होती है। यह व्यक्तियों का जोड़ नहीं है। व्यक्ति सीधा हो सकता है, समाज गुस्सैल। व्यक्ति अच्छा, समाज बुरा या समाज अच्छा, व्यक्ति बुरा। व्यक्ति और समाज के मध्य संबंध की व्याख्या करते हुए पंडित जी कहते हैं कि समाज और व्यक्ति में संघर्ष नहीं है। यदि संघर्ष है तो प्रकृति नहीं, विकृति है। हमारे यहाँ वर्ग संघर्ष को मानक नहीं माना गया। यहाँ वर्णों की कल्पना विराट् पुरुष के अंगों से कह गई, लेकिन उनमें एकात्मकता है, पूरकता है, आत्मीयता है, संघर्ष नहीं।

इस क्रम में पंडित जी समाज के पर्याय के रूप में राष्ट्र शब्द पर विचार करते हैं कि समुदायों के रहने से राष्ट्र या समाज का निर्माण नहीं होता। क्योंकि बेबीलोन, ग्रीक, यूनान में वंश परम्परा तो है लेकिन राष्ट्र समाप्त हो गया। प्रश्न है कि राष्ट्र किसे कहें? पंडित जी कहते हैं कि मानव समुदाय

जब एक मिशन, एक विचार या आदर्श, भूमि विशेष के प्रति मातृभाव रखता है तो उसे राष्ट्र कहते हैं। राष्ट्र की आत्मा को 'चिति' कहते हैं। जैसे—आत्मा नहीं तो शरीर नहीं, वैसे ही चिति नहीं तो राष्ट्र नहीं। जो चिति के अनुकूल है वही संस्कृति है। महाभारत का युद्ध, विभीषण की भूमिका, कंस वध इसी चित के कारण ही वैधता प्रदान करते हैं। इसी से मानव प्रकृति बनती है, उसी से संस्कृति। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए राष्ट्र संस्थाओं को जन्म देता है। आत्मा और शरीर के अंग, कारखाना और विभाग में जो सम्बन्ध होता है, वही राष्ट्र और संस्था के बीच होता है। व्यक्ति इन संस्थाओं का उपकरण है और प्रतिनिधि भी। राष्ट्र की आत्मा को प्रकट करने का साधन भी है। सब संस्थाएँ राष्ट्र तथा मानव के अंगभूत हैं। उनमें एकात्मभाव चाहिए, वे परस्पर पूरक हैं तथा परस्पर अवलम्बी हैं। ध्यातव्य है कि राज्य भी एक संस्था है, जिसका निर्माता राष्ट्र है। इस प्रकार राज्य, राष्ट्र नहीं है, जैसा कि पश्चिम में माना जाता है। राज्य संविदा से पैदा हुआ है। ब्रह्मा ने दण्डनीति या राज्यशास्त्र मनु को दिया। भारत में राज्य सर्वोपरि नहीं है। ईरान में राज्य समाप्त होते ही राष्ट्र समाप्त हो गया। लेकिन भारत में राज्य केन्द्र में नहीं था।

राष्ट्र को मापदण्ड बनाकर देखें तो संविधान ने एक भूल की है कि वह भारत को संघीय मानता है। कुछ बातें तो ठीक हैं। जैसे—किसी प्रकार का भेदभाव नहीं, इकहरी नागरिकता, राज्य संघ से निकल नहीं सकते, राज्य की सीमायें और नाम राज्य नहीं तय करेगे, संसद करेगी। लेकिन बुराई संघ शब्द से है। क्योंकि उसमें इकाइयों की निजी सत्ता होती है। अपने अधिकार केन्द्र को सौंपते हैं। यह भारत की अखंडता के खिलाफ है। अगर संघीय न हो तो एकात्मक राज्य कैसा हो? एकात्मक का मतलब केन्द्रीकरण नहीं, बल्कि विकेन्द्रीकरण है। गांव तक को स्वायत्तता। जैसे आत्मा मुख्य है। लेकिन प्राण, मन, इन्द्रियां सबके पास ताकत रहती है।

यह एकात्मक राज्य हमारे धर्म के अनुसार चलेगा। धर्म की परिधि में संपूर्ण मानवता निहित है। राजा धर्म की रक्षा के लिए है। न राजा बड़ा है, न जनता, यहां तक कि ईश्वर भी नहीं। धर्म राज्य हो, थियोक्रेटिक स्टेट नहीं। न लेजिस्लेचर बड़ा है, न जूडीशियरी, न जनता। धर्मानुसार चलने वाला अल्पमत भी श्रेष्ठ होता है। अंग्रेजों के लिए कुछ लोग ही खड़े हुए। बहुमत शासक तय कर सकती है, सत्य नहीं, धर्म नहीं। बहुमत या जनता में धर्म नहीं है। धर्म शाश्वत है। सनातन है। इसलिए जनता का शासन पर्याप्त नहीं, जनता के हित में होना चाहिए। Government of the people, by the people and for the people में of स्वतंत्रता का, by जनतंत्र का और for धर्म का द्योतक है।

एकात्म मानववाद के अंतिम वक्तव्य में पं० दीनदयाल उपाध्याय ने अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डाला। वे कहते हैं कि पश्चिम ने नए उपभोक्ता पैदा करने, नई मांग पैदा करने, अंधाधुंध उत्पादन को अपना लक्ष्य बना लिया, जो विनाशकारी सिद्ध होता जा रहा है। क्योंकि उत्पादन का संबंध प्राकृतिक संसाधनों से है जिसके उपभोग की एक मर्यादा है। एक कारखाने का मालिक मशीनों की घिसाई निधि की व्यवस्था रखता है, लेकिन प्रकृति के लिए इस तरह का विचार नहीं होता, जबकि होना चाहिए। इसलिए हमें संयमित उपभोग करना होगा। पश्चिम के घातक आर्थिक नारों ने स्थिति खराब कर दी। पूँजीवाद मानव की क्रयशक्ति पर जोर देता है, साधन सम्पन्न के लिए बहुत कुछ, साधनहीन के लिए कुछ नहीं, समाजवाद व्यक्ति निरपेक्ष होकर सबकुछ राज्य को सौंप देता है, वहीं कम्युनिस्ट कहते हैं कि श्रमिक को ही खाने का अधिकार है। जबकि व्यवस्था यह हो कि सभी की न्यूनतम आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा और मकान पूरी हों। निःशुल्क शिक्षा एवं चिकित्सा, प्रत्येक को काम की गारण्टी मिले।

इस प्रकार पं० दीनदयाल उपाध्याय ने अपने एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत मानव के समग्र एवं संकलित स्वरूप पर विचार किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल्यों के साथ राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र, समता और विश्व एकता के आदर्शों को समन्वित रूप में रखने का प्रयास किया। इससे मानव अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा एवं जीवन के उद्देश्य को पा सकेगा। हमें राष्ट्र को सबल बनाने के लिए उसके विराट् को जाग्रत करना होगा जो उसका प्राण है। पंडित जी कहते हैं कि अपने प्राचीन के प्रति गौरव का भाव लेकर, वर्तमान का यथार्थवादी आकलन लेकर और भविष्य की महत्वाकांक्षा लेकर हमें इस कार्य में जुटना होगा। विश्व का ज्ञान और आज तक की संपूर्ण परंपरा के आधार पर ऐसे भारत का निर्माण करना होगा जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा तथा जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ संपूर्ण मानव ही नहीं, अपितु सृष्टि के साथ एकात्मकता का साक्षात्कार 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा।

12.3 सारांश— पं० दीनदयाल उपाध्याय की एकात्म मानव दर्शन की संकल्पना बहुत व्यापक और सुगठित है। वे एक साथ व्यक्ति, समाज, राजनीति, धर्म, राष्ट्र आदि विषयों पर विचार करते हैं। एकात्म मानववाद के अन्तर्गत वे पश्चिम की नकारात्मकता का भारतीय एकात्मकता से शोधन करना चाहते थे। उन्होंने पश्चिम की उस अवधारणा का खण्डन किया जो व्यक्ति का एकांगी विचार करती है। वे मानव के सर्वांगीण विकास के पक्षधर थे। वे सम्पूर्ण व्यवस्था के केन्द्र में मानव को रखना चाहते हैं। वे मानवमात्र का हर उस दृष्टि से मूल्यांकन करने की बात करते थे, जो उसके संपूर्ण

जीवनकाल में छोटी अथवा बड़ी जरूरत के रूप में संबंध रखता है। उन्होंने व्यष्टि—समष्टि या मानव और समाज की परस्पर सापेक्षता की बात कही। उनका कहना था कि मानव राष्ट्र का उपकरण है और प्रतिनिधि भी। उनका उद्देश्य एक ऐसा स्वदेशी सामाजिक—आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करना था, जिसमें विकास के केन्द्र में मानव हो। अन्ततः हम कह सकते हैं कि दुनिया के इतिहास में केवल मानव मात्र के लिए यदि किसी एक विचार दर्शन ने समग्रता में चिंतन प्रस्तुत किया है तो वह एकात्म मानववाद का दर्शन है।

12.4 शब्दावली— मानववाद, संस्कृति, राष्ट्र, धर्म

12.5 प्रश्नावली—

- 1- पं० दीनदयाल उपाध्याय के 'एकात्म मानववाद' सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
- 2- पं० दीनदयाल उपाध्याय पाश्चात्य मानववाद का भारतीय एकात्मकता से किस प्रकार सामंजस्य बैठाते हैं? स्पष्ट कीजिए।
- 3- एकात्म मानववाद मानव के सर्वांगीण विकास का दर्शन है। चर्चा कीजिए।

12.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ—

- 1- उपाध्याय, दीनदयाल, *एकात्म मानववाद: तत्वमीमांसा सिद्धांत विवेचन*, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2020।
- 2- शर्मा, महेश चंद्र, *आधुनिक भारत के निर्माता : पंडित दीनदयाल उपाध्याय*, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 2017।
- 3- गुरुदेव, डॉ० गुप्तिसागर जी, *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अग्रदूत : पं० दीनदयाल उपाध्याय*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023।
- 4- शर्मा, डॉ० महेश चंद्र (संपादक), *दीनदयाल उपाध्याय : संपूर्ण वाङ्मय*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016।

इकाई 13

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

इकाई की रूपरेखा

- 13.0 उद्देश्य
- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 संस्कृति क्या है?
- 13.3 राष्ट्र क्या है?
- 13.4 सांस्कृतिक राष्ट्रवाद
- 13.5 सारांश
- 13.6 शब्दावली
- 13.7 प्रश्नावली
- 13.8 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

.....000.....

13.0 उद्देश्य—

पं० दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि में राष्ट्र, संस्कृति और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकल्पना पर विचार करना।

13.1 प्रस्तावना— राष्ट्रवाद एक ऐसा विषय है, जो अनेक महापुरुषों यथा—महात्मा गांधी, टैगोर, विवेकानन्द इत्यादि के चिंतन का विषय रहा है। आधुनिक युग में पं० दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रवादी चिंतन के प्रमुख उद्घोषक के रूप में दिखाई देते हैं। उनका राष्ट्रवाद अध्यात्म से स्पंदन करता है और सांस्कृतिक चेतना से स्फूर्त होता है। उनका राष्ट्रवाद व्यष्टि से समष्टि तक विस्तृत था, जिसकी

पूर्णता 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में होती है। वस्तुतः इस संकल्पना के मूल में उनका विचार था कि हमारी सारी व्यवस्थाएं सांस्कृतिक चेतना पर ही आधारित हों, जिससे कि सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना के सहारे भारत-बोध सम्भव हो सके।

13.2 संस्कृति क्या है?— संस्कृति किसी राष्ट्र-राज्य, जीवन या समाज की संपूर्ण मानसिकता का आदर्श एवं सुंदर रूप होती है। यह प्रत्येक समाज की परंपरा से जुड़कर हमारी जीवन पद्धति बन जाती है। संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घकाल तक अपनाई गई पद्धतियों का परिणाम होता है। संस्कृति मनुष्य को विवेक सम्पन्न व मानवीय बनाती है। संस्कृति किसी भी देश अथवा समाज के सामूहिक आचरण का प्रतीक है। यह मानवीय संबंध, जीवन जीने के अर्थ की धुरी है। यदि भारतीय संस्कृति को देखें तो यह सबसे प्राचीन और समृद्ध है। यह विविध संस्कृतियों की समन्वयात्मक समष्टि है। यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संकल्पना पर अधिष्ठित है। पं० दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण जीवन का, सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। उसका दृष्टिकोण एकात्मवादी है, न कि टुकड़ों-टुकड़ों में विचार करना। विविधता में एकता अथवा एकता का विविध रूपों में व्यक्तीकरण ही भारतीय संस्कृति का केन्द्रस्थ विचार है। 'धर्म' भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। धर्म के कारण भारत में राजा, प्रजा, समाज, व्यक्ति सभी सुसंयमित हुए, कोई भी उच्छृंखल नहीं हो सका। ध्यातव्य है कि यहां धर्म का अर्थ प्रकृति के शाश्वत व खोजे हुए नियम हैं। धर्म मजहब नहीं है। भारतीय संस्कृति परमत-सत्कारवादी है अर्थात् दूसरे मतों के प्रति सहिष्णु है। यहाँ यह विचार ही है कि 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' अर्थात् एक ही सत्य को विद्वान लोग बहुत प्रकार से कहते हैं। भारतीय संस्कृति समन्वयवादी है। व्यक्ति व समाज में समन्वय, राष्ट्र एवं विश्व में समन्वय, भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में समन्वय, विभिन्न विचारों व पंथों में समन्वय तथा हर प्रकार के संघर्ष को शासित करने की अद्भुत समन्वय क्षमता भारतीय संस्कृति का विशिष्ट लक्षण है। पं० दीनदयाल उपाध्याय मानते थे कि संस्कृति सृजित नहीं होती, बल्कि स्वतः क्रियाशील होती है। संस्कृति आत्म-तत्व है, जिसके विकास की प्रक्रिया में खान-पान के तरीके, पहनावा, भाषाएँ, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाएँ, राजनीतिक प्रणालियाँ सन्निहित हैं और इस विकास की प्रक्रिया में यह आवश्यक है कि सबके बीच सौहार्द बना रहे, स्नेह का भाव बना रहे।

13.3 राष्ट्र क्या है?— राष्ट्र एक ऐसी अवधारणा है जो समय-समय पर परिभाषित होती रही। वैदिक युग में देखें तो राजनीतिक रूप से संगठित जन ही राष्ट्र या जनपद कहलाता था। संहिताओं

में राष्ट्र शब्द का प्रयोग भूभाग के लिए किया गया। पश्चिम में राष्ट्र के लिए जिस अंग्रजी शब्द 'नेशन' का प्रयोग किया जाता है, वह लैटिन भाषा के 'नेशियो' शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है—जन्म या प्रजात। वह भी पहले अनेक अर्थों से भरा था। कभी आयरलैण्ड में कुलप्रमुख को राष्ट्र प्रमुख कहा जाता था तो जर्मनी और फ्रांस में राष्ट्र शब्द उच्च शासक वर्ग के लिए प्रयुक्त होता था। 17वीं शताब्दी तक आते-आते राष्ट्र शब्द किसी राज्य की विशेष आबादी को रेखांकित करने के लिए प्रयुक्त होने लगा, वहीं फ्रांस की राज्य क्रांति ने नेशन को देशभक्ति के रूप में लिया। वास्तव में देखा जाय तो राष्ट्र के सारे अर्थ बहुत सीमित दायरे में हैं। जबकि आज राष्ट्र शब्द का अर्थ भौगोलिक सीमाओं में आबद्ध वह भूभाग है, जहाँ के निवासियों में एक साथ मिलकर रहने की भावना हो और जिनकी अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं परंपरा हो। जिस तरह मानव की रचना में शरीर, प्राण और मन आदि की अपनी-अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, उसी प्रकार राष्ट्र के निर्माण में भूभाग रूपी शरीर, जनसमूह रूपी प्राण और जनसंस्कृति रूपी मन से राष्ट्र का गतिशील रूप सामने आता है। भूमि राष्ट्र का कलेवर है, जन उसका प्राण है और संस्कृति उसका मानस है।

राष्ट्र का अस्तित्व पं० दीनदयाल उपाध्याय के जीवन का ध्येयभूत भाव है। वे कहते हैं कि जब एक मानव समुदाय के समक्ष एक मिशन, विचार या आदर्श रहता है और वह समुदाय किसी भूमि विशेष को मातृभाव से देखता है तो वह राष्ट्र कहलाता है। इनमें से एक का भी अभाव रहा तो वह राष्ट्र नहीं बनेगा। पं० दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि जैसे शरीर में आत्मा होती है, वैसे ही राष्ट्र की भी एक आत्मा होती है, जिसे वह 'चिति' कहते हैं। चिति समाज की वह प्रकृति है, जो जन्मजात है, किसी ऐतिहासिक कारण से नहीं बनी है। चिति वह मापदण्ड है, जिससे हर वस्तु को मान्य अथवा अमान्य किया जाता है। इसी आत्मा के आधार पर राष्ट्र खड़ा होता है और यही आत्मा राष्ट्र के प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण द्वारा प्रकट होती है। व्यक्ति भी इस राष्ट्र की आत्मा को प्रकट करने का एक साधन है। व्यक्ति अपने स्वयं के अतिरिक्त राष्ट्र का भी प्रतिनिधित्व करता है। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए राष्ट्र जितनी संस्थाओं को जन्म देता है, उसका उपकरण भी व्यक्ति ही। ध्यातव्य है कि राज्य भी एक संस्था है, जिसका निर्माता राष्ट्र है। इस प्रकार राज्य, राष्ट्र नहीं है, जैसा कि पश्चिम में माना जाता है। पं० दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि आज समष्टि की सबसे बड़ी इकाई राष्ट्र है। राष्ट्र के लिए चार बातों का होना आवश्यक है। प्रथम आवश्यकता है—देश। देश भूमि और जन दोनों को मिलाकर बनता है। केवल भूमि ही देश नहीं है। किसी भूमि पर जन या समाज रहता हो और वह उस भूमि को माता के रूप में पूज्य समझे, तभी

वह देश कहलाता है। जैसे—दक्षिणी ध्रुव में कोई नहीं रहता, तो वह देश नहीं है। किन्तु भारत में हम रहते हैं, हम इसे माँ मानते हैं, इसलिए यह देश है। दूसरी आवश्यकता है— सबकी इच्छाशक्ति अर्थात् सामूहिक जीवन का संकल्प। तीसरी एक व्यवस्था, जिसे नियम या संविधान कह सकते हैं, इसके लिए हमारे यहाँ 'धर्म' शब्द प्रयुक्त हुआ है। और चौथी आवश्यकता है— जीवन—आदर्श या संस्कृति। इन चारों का समुच्चय ही राष्ट्र है।

13.4 सांस्कृतिक राष्ट्रवाद— पं० दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चिंतन से स्पंदित मानते थे। भारत की सांस्कृतिक एकता को स्वीकार करने के साथ-साथ उन्होंने भारत की सनातन प्रवाहमान बौद्धिक चेतना को सदैव महत्व दिया। वे मानते थे कि भारत का विभाजन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उच्छेद का परिणाम है। उनका चिंतन संपूर्ण भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता के दो मूलभूत तत्वों, देशभक्ति एवं ऐतिहासिक गौरवभाव से ओत-प्रोत था। वे अपने प्रबोधनों में विष्णु पुराण का वह श्लोक उद्धृत करते थे, जिसमें कहा गया है कि—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् । वर्षं यद् भारतं नाम भारती यस्य संततिः ॥

अर्थात् समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में, जो भूभाग स्थित है, उसका नाम भारत है और उसकी संतान को भारतीय कहते हैं। वहीं सांस्कृतिक गौरव के भाव को पुनः इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे ।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतु भूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

अर्थात् देवता भी स्वर्ग में गीत गाते हैं कि धन्य हैं वे जिनका जन्म भारत भूमि पर हुआ है। यह भूमि स्वर्ग से भी महान् है। भारत का राष्ट्रवाद थोपने का राष्ट्रवाद नहीं है और न ही किसी को प्रताड़ित करने का राष्ट्रवाद है तथा किसी के संप्रभु भूखंड को छीनने का भी राष्ट्रवाद नहीं है, बल्कि यह एक वैश्विक परिवार का राष्ट्रवाद है। राष्ट्रवाद एक संस्कार की तरह है। इसे संकल्प के रूप में देखा जाता है। संकल्पकर्ता भारत भूमि को हाथ जोड़कर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रति संकल्प लेता है—“जंबूद्वीपे, भरतखंडे, आर्यावर्ते देशान्तरे, गते अमुक क्षेत्रे, अमुक नगरे,” आदि—आदि। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के लोकशिक्षण की इतनी प्रभावी प्रक्रिया अन्यत्र नहीं मिलती है। यह तो निश्चित है कि भारत नामक विशाल भूखण्ड की भौगोलिक एकता का साक्षात्कार एक दिन में नहीं हुआ, बल्कि

हजारों वर्षों की आध्यात्मिक—सांस्कृतिक यात्रा की सुसंपन्नता के उपरान्त हुआ, जिसका जुड़ाव सांस्कृतिक था, मन सांस्कृतिक था और धर्म उसका आधार था।

सांस्कृतिक चेतना से पूरित भारत एक राष्ट्र के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाया हुआ है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, राष्ट्रवाद का वह रूप है, जिसमें राष्ट्र को एक साँझी संस्कृति के रूप में देखा जाता है। विविधता से भरे भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद स्पंदित हो रहा है। वही है जो विविधता में एकता को चरितार्थ किए हुए है। उसी की वजह से भारत दुनिया के किसी कोने से आने वाले का निरन्तर स्वागत किया, उनकी शरणस्थली बना। इसी संकल्पना का प्रभाव है कि हमने मानव कल्याण की कामना की। कभी संकुचित विचारों को महत्व नहीं दिया गया। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हमारे जीवन मूल्यों को महत्व देता है। यह हमें संवेदनशील, उदार, सहिष्णु, संस्कारी बनाता है, यही कारण है कि भारत में पत्थर, नदियाँ, पर्वत, पशु—पक्षी पूजे जाते हैं। हम अपने देश को माता के समान पूजते हैं। 'वन्दे मातरम', 'भारतमाता' जैसे शब्दों से आह्वान करते हैं।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के आधार के रूप में हमारी प्राचीन संस्कृति है, हमारी सांस्कृतिक एकता है, जो सबल और टिकाऊ है। यह लोगों को एकजुट करने में सक्षम है। इसी भारत की धरती से भारतीय संस्कृति के मूल्य उद्भूत हुए हैं। एकात्मकता, समन्वय, विशालता आदि सब यहीं की चेतना की देन है। अद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठापक आदिशंकराचार्य जैसे मनीषियों के अनथक परिश्रम का परिणाम है। भारतीय संस्कृति संश्लेषण प्रधान है। यह विज्ञानों की भांति विश्लेषणात्मक नहीं है, जो खण्डित रूप में विचार करे। इसलिए इसका स्वभाव समन्वयात्मक है। इस संस्कृति में एक ठहराव है, आस्था है, विश्वास है। यहां कोई भटकाव नहीं, भ्रम नहीं है। ऐसी संस्कृति से राष्ट्र सुदृढ़ होता है।

पं० दीनदयाल उपाध्याय का मानना है कि राष्ट्र केवल भौतिक निकाय नहीं हुआ करता, राष्ट्र में रहने वाले लोगों के अन्तःकरण में अपनी भूमि के प्रति श्रद्धा की भावना होना राष्ट्रीयता की पहली आवश्यकता है। राष्ट्र की राष्ट्रीयता के निर्माण में संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रत्येक देश की अपनी एक संस्कृति होती है। देश में इतनी संस्कृतियों के होते हुए भी उन सबके मूल में एकता होती है। अनेकता में एकता की भावना होने पर भी सांस्कृतिक एकता ही राष्ट्रीय एकता की भूमि बन पाती है। यह अन्तर्निहित सांस्कृतिक एकता हमारी राष्ट्रीय पहचान के सभ्यतामूलक आधार के साथ—साथ उच्च जीवन मूल्य भी है।

राष्ट्रवाद का स्वरूप राष्ट्र की संस्कृति एवं धर्म के द्वारा निर्धारित होता है। संस्कृति जहां राष्ट्र को उसकी प्राचीन स्वस्थ परम्पराओं के साथ सम्बद्ध करती है, वहीं धर्म राष्ट्र को उसकी अस्मिता का बोध कराता है। राष्ट्र के भौतिक स्वरूप के साथ धर्म एवं संस्कृति के अभिन्न होने पर ही राष्ट्रवाद का स्वरूप निर्मित होता है। भारतीय राष्ट्रतत्व के चिंतन में संपूर्ण विश्व के विकास की संकल्पना है। यह उदात्त संकल्पना पं० दीनदयाल उपाध्याय द्वारा संपूर्ण मानवता को दिया गया एक अनुपम उपहार है, जो उनके सशरीर नहीं होने के बावजूद प्रखरता के साथ समूचे विश्व को प्रकाशित कर रहा है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद संप्रदायवाद को प्रश्रय नहीं देता। यह सबको साथ लेकर चलने वाली विचारधारा है। यह अतीत, वर्तमान और भविष्य को समाहित कर देश को आगे बढ़ाता है। यह कोई भौगोलिक इकाई नहीं है, बल्कि एक अनुभूति है जो राष्ट्र के विभिन्न समुदायों और संस्कृतियों को परस्पर जोड़ती है। इसकी जड़ें भारतीय जनमानस में विद्यमान हैं, क्योंकि इस देश के चिंतन में मानव जाति के कल्याण की कामना की गई है। “सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः” की कामना की गई है।

पंडित जी का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र के सतत विकास को निश्चित करता हुआ जन-जन को भारत बोध से परिचित कराता है और दृढ़ता से यह स्पष्ट करता है कि भारत एक भौगोलिक सीमा में निर्मित राज्य मात्र नहीं है, अपितु एक सांस्कृतिक नींव पर खड़ा हुआ गौरवशाली राष्ट्र है, जिसका इतिहास वैभवशाली रहा है। भारत की सांस्कृतिक विरासत उसे एक राष्ट्र के रूप में पहचान देती है। संस्कृतिवाद ही राष्ट्र के लिए आवश्यक तत्व है और उत्तम मार्ग है। केवल संस्कृतिवादी लोग ही ऐसे हैं, जिनके समक्ष और कोई ध्येय नहीं है। संस्कृति ही भारत की आत्मा है, जिससे लोग भारत की रक्षा और विकास कर सकते हैं।

13.5 सारांश— पं० दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद राजनीतिक नहीं, भौतिकवादी नहीं, सांस्कृतिक है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्रीय पहचान का सभ्यतामूलक आधार और नागरिक जीवन का चरम उत्कर्ष है। यह साँझी विरासत से सम्बद्ध समुदायों का जीवंत गठजोड़ है, जो एक जैसा स्वप्न जीते हैं और एक जैसे भविष्य की संकल्पना करते हैं। इसी के कारण विश्व-बन्धुत्व की भावना विद्यमान है, मानव कल्याण की भावना है। इसी का प्रभाव है कि सभी मातृभूमि को पुण्यभूमि समझते हुए प्यार और सम्मान देते हैं, वन्दे मातरम का उद्घोष करते हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की वजह से ही हमारे

देश में विविधता में एकता है। यही सांस्कृतिक चेतना प्रत्येक विपरीत परिस्थिति में हमारे भीतर एकत्व का भाव पैदा करती है, समन्वयवादी बनाती है। इसी सांस्कृतिक विरासत के कारण ही हम एक राष्ट्र के रूप में सदैव अपने अस्तित्व को बचाने में सफल रहे।

13.6 शब्दावली— राष्ट्र, संस्कृति, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

13.7 प्रश्नावली—

- 1- पं० दीनदयाल उपाध्याय के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकल्पना का विवेचन कीजिए।
- 2- पं० दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद भौगोलिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक है। समझाइए।
- 3- भारतीय संस्कृति, राष्ट्र से किस प्रकार सम्बद्ध है? स्पष्ट कीजिए।

13.8 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ —

- 1- उपाध्याय, दीनदयाल, *एकात्म मानववाद: तत्वमीमांसा सिद्धांत विवेचन*, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2020।
- 2- शर्मा, महेश चंद्र, *आधुनिक भारत के निर्माता : पंडित दीनदयाल उपाध्याय*, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 2017।
- 3- गुरुदेव, डॉ० गुप्तिसागर जी, *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अग्रदूत : पं० दीनदयाल उपाध्याय*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023।
- 4- शर्मा, डॉ० महेश चंद्र (संपादक), *दीनदयाल उपाध्याय : संपूर्ण वाङ्मय*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016।

खण्ड—07

खण्ड परिचय : बी. आर. अम्बेडकर

प्रस्तुत खण्ड में समकालीन भारत के महान चिंतक, समाज सुधारक बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक चिंतन पर प्रकाश डाला गया है। यह खण्ड दो इकाइयों में विभाजित है। पहली इकाई में उनके सामाजिक दर्शन का विवेचन किया गया है। दूसरी इकाई में उनके धार्मिक और राजनीतिक अनुचिंतन को विवेच्य विषय बनाया गया है।

इकाई 14 में डॉ० बी. आर. अम्बेडकर के सामाजिक चिन्तन को व्याख्यायित किया गया है। इसके अन्तर्गत भारतीय समाज व्यवस्था या यूँ कहें कि हिन्दू समाज व्यवस्था का विश्लेषण किया गया है। इसमें समाज व्यवस्था के प्रमुख अंग जाति को विमर्श के केन्द्र में रखा गया है। जाति, उसकी उत्पत्ति, उसका समाज पर प्रभाव, अस्पृश्यों की स्थिति, समाज की पुनर्चना इत्यादि का विवेचन हुआ है।

इकाई 15 में डॉ० भीमराव अम्बेडकर की धार्मिक और राजनैतिक चिंतन धारा पर प्रकाश डाला गया है। धार्मिक चिंतन के अन्तर्गत वे हिन्दू धर्म को विमर्श का विषय बनाते हैं, उसके दोषों को उजागर करते हैं और दलितों को धर्म-परिवर्तन का मंत्र देकर बौद्ध धर्म में जाने की ओर प्रेरित करते हैं। राजनैतिक चिंतन के अन्तर्गत वे दलितों की राजनीति में भागीदारी, राज्य, कानून, जनतंत्र इत्यादि विषयों पर विचार प्रकट करते हैं।

इकाई 14

सामाजिक दर्शन

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 सामाजिक चिंतन

14.3 सारांश

14.4 शब्दावली

14.5 प्रश्नावली

14.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

.....0000.....

14.0 उद्देश्य—

- डॉ० भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचारों पर चिंतन करना।
- डॉ० अम्बेडकर की जाति संबंधी अवधारणा स्पष्ट करना।
- समाज में अस्पृश्यों की स्थिति पर प्रकाश डालना।

14.1 प्रस्तावना— डॉ० अम्बेडकर मूलतः एक समाज सुधारक व्यक्ति हैं। वे ऐसे मानव समाज की स्थापना करना चाह रहे थे, जो समता, स्वतंत्रता और भातृत्व की भावना पर खड़ा हो। यदि किसी समाज में ऐसा नहीं है तो वह समाज कैसा? तत्कालीन हिन्दू समाज में उन्हें इन मूल्यों की कमियाँ दिखी। उनका मानना था कि अस्पृश्यों की समस्या का सीधा संबंध हिन्दुओं के सामाजिक व्यवहार से है। अस्पृश्यों के राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित होने के पीछे हिन्दुओं की सामाजिक मनोवृत्ति है। इसीलिए उन्होंने अपने समाज चिन्तन में हिन्दू सामाजिक संरचना में दलितों की स्थिति, जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था इत्यादि पर गम्भीर प्रकाश डाला।

14.2 सामाजिक चिंतन— डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने अपने सामाजिक चिंतन में हिन्दू समाज का विश्लेषण किया। वे कहते हैं कि हिन्दू ही ऐसी जाति है जिसने समाज व्यवस्था का, मानव-मानव के आपसी संबंध का, अर्थव्यवस्था का धर्म द्वारा पवित्रीकरण किया और उसे पवित्र, शाश्वत और अलंघ्य बना दिया। ऐसा नहीं है कि केवल हिन्दुओं के पास ही धर्म की पवित्र संहिता है। पारसियों, इजराइलियों, मुस्लिमों और ईसाइयों के पास भी ऐसी ही पवित्र संहिताएं हैं। परन्तु न तो वे आदेश थोपते हैं और न ही वे समाज व्यवस्था के किसी विशेष स्वरूप का पवित्रीकरण करते हैं। हिन्दुओं की इस प्रवृत्ति ने जातिप्रथा जैसे दोष को शक्ति प्रदान की।

डॉ० अम्बेडकर ने जाति का विश्लेषण किया, जो भारतीय सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण अंग है। वे कहते हैं कि किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति निश्चित और और वंशानुगत होती है। निश्चित इसलिए है, क्योंकि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण उसकी जाति की सामाजिक स्थिति के अनुसार होता है। वंशानुगत इसलिए है, क्योंकि हिन्दू पर उसके माता-पिता के जाति का ठप्पा लगा होता है। हिन्दू अपनी सामाजिक स्थिति नहीं बदल सकता, क्योंकि वह अपनी जाति नहीं बदल सकता। यदि वह अपनी जाति से अलग हो जाए तो वह अपनी सामाजिक स्थिति से अलग हो जाता है।

जाति व्यवस्था बहुत प्राचीन सामाजिक व्यवस्था है। जाति को परिभाषित किया जाय तो यह परिवारों का समूह है, जो विवाह, खान-पान, आचार-व्यवहार के स्तर पर समान है। जाति के अन्तर्गत विवाह बंधन के कारण ही जाति व्यवस्था सुरक्षित रह सकी है। वे कहते हैं कि जाति के अन्तर्गत विवाह का बंधन पहले भी कठोर था और आज भी है। परन्तु यदि स्त्री-पुरुष की संख्या के बीच बड़ा अन्तर हो जाए तो यह कठोरता कम होती जाएगी। यदि स्त्रियों की संख्या अधिक हो जाए तो जाति के अन्तर्गत विवाह होने में परेशानी आएगी। ऐसा न हो, इसलिए प्राचीन काल में इसके लिए कुछ उपाय खोजे गए। पहला, सती प्रथा, जिसमें पति की मृत्यु के बाद स्त्री भी चिता के साथ जल जाती थी। दूसरा, पूरी जिन्दगी स्त्री पर वैधव्य डालना। तीसरा, विधुर पर ब्रह्मचर्य लादना। चौथा, कम उम्र की लड़की का विवाह अधिक उम्र के पुरुष के साथ करना। इन सबका परिणाम यह हुआ कि जाति व्यवस्था को बल मिला।

वे मानते हैं कि समाज वर्गों से बनता है, व्यक्ति से नहीं। व्यक्ति अपनी सुविधानुसार किसी न किसी वर्ग की इकाई बनकर रहना चाहता है। इन्हीं वर्गों का रूपान्तरण जाति में हुआ। सबसे पहले ब्राह्मण वर्ग जाति में बदला। उनका मानना था कि इसी वर्ग ने इस देश की जनता पर जाति प्रथा लादी। अन्य तीन वर्गों क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का भी रूपान्तरण जाति में हुआ। वे अपना एक सीमित वर्ग बना लिए जिसे जाति कहा गया और अपने से इतर वर्गों का प्रवेश बन्द कर दिया। सबसे पहले यह कार्य ब्राह्मणों ने किया। धीरे-धीरे अन्य वर्गों ने भी इनका अनुकरण करना शुरू कर दिया। जाति-अन्तर्गत विवाह कठोर होते गए, उनके

शास्त्र ग्रंथ बने। क्षत्रियों में भी ऐसी ही कठोरता थी। लेकिन नीचे के वर्गों में क्रमशः कठोरता कम होती गई। जाति-पद्धति को बनाए रखने के लिए बनाई गई प्रथाओं का विरोध भी हुआ, परिणाम यह हुआ कि ऐसे विद्रोहियों को जाति से बहिष्कृत कर दिया गया और इनकी नई जाति बनती गई। इस प्रकार जातियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई।

विवेचना का अगला बिन्दु यह हो सकता है कि विभिन्न जातियों का आपस में सम्बन्ध क्या है? इस पर वे कहते हैं कि विभिन्न जातियाँ अलग-थलग हैं। अपने आंतरिक मामलों में वे स्वाधीन और संप्रभु हैं। जातियाँ परस्पर अस्तित्ववान होती हैं, परन्तु एक-दूसरे में प्रवेश नहीं करती हैं। जातियों का दर्जा असमानता पर आधारित है। जातियों में ऊँच-नीच का अनुक्रम होता है, वे समस्तरीय नहीं होती हैं। अब प्रश्न यह है कि इस ऊँच-नीच का जो निर्धारण होता है, उसका आधार क्या है? इसका उत्तर है कि यह धार्मिक संस्कारों और सहभोजिता से तय होता है। उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म में सोलह संस्कार की प्रथा है, परन्तु सभी जातियों को यह अधिकार नहीं है कि वे पूरे के पूरे सोलह संस्कार करा सकें। कुछ को पूरा कराने का अधिकार है, कुछ को कम का है। ऐसी ही उपनयन संस्कार के बारे में भी है। कुछ उसे धारण कर सकती हैं, कुछ नहीं। सहभोज की दृष्टि से देखें तो हिन्दू समाज में यह नियम तय कर दिए गए हैं कि किस जाति से भोजन प्राप्त किया जा सकता है और किस जाति से नहीं। ब्राह्मण जिस जाति से भोजन प्राप्त करेगा, वह उच्च जाति होगी, वहीं जिससे नहीं लेगा, वह निम्न जाति होगी।

डॉ० अम्बेडकर कहते हैं कि चारों वर्ण पर विचार करें तो उसमें स्पृश्यों का एक अलग वर्ग बन गया जो अपने आप को अस्पृश्यों से भिन्न और उच्च समझने लगे। उनका मानना था कि श्री गांधी की भांति जो लोग चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को समाज का आदर्श रूप मानते हैं वे या तो चारों वर्णों के आपसी संबंधों के इतिहास को नहीं जानते अथवा किसी भ्रम में हैं या फिर उस प्रयोजन के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं, जिसे पूरा करना ही उनका उद्देश्य है। क्योंकि चारों वर्णों ने कभी ऐसे समाज का गठन नहीं किया जो भाईचारे पर या सहकारी प्रयास पर टिके आर्थिक संगठन पर आधारित हो। चारों वर्ण केवल आपसी विद्वेष की भावना से भरे हुए हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि हिन्दुओं का सामाजिक इतिहास न केवल वर्ग-संघर्ष का सामाजिक इतिहास है, बल्कि यह इतनी कट्टरता से लड़ा गया वर्ग-युद्ध है कि मार्क्सवादी भी उसकी जोड़ के समानान्तर दृष्टांत आसानी से प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे। ऐसा लगता है कि जो सर्वप्रथम वर्ग-संघर्ष हुआ, उसमें एक पक्ष ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का था और दूसरा शूद्रों का था।

डॉ० अम्बेडकर कहते हैं कि जाति व्यवस्था के बारे में जब बात होती है तो वह सवर्ण हिन्दुओं पर चर्चा ही प्रमुखता से विवेच्य विषय होता है। लेकिन अवर्ण हिन्दुओं पर चर्चा किए बिना हिन्दू समाज की संरचना को ठीक से नहीं समझ सकते। प्रश्न है कि अवर्ण हिन्दू कौन हैं? हिन्दू समाज में उनका क्या स्थान है?

सवर्ण हिन्दुओं से उनका क्या सम्बन्ध है? अवर्ण हिन्दुओं के तीन भाग हैं— आदिम जातियाँ, जरायम—पेशा जातियाँ, और अस्पृश्य जातियाँ। सवर्ण और अवर्ण जातियों के मध्य संबंध पर बात करें तो यह सीधा नहीं है। सवर्ण और दो अवर्ण जातियों—आदिम और जरायम पेशा के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंध है, जबकि सवर्ण और अस्पृश्यों के मध्य सम्मानजनक शर्तों पर मैत्रीपूर्ण संबंध की संभावना नहीं है। यह विभेद कुछ वैसा ही है जैसा कि द्विजों और शूद्रों के बीच का है। ध्यातव्य है कि सवर्ण शाखा की शूद्र जातियों और अवर्ण शाखा की आदिम और जरायम पेशा जातियों के मध्य मामूली अन्तर है। इनके बीच सांस्कृतिक विकास का अन्तर है। इस सांस्कृतिक अन्तर को समझना होगा। हिन्दुओं ने शूद्रों के दो वर्ण बताए हैं— सुसंस्कृत शूद्र और शूद्र। शूद्रों के प्राचीन वर्ग को सुसंस्कृत शूद्र कहा गया और आदिम जाति सहित उन लोगों को शूद्र कहा गया जो हिन्दू सभ्यता की परिधि में आ गए थे। इस अन्तर के पीछे तथ्य यही था कि कुछ शूद्र हिन्दुओं के साथ सहजीवन कर सकते हैं, कुछ नहीं कर सकते। अवर्ण जातियों के आपस के सम्बन्ध को देखें तो आदिम और जरायम पेशा जातियाँ अपने आप को उच्च और अस्पृश्यों को निम्न मानती हैं। इस विभाजन में सबसे कठोर और स्थाई विभाजन है—द्विज, शूद्र, आदिम और जरायम पेशा जातियों एवं अस्पृश्यों के मध्य। अस्पृश्यों के अतिरिक्त शेष तीनों वर्ग एक घेरे में आ सकते हैं, परन्तु अस्पृश्य के साथ कभी नहीं रहेंगे। अस्पृश्य अलग-थलग रहने के लिए विवश हैं। बम्बई के एक सम्मेलन में सनातनी नेता ऐनापुरे शास्त्री ने कहा कि हिन्दुओं का अस्पृश्यों के साथ वही सम्बन्ध है, जैसा कि किसी मनुष्य का उसके जूतों के साथ होता है। भले ही मनुष्य उसे पहनता है, लेकिन वह उसके शरीर का अंग नहीं कहा जा सकता।

उनका मानना था कि जाति एक मानसिकता बन गई है, जिसे बदलना कठिन है। जाति को धार्मिकता से जोड़ दिया गया है और शास्त्रों में जाति प्रथा को बनाए रखा गया है। जाति और वर्ण को मानने वाले लोगों के आचरण के मूल में हजारों वर्षों से चली आ रही श्रद्धाएँ हैं, समर्थन करने वाला शास्त्र है। इसलिए शास्त्र और परम्परा का पुरजोर खण्डन करना आवश्यक है। जब तक वर्ण व्यवस्था की जड़ों पर आघात नहीं किया जाएगा, तब तक अस्पृश्यता की धारणा समाप्त नहीं होगी। वे कहते हैं कि वर्णव्यवस्था के आधार पर हिन्दू समाज का पुनर्गठन असम्भव है। वर्ण व्यवस्था कानूनन बन्द होनी चाहिए। जाति व्यवस्था व्यवस्था के जो दोष हिन्दू समाज में आए उससे मुक्ति के लिए वे अन्तरजातीय विवाह पर जोर देते हैं। अन्तरजातीय विवाह अधिक होते जायें तो जाति बंधन कमजोर होते जाएंगे। एक—दूसरे के प्रति आत्मीयता बढ़ेगी।

डॉ० अम्बेडकर का मानना है कि उच्च वर्ण वालों की रुचि कभी जाति या वर्णभेद नष्ट करने की नहीं हुई। वे पारिवारिक सुधारों तक ही सीमित रहे। जाति और वर्ण के कारण उपेक्षित समाज की यातना को वे कभी समझ नहीं पाए। समाज रचना में परिवर्तन की दृष्टि अंग्रेजों के आने के बाद पनपी। वे कहते हैं कि जाति व्यवस्था ने श्रम विभाजन किया, साथ ही श्रमिकों का भी विभाजन किया। केवल श्रमिकों का विभाजन कर वह नहीं रुकती, बल्कि श्रमिकों के एक—एक समूह को वह नीचे से ऊपर की ओर, एक—दूसरे पर

रखती जाती है और सबसे भयंकर बात यह है कि यह क्रमबद्धता जन्म के आधार पर हमेशा के लिए चिपका दी जाती है। विश्व के किसी भी देश में श्रम-विभाजन को श्रमिकों के सामाजिक स्तर के साथ चिपकाया नहीं गया है। उद्योग-व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता इस हिन्दू समाज रचना ने नहीं दी है। बात केवल यहीं तक सीमित नहीं है, अपितु श्रम के अनेक व्यवसायों को परम्परा ने घृणास्पद घोषित कर दिया और उन व्यवसायों को करने वाली जातियों को भी घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखा। इस कारण मनुष्य की ऊर्जा शक्ति, उसकी संवेदन क्षमता ही नष्ट हो गई। जब सम्पूर्ण समाज किसी समूह को तिरस्कार, उपेक्षा और अस्पृश्य के रूप में देखने लगता है तो वह समूह स्वभावतः संवेदनशून्य बन ही जाता है।

वस्तुतः डॉ० भीमराव अम्बेडकर सम्पूर्ण समाज की पुनर्रचना की बात कर रहे थे। क्योंकि छोटे-मोटे उपचार से विषमता का यह रोग समाप्त नहीं होगा। समग्र व्यवस्था की पुनर्रचना के लिए उसकी नींव ही उखाड़ देना आवश्यक है। वर्ण और जाति-व्यवस्था की नींव पर हिन्दू समाज की इमारत खड़ी हुई है। वे इसे समाप्त कर ऐसी समाज व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील थे जिसमें मनुष्य, मनुष्य के प्रति आदर, प्रेम, करुणा और मानवता से जुड़ा हो।

14.3 सारांश— डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने सामाजिक दर्शन के अन्तर्गत हिन्दू समाज का चिंतन किया, जिसमें वे प्रमुखता से जाति-व्यवस्था का विश्लेषण किए। जाति व्यवस्था अति प्राचीन है जो वर्ण व्यवस्था से उत्पन्न हुई। उनका मानना था कि जाति एक अति संगठित सामाजिक वर्गीकरण है। यह कोई असंगठित या कमजोर निकाय नहीं है। हिन्दुओं में व्यक्ति जन्म लेता है और मरने के बाद भी उसी जाति का बना रहता है। ऐसा कोई हिन्दू नहीं, जिसकी कोई जाति न हो। जन्म से मृत्यु तक जाति से बंधे रहने के कारण वह अपनी जाति के ऐसे नियमों तथा रूढ़ियों के अधीन रहता है, जिस पर उसका कोई नियंत्रण नहीं होता है। जाति और वर्ण व्यवस्था समाज में हर प्रकार की विषमता का कारक है, जाति ने ही समाज के एक वर्ग को अस्पृश्य बताकर उसका तिरस्कार किया, उसके साथ अमानवीय बर्ताव किया। इसलिए ऐसी घृणित व्यवस्था का समाप्त होना आवश्यक है। इसके लिए समाज में थोड़े बदलाव से काम नहीं चलेगा, पूरे समाज की पुनर्रचना करनी होगी। तभी मनुष्य को न्याय मिलेगा और समाज समता, बन्धुता और करुणा जैसे मानवीय मूल्यों पर खड़ा हो सकेगा।

14.4 शब्दावली— दलित, अछूत, जाति, वर्ण, सवर्ण, अवर्ण, अस्पृश्य

14.5 प्रश्नावली—

- 1 भीमराव अम्बेडकर भारतीय समाज व्यवस्था का किस प्रकार विश्लेषण करते हैं? व्याख्या कीजिए।
- 2 डॉ० बी. आर. अम्बेडकर के अनुसार जाति-व्यवस्था की अवधारणा का विवेचन कीजिए।
- 3 हिन्दू समाज में अस्पृश्यों की स्थिति पर अम्बेडकर के विचारों की व्याख्या एवं परीक्षा कीजिए।

14.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ –

- 1 जाफ़्रलो, क्रिस्तोफ, भीमराव आंबेडकर : एक जीवनी, अनुवाद-योगेन्द्र दत्त, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2022।
- 2 भटनागर, डॉ० राजेन्द्रमोहन, डॉ० अम्बेडकर : चिन्तन और विचार, जगताराम एण्ड संस, दिल्ली, 2017।
- 3 रणसुभे, डॉ० सूर्यनारायण, डॉ० बाबासाहेब आंबेडकर : विवेचनापरक जीवनी, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, दिल्ली, 2023।
- 4 सिन्हा, रमेश चन्द्र एवं विजयश्री, समकालीन भारतीय चिंतक, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2013।
- 5 सेठ, कैलाश चन्द्र (सं०), बाबासाहेब डॉ० अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाङ्मय, डॉ० अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2013।

इकाई 15

धार्मिक राजनैतिक चिन्तन

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 धार्मिक सिद्धांत

15.3 राजनैतिक सिद्धांत

15.4 सारांश

15.5 शब्दावली

15.6 प्रश्नावली

15.7 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

15.0 उद्देश्य—

- डॉ० भीमराव अम्बेडकर के धार्मिक विचारों पर चिंतन करना।
- डॉ० अम्बेडकर के राजनैतिक विचारों पर प्रकाश डालना।

15.1 प्रस्तावना— डॉ० अम्बेडकर मूलतः एक समाज सुधारक व्यक्ति हैं, इसलिए उनके धार्मिक—राजनैतिक सिद्धांत समाज रचना के विश्लेषण से ही सम्बद्ध हैं। धार्मिक सिद्धांत के लिए वे हिन्दू धर्म का विश्लेषण करते हैं, उसकी विषमताओं को उजागर करते हैं। फिर वे बौद्ध धर्म के प्रति उद्गार प्रकट करते हैं और दलितों को हिन्दू धर्म से बौद्ध धर्म में धर्मान्तरण का आह्वान करते हैं। अपनी राजनैतिक विचारयात्रा में वे राज्य की नीति को जीवन की नीति से सम्बद्ध करना चाहते थे। उनकी राजनीति समतावादी, मानवतावादी, बुद्धिवादी और सृजनात्मक थी। वे दलितों के मानवीय अधिकार के लिए राजनीति में उनकी सक्रिय हिस्सेदारी आवश्यक मानते थे। जिसके लिए वे संसदीय व्यवस्था, जनतांत्रिक व्यवस्था को सहायक मानते थे।

15.2 धार्मिक सिद्धांत— डॉ० भीमराव अम्बेडकर धर्म का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान मानते थे। धर्म को वे विशुद्ध नैतिकता मानते थे। वे मानते थे कि धर्म व्यक्ति की आशा को, उसके परिश्रम और उसकी जिद

को बनाए रखने की अद्भुत शक्ति होती है। विशेषतः गरीबों के जीवन में धर्म बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धर्म व्यक्ति के आचरण को नियंत्रित करता है और उसे भविष्य के प्रति आस्थावान बनाए रखता है। लेकिन वे इस बात पर भी स्पष्ट मत रखते थे कि जो धर्म हमारी चिन्ता करता हो, हमें अवसर प्रदान करता हो, उसके लिए हम प्राण तक देने को तैयार हैं। परन्तु, जो धर्म हमारी परवाह नहीं करता, उसकी हम भी परवाह नहीं करेंगे। अपने धार्मिक चिंतन के अन्तर्गत उन्हें हिन्दू धर्म में अनेक दोष दिखाई दिए, जिनका विवेचन आगे किया जाएगा।

उनका मानना था कि धर्म के कर्म तथा प्रयोजन को समझने के लिए आवश्यक है कि धर्म को ईश्वर—मीमांसा से अलग किया जाए। धर्म के प्रमुख अंग हैं—रीति—रिवाज, प्रथाएं, अनुष्ठान और कर्मकाण्ड। ईश्वर—मीमांसा गौण पक्ष है। यह भी आवश्यक है कि धर्म को अलौकिक न माना जाए। वास्तव में धर्म का प्रमुख पक्ष सामाजिक है। उसकी अनदेखी करना उचित नहीं है। पूर्व में बर्बर समाज का जीवन और जीवन के संरक्षण से गहरा संबंध था। जीवन की ये प्रक्रियाएं ही बर्बर समाज के धर्म का सार और स्रोत बनीं। जीवन और जीवन के संरक्षण से बर्बर समाज का इतना गहरा सरोकार था कि उसने उन्हें अपने धर्म का आधार ही बना डाला। बर्बर समाज के धर्म में जीवन और उसे संरक्षित रखने की प्रक्रिया इतनी महत्वपूर्ण थी कि उन्हें प्रभावित करने वाली हर वस्तु उनके धर्म का अंग बन गई। जो बात बर्बर समाज के बारे में सच है, वही सर्वत्र सब धर्मों के बारे में सच है, क्योंकि वही धर्म का सार है। इतना ही नहीं, यही बात आधुनिक समाज के बारे में भी सच है।

डॉ० अम्बेडकर आगे कहते हैं कि धर्म की उत्पत्ति और इसके इतिहास के छात्रों ने जब बर्बर समाज का अपना अध्ययन प्रारम्भ किया तो वे बर्बर समाज से जुड़े जादू—टोनों, पूजा—प्रतीकों, रीति—रिवाजों और कर्मकाण्डों में इतना खो गए कि उन्होंने न केवल धर्म के मूल तत्व के रूप में बर्बर समाज की सामाजिक प्रक्रियाओं की ही अनदेखी की, बल्कि वे जादू—टोने और अन्य अलौकिक प्रक्रियाओं की समुचित कार्य—प्रणाली को भी नहीं समझ पाए। यह एक भारी भूल थी और धर्म से सरोकार रखने वाले सभी लोगों के लिए बड़ी मंहगी भूल सिद्ध हुई, क्योंकि उसी के कारण धर्म के संबंध में भारी गलतफहमी पैदा हुई। वे धर्म को जादू—टोने तक ही सीमित कर दिए। जादू—टोना धर्म का केवल साधन मात्र है, साध्य है—जीवन की रक्षा। आज जादू—टोने का स्थान ईश्वर ने ले लिया है, इसलिए वह भी साधन ही है, साध्य है— जीवन का परिरक्षण।

धर्म समाज के लिए है। धर्म सामाजिक मूल्यों पर बल देता है, उन्हें सर्वव्यापी बनाता है और उन्हें व्यक्ति के मन में बिठाता है। आगे डॉ० अम्बेडकर यह भी कहते हैं कि भले ही धर्म एक सामाजिक यथार्थ है, उसका विशिष्ट सामाजिक प्रयोजन है, परन्तु यदि किसी से धर्म को स्वीकारने की अपेक्षा की जाय तो

उसे यह प्रश्न पूछने का अधिकार होना चाहिए कि धर्म ने धर्म से जुड़े प्रयोजनों को कहाँ तक पूरा किया है। इस क्रम में वे हिन्दू धर्म के पक्षधरों से प्रश्न करते हैं कि क्या हिन्दू धर्म अस्पृश्यों को मानव प्राणी के रूप में स्वीकार करता है? उन्हें समानता का अधिकार देता है? उन्हें आजादी देता है? क्या हिन्दू धर्म हिन्दुओं को यह उपदेश देता है कि वे अस्पृश्यों के साथ मानवीय और न्यायोचित व्यवहार करें? क्या वह हिन्दुओं के मन में अस्पृश्यों के प्रति मैत्रीभाव का संस्कार डालता है? संक्षेप में कहें तो क्या हिन्दू धर्म बिना किसी भेद-भाव के जीवन के मूल्य को सर्वव्यापी बनाता है?

उनका मानना था कि कोई भी हिन्दू उपर्युक्त प्रश्नों का "हाँ" में उत्तर देने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि यह धर्म विषमता का समर्थन करता है। यह अस्पृश्यता का धर्म है जो दलितों को अछूत मानता है, उन्हें स्वीकार नहीं करता। उन्हें मन्दिर में प्रवेश का अधिकार नहीं है। इसके पीछे चार वर्णों को मानने की संकल्पना है। यही अस्पृश्यता की जननी है। इस वर्ण व्यवस्था की अवधारणा के मुख्य स्रोत ऋग्वेद के पुरुषसूक्त की वे आलोचना करते हैं और सिद्ध करते हैं कि अन्य भारतीय आर्ष ग्रंथ पुरुषसूक्त के इस विचार से सहमति नहीं रखते। उनका मानना था कि वेद स्वतः उत्पन्न नहीं हैं। वेद पौरुषेय हैं। पौरुषेय होने के कारण वेद में भी संशय, त्रुटि और दोष की संभावना है। वे वेदों को आध्यात्मिक और नैतिक भी नहीं मानते।

उनका मानना था कि धर्म मनुष्य के लिए है, मनुष्य धर्म के लिए नहीं है। जो धर्म आपके शिक्षा और ज्ञान के अधिकार को छीने, मनुष्य के रूप में स्वीकार न करे, भौतिक उन्नति में बाधा पहुँचाए, पीने के लिए पानी न दे, वह धर्म नहीं हो सकता। वह एक बीमारी है, एक भयावह कैदखाना है। ये सब बातें वो हिन्दू धर्म में देखते थे। हिन्दू धर्म की अनेक विषमताओं से असंतुष्ट होकर वे धर्म-परिवर्तन की राय देते हैं। इसके लिए वे बौद्ध धर्म को श्रेष्ठ मानते थे। इसके पीछे का कारण था कि एक तो वह भारत का ही धर्म है, विदेश से उपजा हुआ नहीं है, इसलिए धर्म-परिवर्तन से संस्कृति परिवर्तन का खतरा नहीं होगा। दूसरा कि यह धर्म स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर बल देता है। तीसरा, इसमें प्रश्न करने, शंकाएं करने, विचार करने को प्रोत्साहित किया जाता है, यहाँ शब्द प्रमाण की धारणा नहीं है, प्रत्यक्ष और अनुमान ही ज्ञान के साधन हैं। चौथा, यह कोई निर्णायक बात नहीं करता, यहाँ सदैव परिवर्तन की संभावना नहीं है, यही इसकी शक्ति है। पाँचवाँ, यह परलोक नहीं, इहलोक पर बल देता है, स्वर्ग-नरक के झँझट में न पड़कर यह पृथ्वी पर ही केन्द्रित है। छठा, यह व्यक्तिगत मुक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक मुक्ति पर बल देता है। सातवाँ, यह अंधश्रद्धा और मानव विवेक को कुँटित करने वाले आत्मा इत्यादि से जुड़े प्रश्नों को नकार दिया।

निष्कर्षतः वे धर्म को मनुष्य की उन्नति का एक साधन मानते थे। और इस उन्नति में वे हिन्दू धर्म को अक्षम पाते हैं। इसलिए वे धर्म-परिवर्तन का रास्ता अपनाकर दलितों को बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का

आह्वान करते हैं। दलित समाज को हिन्दू धर्म से निकालकर बौद्ध धर्म में प्रवेश करवाते समय उनका यह दृढ़ विश्वास था कि दलित बौद्ध धर्म के श्रेष्ठ मूल्य को अपनाएंगे। प्रखर बुद्धिवाद, अनात्मवाद और स्वयंभू शासन की वृत्ति को स्वीकार करते हुए वे संघटित होंगे, संघर्ष करेंगे और अपनी यातनाओं से मुक्त हो जाएंगे।

15.3 राजनैतिक सिद्धांत : डॉ० भीमराव अम्बेडकर का राजनीतिक विचार भी समाज से जुड़ा हुआ है, दलित समाज से। उनका मानना था कि दलितों के मानवीय अधिकार सवर्णों के हृदय परिवर्तन से प्राप्त नहीं हो सकते। वे दलितों के मानवीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए राजनीति में हिस्सेदारी को महत्वपूर्ण मानते थे। क्योंकि जब तक हिस्सेदारी नहीं होगी, तब तक दलित लोकतांत्रिक व्यवस्था में निर्णय प्रक्रिया से बाहर रहेंगे और अपने अधिकारों से वंचित रहेंगे। 1930 के प्रथम गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने कहा कि हमें अक्सर याद दिलाया जाता है कि दलित वर्ग की समस्या असल में एक सामाजिक समस्या है और इसका समाधान राजनीति के धरातल से नहीं, बल्कि कहीं और से ही निकलेगा। इस राय पर हमारी कड़ी आपत्ति है। हमारा मानना है कि दलित वर्ग की समस्या तब तक हल नहीं हो सकती, जब तक कि राजनीतिक सत्ता इस वर्ग के लोगों के हाथों में नहीं आ जाएगी।

वे जनतांत्रिक व्यवस्था के पक्षधर थे। जनतांत्रिक व्यवस्था को एक जीवन पद्धति मानते थे। वे जनतंत्र की सफलता के लिए मानते थे कि समाज व्यवस्था में विषमता न हो, विरोधी दल का अस्तित्व हो, कानून और प्रशासन की समानता हो, बहुसंख्यकों का मनमानापन न चलता हो, लोगों में संवैधानिक नैतिकता हो, इत्यादि। वहीं दरिद्रता, अशिक्षा, जाति-भेद, वर्ण-भेद को जनतंत्र के लिए बड़ा खतरा मानते थे। वे राजनीतिक जनतंत्र के लिए कुछ आधार की बात करते हैं— पहला, व्यक्तित्व विकास का लक्ष्य। दूसरा, व्यक्ति को कुछ अदेय अधिकार, जिसकी गारण्टी संविधान है। तीसरा, किसी वर्ग विशेष को अन्य व्यक्तियों पर नियंत्रण या शासन करने का अधिकार न मिले। चौथा, प्रत्येक व्यक्ति को शासन पर टिप्पणी करने का अधिकार प्राप्त हो। पाँचवाँ, कुछ विशेष अधिकारों को पाने के लिए उसे अपने संवैधानिक अधिकार छोड़ने न पड़े।

ध्यातव्य कि वे राजनीतिक जनतंत्र के पहले सामाजिक जनतंत्र का अस्तित्व में होना अत्यावश्यक मानते हैं। सामाजिक जनतंत्र, जैसे—स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का निर्माण यदि नहीं हो पाया है तो राजनीतिक जनतंत्र दुर्बल रहेगा, किसी भी क्षण समाप्त हो सकता है। उनके सामाजिक जनतंत्र की संकल्पना में दो बातें आवश्यक थीं— पहला, अपने सहयोगियों के प्रति बन्धुत्व की भावना और दूसरा, समता की दृष्टि और कठोर सामाजिक बन्धनों से मुक्ति। उनका मानना था कि जब तक 'सामाजिक चेतना' नहीं रहेगी, जनतंत्र सफल नहीं होगा और सामाजिक चेतना के लिए सामाजिक जनतंत्र आवश्यक शर्त है। सामाजिक जनतंत्र

के बिना मूल अधिकारों का कोई मतलब नहीं रह जाएगा, क्योंकि वे सामाजिक और नैतिक चेतना द्वारा ही संरक्षित होते हैं। यदि बहुसंख्यक समाज ही किसी वर्ग या व्यक्ति के मूल अधिकारों को स्वीकृत न दे रहा हो, विरोध कर रहा हो तो कानून भी उसके अधिकार सच्चे अर्थों में नहीं दिला सकता।

डॉ० अम्बेडकर जनतंत्र की सफलता के लिए कम से कम दो राजनीतिक पार्टियों को आवश्यक मानते हैं। उनका मानना था कि मजबूत विरोधी दल अवश्य होना चाहिए। एक ही व्यक्ति अथवा एक ही राजनीतिक दल के हाथों अगर सत्ता सुरक्षित रह जाए तो ऐसी स्थिति में उस राष्ट्र में संसदीय प्रणाली और जनतंत्र की हत्या हो जाती है, अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वे राजनीतिक पार्टियों को जनमत व्यक्त करने और उस जनमत को क्रियाशील करने का साधन मानते हैं। पार्टियां जनमत तैयार करती हैं, उसे मार्गदर्शन करती हैं, उस पर प्रभाव डालती हैं और उसे नियंत्रित करती हैं। उनके अनुसार पार्टियों को दो प्रमुख कार्य करने चाहिए। पहला, जनता से घनिष्ठ संबंध रखें और दूसरा, वे जनता के बीच प्रचार का कार्य करें, उन्हें संघटित करें। डॉ० अम्बेडकर स्वयं भी भारत के सभी दलित, शोषित और श्रमिकों को एक झंडे के नीचे लाकर उनका एक राजीतिक दल बनाना चाह रहे थे। परिणामतः 1936 में उन्होंने "स्वतंत्र मजदूर दल" की स्थापना की। बाद में इसी का रूपान्तरण "शेड्यूल कास्ट फेडरेशन" में हो गया।

अपने राजनीतिक पक्ष के अन्तर्गत कानून के बारे में डॉ० अम्बेडकर विचार व्यक्त करते हैं। उनका कहना है कि कानून व्यक्तियों के हित के लिए बनाए गए हैं। लेकिन इसमें समय के साथ सतत् संशोधन होते रहना चाहिए और वह भी सर्वसम्मति से। कानून सभी के लिए, सब जगह एक ही होना चाहिए। कानून मानवीय होना चाहिए, सामाजिक होना चाहिए। कानून की ओर जनता भय की दृष्टि से न देखे, उसके महत्व का शिक्षा द्वारा प्रचार-प्रसार होना चाहिए। भारतीय संविधान के घोषणापत्र में वे कानून के लिए कुछ मूल्यों की बात करते हैं, जो इस प्रकार हैं—पहला, कानून लोगों के हित के लिए होता है। दूसरा, कानून भय के स्रोत से मुक्त होता है। तीसरा, कानून धर्म-निरपेक्ष होता है। चौथा, वह ईश्वरीय प्रेरणा से नहीं बनता, वह मानव प्रेरणा से बनता है। पाँचवाँ, आवश्यकता और समय के अनुसार उसमें संशोधन और परिवर्तन किया जा सकता है।

डॉ० अम्बेडकर का मानना था कि एक सफल जनतंत्र के लिए आर्थिक विषमता उचित नहीं है। वे कृषि सम्बन्धों के सामाजिकीकरण पर बल दे रहे थे। उनका मानना था कि इस देश के किसानों का अक्सर शोषण हुआ है। वर्ण और जाति के सर्वोच्च शिखर पर बैठे हुए जातियों और वर्णों ने श्रमिकों, आदिवासियों और किसानों को उत्पादन की एक मशीन मात्र मान लिया है। इस मशीन के उत्पादन के सारे लाभ उन लोगों ने ही उठाए हैं। इस कारण उत्पादन के संबंधों को नए ढंग से पुनर्रचित करना होगा। इसके लिए

आवश्यक है कि सम्पूर्ण कृषि का राष्ट्रीयकरण किया जाए, जमींदारों और भूमि-मालिकों को भूमि का पैसा दिया जाए, सामूहिक खेती शुरू की जाए और श्रमिकों और मजदूरों को मजदूरी की गारण्टी दी जाए।

निष्कर्षतः उनके राजनीतिक चिंतन के केन्द्र में मनुष्य है। इस मनुष्य की अस्मिता, स्वाभिमान और स्वतंत्रता की रक्षा सत्ता और राजनीति करे, ऐसा उनका आग्रह था। मनुष्य के मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो और समाज के प्रत्येक वर्ग को सत्ता में साझेदारी मिले, ऐसी राजनीति संसदीय प्रणाली में ही संभव है। जब तक प्रत्येक की साझेदारी नहीं होगी तब तक आवश्यक सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक मूल्यों का निर्माण नहीं हो पाएगा। डॉ० अम्बेडकर राजनीति में जीवन-नीति को केन्द्र में रखते थे। उनकी मंशा थी कि जीवन-नीति से राजनीति निर्देशित हो। जीवन-नीति का निर्धारण समाज-नीति करे, वह भी ऐसा समाज जो समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर खड़ा हो।

15.4 सारांश— डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने अपने धार्मिक चिंतन के अन्तर्गत यह बताया कि धर्म मानव जीवन के लिए परम आवश्यक है। यह आशा का संचार करता है। धर्म का प्रमुख पक्ष सामाजिक है। उसे अलौकिक बनाना, ईश्वर से जोड़ना गलत है। धर्म मानव के लिए केवल साधन है और साध्य है—जीवन का परिरक्षण। उनका मानना है कि हिन्दू धर्म ने मानव समाज को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। इस धर्म से समाज में अन्याय, असमानता और अमानवीयता पनपी। वे वर्ण-व्यवस्था और वेदों की आलोचना करते हैं। उनका मानना है कि वर्ण-व्यवस्था ने ही अस्पृश्यता को जन्म दिया। वेदों को वह मानवीय कृति और विभिन्न दोषों से युक्त मानते हैं। हिन्दू धर्म को सदोष बताते हुए वे इससे मुक्त होने का स्थाई उपाय खोजते हैं— धर्म-परिवर्तन। हिन्दू धर्म से बौद्ध धर्म में परिवर्तन का आग्रह करते हैं, जो मैत्री, करुणा, समानता, बंधुत्व के मूल्यों को लेकर चलता है।

अपने राजनैतिक अनुचिंतन में वे दलितों को राजनीति से जुड़ने की बात करते हैं, जिससे वे अपने अधिकार प्राप्त कर सकें। वे जनतांत्रिक व्यवस्था को बहुत अच्छा मानते हैं। वे राजनैतिक जनतंत्र के हिमायती थे, लेकिन उसके पहले वे सामाजिक जनतंत्र प्राप्त करना चाहते थे। जब तक समाज में समानता, बंधुता, स्वतंत्रता नहीं है तब तक राजनैतिक जनतंत्र सफल नहीं होगा। वे एक राजनीतिक पार्टी के पक्षधर नहीं थे। उनका मानना था कि कम से कम दो पार्टी होनी चाहिए। उन्होंने कानून पर विचार व्यक्त किया। उसे सतत् संशोधनीय, परहितकारी और धर्म-निरपेक्ष माना। अन्ततः वे मानव कल्याण, मानव-प्रतिष्ठा की रक्षा का दायित्व सत्ता और राजनीति को देते हैं। लेकिन ऐसी सत्ता और राजनीति के लिए संसदीय प्रणाली आवश्यक मानते हैं।

15.5 शब्दावली— धर्म, धर्म-परिवर्तन, दलित, राजनीति, जनतंत्र, सामाजिक चेतना

15.6 प्रश्नावली—

- 1- भीमराव अम्बेडकर हिन्दू धर्म का किस प्रकार विश्लेषण करते हैं? व्याख्या कीजिए।
- 2- धर्म—परिवर्तन पर अम्बेडकर के विचारों की व्याख्या एवं परीक्षा कीजिए।
- 3- डॉ० बी. आर. अम्बेडकर के राजनैतिक चिंतन पर प्रकाश डालिए।
- 4- जनतंत्र पर अम्बेडकर के विचारों की विवेचना कीजिए।

15.7 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ —

- 1- जाफ़लो, क्रिस्तोफ, *भीमराव आंबेडकर : एक जीवनी*, अनुवाद—योगेन्द्र दत्त, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2022।
- 2- भटनागर, डॉ० राजेन्द्रमोहन, *डॉ० अम्बेडकर : चिन्तन और विचार*, जगताराम एण्ड संस, दिल्ली, 2017।
- 3- रणसुभे, डॉ० सूर्यनारायण, *डॉ० बाबासाहेब आंबेडकर : विवेचनापरक जीवनी*, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, दिल्ली, 2023।
- 4- सिन्हा, रमेश चन्द्र एवं विजयश्री, *समकालीन भारतीय चिंतक*, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2013।
- 5- सेट, कैलाश चन्द्र (सं०), *बाबासाहेब डॉ० अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाङ्मय*, डॉ० अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2013।

खण्ड—8 : महात्मा गांधी

खण्ड परिचय

इस खण्ड में इकाई 16, इकाई 17 एवं इकाई 18 का अध्ययन करेंगे।

इकाई—16 : सत्य अहिंसा —सत्य और अहिंसा के पालन द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य को सामाजिक सहयोग की भावना से दूसरों को बिना कष्ट पहुंचाये पूरा करता है। यदि सत्य और अहिंसा को अपनी दृष्टि से सम्पूर्ण समाज का संचालन करना हो तो शांति, सद्भाव, भाईचारा, विकास, सहयोग, सहिष्णुता तथा सर्वधर्म समभाव की भावना स्वतः व्याप्त हो जायेगी। सत्य और अहिंसा मानव जीवन को खुशहाल करने, प्रगति करने तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। इन दोनों का प्रयोग करने वाला मनुष्य कभी भी अनैतिक, अमानवीय, अराजक, तथा असंतुष्ट नहीं रह सकता है। सत्य और अहिंसा गाँधीजी के द्वारा व्यावहारिक जीवन में लाया गया महत्वपूर्ण परिवर्तन है। इसका अनुकरण सभी मानव जाति को करना चाहिए।

इकाई—17 सत्याग्रह— सत्याग्रह मौलिक रूप से गाँधीजी से सम्बन्धित नहीं था उनसे पहले भी उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, कुरान जैसे धार्मिक तथा अन्य अनेक पुस्तकों में सत्याग्रह के विचार का व्यापक उल्लेख मिलता है। इसे व्यवहार में उतारने का काम प्रहलाद, राजा हरिश्चन्द्र, सुकरात, प्लेटो, ईसा मसीह, सम्राट अशोक जैसे अनेक भारतीयों और पाश्चात्य चिंतकों ने समय-समय पर किया है।

इकाई—18 सर्वोदय का अर्थ एवं उत्पत्ति— इस इकाई में सर्वोदय के अर्थ, उत्पत्ति तथा स्रोत के बारे में विस्तृत चर्चा करना है। इसके विभिन्न पक्षों का अवलोकन कर हम इससे प्राप्त होने वाले लाभों का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। लियो टालस्टाय, थोरो, भगवद्गीता, जैनवाद तथा बुद्धवाद में सर्वोदय का हम स्पष्ट व्याख्या देखते हैं। इन सबक मूल एक है बस कहने का तरीका अलग-अलग है। सभी इस बात पर बल देते हैं कि समाज के सभी वर्गों का सभी प्रकार से उदय हो इसमें किसी को भी कोई भेदभाव नहीं करना चाहिए।

.....000.....

इकाई—16 : सत्य अहिंसा

इकाई का रूपरेखा

- 16.0 उद्देश्य
- 16.1 प्रस्तावना
- 16.2 सत्य और अहिंसा
 - 16.2.1 गाँधीजी के अहिंसा की अवधारणा
- 16.3 सत्य व अहिंसा का प्रभाव
- 16.4 सारांश
- 16.5 शब्दावली
- 16.6 उपयोगी पुस्तकें
- 16.7. बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद इस योग्य होना चाहिए कि आप –

- सत्य और अहिंसा के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा इसके द्वारा हम कैसे न्यास की स्थापना कर सकें।
- सामाजिक न्याय की स्थापना में सत्य और अहिंसा की विचार धारा को ग्रहण करायें
- कैसे सत्य और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं।
- गाँधीजी ने सत्य और अहिंसा को निहत्थों का हथियार बताया इसकी जानकारी प्राप्त कर सकें।

16.1 प्रस्तावना –

इस इकाई का उद्देश्य सत्य और अहिंसा के द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक परिवर्तन पर चर्चा करेंगे। गाँधीजी की मूल परिकल्पना में अहिंसा का स्थान सर्वोपरि है। अहिंसा और सत्य का गाँधीजी ने सूक्ष्म विप्लेषण कर उसे व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रयोग किया। एक व्यवहारिक आदर्शवादी की तरह गाँधीजी ने हमेशा सत्य व अहिंसा दोनों की बात की। अपने व्यवहारिक आदर्शवाद की तह में जाकर उन्होंने अहिंसा के व्यवहारिक प्रयोग को अमली जामा पहनाया तथा विश्व को अहिंसक क्रांति का एक नया अस्त्र दिया।

गाँधीजी के अहिंसा के सिद्धांत एवं उसके प्रयोग की जितनी आवश्यकता उनके जीवित रहत थी आज इसकी आवश्यकता उससे ज्यादा महसूस की जा रही है।

गाँधीजी ने अहिंसा के विभिन्न प्रयोग किए। साथ ही इन प्रयोगों में वे सफल रहे। गाँधीजी की अहिंसा को समाज से विमुक्त नहीं करती बल्कि इसे समाज में अहिंसा के प्रयोग को करने को प्रेरित करती है।

16.2 सत्य और अहिंसा

हमारी सारी प्रवृत्तियों का केन्द्र सत्य होना चाहिए। सत्य हमारे जीवन का प्राण होना चाहिए। धर्म यात्री की प्रगति में जब एक बार यह मंजिल आ जाती है तब सही जीवन के और सब नियम अनायास या जाते हैं और उनका पालन स्वाभाविक बन जाता है। परन्तु सत्य के बिना जीवन में किसी भी सिद्धांत या नियम का पालन असंभव है।

सत्य ईश्वर का सही नाम है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य अपने ज्ञान के अनुसार सत्य का पालन करें तो उसमें कुछ भी बेजा नहीं है बेशक, वैसा करना उसका कर्तव्य है। फिर अगर इस प्रकार सत्य पालन में किसी से कोई भूल हो जाती है तो वह अपने आप ठीक हो जायेगी। क्योंकि सत्य की खोज में तप स्वयं सहने की जरूरत होती है, कभी-कभी उसके पीछे मर मिटना होता है। इसमें स्वाथ के लिए किंचित भी गुंजाइश नहीं हो सकती सत्य की ऐसी निःस्वार्थ खोज में कोई बहुत समय तक पथभ्रष्ट नहीं हो सकता। ज्योंही वह गलत रास्ते पर जाता है, त्योंही टोकर खाकर गिरता है और इस प्रकार फिर सही मार्ग पर लग जाता है।

अहिंसा या प्रेम का जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है। अहिंसा के सिद्धांत का भंग कर हर बुरे विचार से अनुचित जल्दबाजी से झूठ बोलने से, घृणा से और किसी का बुरा चाहने से भी होता है। दुनिया के लिए जो वस्तु जरूरी है उस पर अधिकार जमाने से भी इस सिद्धांत का भंग होता है। अहिंसा के बिना सत्य की खोज असंभव है। अहिंसा और सत्य आपस में इतने ओत-प्रोत है कि उन्हें एक दूसरे से अलग करना लगभग असंभव है वे सिक्के के दो पहलू हैं। अहिंसा साधन है सत्य साध्य है। साधन तभी साधन है जब वह हमारी पहुंच के भीतर हो, और इसलिए अहिंसा हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है।

सत्य और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं सत्य और अहिंसा एक दूसरे का अर्थ स्पष्ट करते हैं। गाँधीजी ने कभी भी अहिंसा के अमूर्त रूप की बात नहीं बल्कि हमेशा उन्होंने इसे मूर्त रूप में प्रस्तुत किया। गाँधीजी ने बाद के वर्षों में इसके अर्थ को कुछ निश्चित तत्वों व घटनाओं से सम्बद्ध व सरलीकृत करने की कोशिश की। लेकिन सत्य के प्रति उनकी जागरूकता ने हमेशा की तरह उन्हें सही रास्ता दिखाया।

गाँधीजी का सम्पूर्ण जीवन समझौतों और समायोजनों का समन्वय था परन्तु गाँधीजी ने अपनी मौलिकता से कभी समझौता नहीं किया। मानवीय अवधारणाएं जो कि मानवीय संवेदनाओं से किसी भी स्तर या कमतर नहीं है, हमेशा से द्वन्द्व के इर्द-गिर्द ही घूमती रही है फिर वह द्वन्द्व अच्छाई बुराई का हो या ठंडे-गर्म का। हिंसा और अहिंसा भी इसका कोई अपवाद नहीं है। शुद्ध हिंसा की ही तरह शुद्ध अहिंसा भी मानवीय अस्तित्ववान हो सकता है। विरोधी की तरह नहीं। जिस स्थायी व निरंतर शांति की तलाश मानव अपने निर्माण काल से ही कर रहा है वह एक दिखावा मात्र है। युद्ध व शांति, द्वन्द्व व मिलन, मानवीय सामाजिक, राजनीतिक व मनोवैज्ञानिक विकास प्रक्रिया के दो अभिन्न अंग हैं। क्रम विकास युद्ध से शांति की ओर गमन है, यह आम अवधारणा है विल्कुल तथ्यों से परे और भ्रामक है। वरन इसके बजाय मानवीय विकासक्रम एक प्रकार के शांति व युद्ध से दूसरे प्रकार की शांति व युद्ध की तलाश है। यह सापेक्ष है न कि सम्पूर्ण विकास क्रम।

गाँधीजी ने सत्य को मूल अर्थ में लिया है। सत्य का आदर्श प्रह्लाद का आदर्श है। सत्य आत्मा है ईश्वर है अतः आचरण ही सत्य है। यही सत्याग्रह है। सत्याग्रह निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं है। उन्होंने इसका

प्रारम्भ 1908 में दक्षिण अफ्रिका में किया था। सत्याग्रह शारीरिक बल नहीं है अपितु आत्मबल है। आत्मा में प्रेम की लौ जलती है। सत्याग्रही कभी भी जिसका विरोध करता है उसका अहित नहीं चाहता। राम सत्याग्रह के प्रतीक है रावण की अनन्त भौतिक शक्ति आत्मबली राम के सामने कुछ भी नहीं है। सत्याग्रह कामधेनु है। सत्याग्रह से सत्याग्रही एवं विरोधी दोनों का लाभ होता है। हरिषचन्द्र, मीराबाई, सुकरात सत्याग्रही थे। सत्याग्रही अपने सत्य पर अड़ जाता है। हार शब्द उसके शब्दकोष में नहीं है। वह किसी अन्य की प्रतीक्षा नहीं करता, वह निर्भय होता है। सत्याग्रह मात्र सरकार के विरुद्ध ही नहीं होता वह किसी भी अत्याचार या अन्याय के विरोध में हो सकता है चाहे वह व्यक्ति द्वारा हो, समाज द्वारा हो या सरकार द्वारा। गाँधीजी लिखते हैं थोरो ने अपने ही समाज का जो दास व्यापार में सलग्न था, विरोध किया, इसी प्रकार मार्टिन लूथर किंग ने अपने ही लोगों के विरुद्ध सत्याग्रह के बल पर जर्मनी को स्वतंत्र किया।

सत्याग्रह का आदर्श 'सत्यमेव जयते' है। ईश्वर की उपस्थिति एवं पथ प्रदर्शन सत्याग्रह की पूर्वमान्यता है। सत्याग्रही को शक्ति अपनी आत्मा से ईश्वर से मिलती है। वह अंतरात्मा की आवाज के अनुसार आचरण करता है। यही सत्याग्रह सर्वदा समष्टि के लाभ के लिए होना चाहिए। सत्याग्रही विजयी होता है किन्तु उसकी विजय उसके विरोधी ही पराजय नहीं होती अपितु उसकी वह अधिक महत्वपूर्ण विजय होती है क्योंकि सत्याग्रह के द्वारा असत्, अमंगल एवं अन्याय दूर होता है। इस प्रकार विरोधी पथभ्रष्ट होने से बचता है। यह विरोधी का परिवर्तन है। यह प्रश्न उठ सकता है कि सत्य क्यों वरेण्य है? क्या सत्याग्रह दुराग्रह नहीं है क्या आज आए दिन सत्याग्रह के नाम पर दुराग्रह का कारण बन जाता है। आदर्श का प्रयोग ज्यों ही अनुचित ढंग से होगा वह आदर्श नहीं रह सकेगा। गाँधी के अनुसार सत्य ईश्वर है। परमतत्व है। साथ ही वह परममूल्य, निःश्रेयस् भी है अतः वही तथ्य को कहना चाहता है। सत्य का शत्रु कोई नहीं होता क्योंकि उसकी आत्मा प्रेम से आप्लावित रहती है। सत्याग्रह की योग्यता पर इस प्रकार सचमुच अत्यन्त कठिन साधना से प्राप्त होती है।

अहिंसा मात्र हिंसा न करने से पूर्ण नहीं होती बल्कि इसके लिए मन, वचन और कर्म को एक जैसा रखना होता है। गाँधी ने सत्याग्रह का आदर्श प्रह्लाद को बताया है। इस संदर्भ में विचारक के अनुसार जैन धर्म में अहिंसा पर गंभीरता पूर्व विचार किया गया है। किन्तु वह निषेधात्मक है। यह ठीक है किन्तु विचार का ध्यान विचार गौतम बुद्ध की अहिंसा के विधायक पक्ष महाकरुणा पर आधारित था। विचारक शायद पांतजल के योगसूत्र के 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्र सन्निद्यौ बैर त्यागः' के भाव को समझ सका। हिन्दू ऋषियों में गाय, हिरण एवं मयूर के साथ-साथ सिंह व्याघ्र एवं सांप भी विचरण करते हैं। हिन्दू ऋषिकुलों में पले सिंह शावकों के साथ खेलने वाले, उनके दाँत गिनने वाले भरत का यह भारत है। विचारक हिन्दू अहिंसा की परम्परा को कादम्बरी के जाबालि आश्रम के वर्णन में देख सकता है जब यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या अहिंसा सही अर्थ में व्यवहार्य है। क्या हम खाते, पीते, चलते, श्वसन करते जाने अनजाने हिंसा नहीं करते? गाँधी ने इसे सविनय स्वीकारा है। हम आत्यान्तिक अर्थ में अहिंसक नहीं हो सकते। वह हमारी असमर्थता है। इस स्थिति में अहिंसा के व्रतों के कार्यों का एकमात्र स्रोत करुणा है। यदि वह भरसक अणुतम जीवों को भी नष्ट होने से बचा सके और इस प्रकार सतत् हिंसा से मुक्त होने का प्रयत्न करता है तो वह अहिंसा व्रती होगा। गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार लिखा है— सत्य का पूर्ण आभास अहिंसा के पूर्ण साक्षात्कार से ही संभव है। गाँधी ने अपनी आत्मकथा का अन्त मनसा, वाचा, एवं कर्मणा अहिंसा के वरदान हेतु ईश्वर से प्रार्थना किया है। इस प्रकार सत्य अहिंसा का व्रती ही सत्याग्रह का अधिकारी है।

16.2.1 गाँधीजी के अहिंसा की अवधारणा—

गाँधीवादी अहिंसा मुख्य रूप से आध्यात्मिक लक्ष्य तथा गौण रूप से राजनीतिक व सामाजिक लक्ष्यों से प्रेरित होने के कारण आधुनिक समाज में अपनी लोकप्रियता व स्वीकार्यता आज भी बरकरार है। एक नेता व विचारक के रूप में गाँधीजी की महानता इस बात में निहित थी कि उन्होंने अहिंसा के व्यक्तिपरक संदेश को जन आन्दोलन के सफल तकनीकी परिवर्तित कर दिया। महावीर, बुद्ध, नागसेन और शांतिदेव ने हिंसा को व्यक्तिगत क्रिया व प्रेरणा से जोड़ा है लेकिन गाँधीजी ने इसे एक सामाजिक व राजनीतिक तकनीकी में तब्दील कर दिया। उनके विचार में राजनीति में सुधार का सर्वोत्तम साधन अहिंसा ही हो सकता है।

हिंसा एक ऐसा व्यापक वर्ग है जिसकी अभिव्यक्ति, व्यक्तिगत व संस्थागत दोनों स्तरों पर होती है। बुरे विचार, बदले की भावना, ईर्ष्या, कटुता, निष्ठुरता तथा यहां तक कि अनावश्यक पदार्थों को अनावश्यक रूप से इकट्ठा करना भी व्यक्तिगत हिंसा की श्रेणी में आता है। अहिंसा दूसरों को कष्ट, हानि या चोट पहुंचाने से बचना मात्र नहीं है वरन यह सकारात्मक आत्म बलिदान व रचनात्मक दुख भोग के प्राचीन सिद्धांतों की भी अभिव्यक्ति करती है। गाँधीजी ने इसे पूर्ण निःस्वार्थ तथा वैश्विक प्रेम के रूप में रूपायित किया। अहिंसा के अंतिम लक्ष्य में तथा दुश्मनों या विरोधियों के प्रेम पूर्वक अंगीकार भी शामिल है। 1930 में गाँधीजी ने कहा —सर्पदंश से पीड़ित दुश्मन की जान बचाने के लिए वह उसके जहर को चूसना सहर्ष स्वीकार करेंगे।' अतः अहिंसा सकारात्मक करुणा व प्रेम का पर्याय है।

गाँधीजी सम्पूर्ण विश्व को परिवार मानते हुए अहिंसा को वैश्विक शांति व एकता को सुनिश्चित करने वाली एक अनिवार्य व अपरिहार्य ताकत मानते थे। गाँधीजी के अनुसार अहिंसा का सामाजिक अनुप्रयोग आध्यात्मिक तत्व में मीमांसा की स्वीकृति तथा सामाजिक सद्भाव के अनवरत उन्नयन पर निर्भर करता है। उन्होंने अहिंसा को वैश्विक दैविक सत्ता में समाहित करते हुए कहा कि जीवन की प्रत्येक अंक पवित्र है। अहिंसा अब अपरिहार्य रूप से सत्य या ईश्वर की एकीकृत हैं। गाँधीजी प्रत्येक मानव को ईश्वर की संतान मानते थे। इसलिए किसी भी जीव को किसी भी रूप में सताने को वह इस व्यक्ति के दैवीय रूप का अपमान मानते थे।

अहिंसा के व्यवहार के लिए सत्य तथा ईश्वर की करुणा में अगाध श्रद्धा का होना नितान्त आवश्यक है। आत्मनिरीक्षण इनका एक प्रमुख तत्व है। अहिंसा के व्रतियों के लिए यह अपेक्षित है कि वह लोभ, दंभ वासना, ईर्ष्या, घृणा तथा कपट से मुक्ति का पूरे मन से प्रयत्न करें। यह निरन्तर गुणात्मक उन्नयन की ओर ले जाने का मार्ग है। प्रत्येक अहिंसक सत्याग्रहियों के लिए अहिंसा के व्रत का अनुपालन जरूरी है ताकि दूसरों के लिए यह प्रेरणा का सबब बन सके। इसलिए अहिंसा मानकों को स्वीकृति का मतलब है मूल्यों का नैतिक मूल्यांतरण। अगर प्रेम के नियम या व्रत का अनुपालन दृढ़ता पूर्वक किया जाए तो यह सम्पूर्ण समाज व सभ्यता को गुणात्मक व चारित्रिक उत्थान की ओर प्रेरित कर सकता है।

अहिंसा के व्रती अपने विरोधियों तक के जीवन को आदर व सरकार की भावना से देखें ऐसी अपेक्षा थी। हरिजन में अपने एक लेख में गाँधीजी ने लिखा— तुम सत्याग्रही नहीं हो यदि तुम अपने विरोधियों को मरते हुए देखकर भी निष्क्रिय बने रहते हो। तुम्हें उसके जीवन की रक्षा हर कीमत पर करनी चाहिए भले ही तुम्हें इसके लिए अपनी जान की बाजी लगानी क्यों पड़े।

बोध प्रश्न—1— रिक्त स्थानों की पूर्ति करो —

सत्य के बिना जीवन में किसी भी सिद्धांत या नियम (1) है। सत्य (2) नाम है। अहिंसा या प्रेम का जीवन में (3)..... है। सत्य और अहिंसा (4) है। अहिंसा के व्यवहार के लिए (5) आवश्यक है। प्रत्येक अहिंसक सत्याग्रहियों के लिए (6) जरूरी है। तुम्हें (7) चाहिए। भले ही क्यों न (8)..... पड़े।

16.3 सत्य व अहिंसा का प्रभाव—

गाँधीजी ने सत्य को मूल अर्थ में लिया। सत्य का आदर्श प्रह्लाद का आदर्श हैं सत्य आत्मा है ईश्वर है अतः अंतरात्मा के अनुसार जो सही हो उसका वाचा, कर्मणा आचरण ही सत्य आचरण है। सत्य का मानव के सम्पूर्ण जीवन में प्रभाव पड़ता है यदि मनुष्य सत्य का अनुकरण करता है तो उसे अपना उद्देश्य पूर्ण करने में सरलता न सहजता प्राप्त होती है। हां सत्य में बाधाएं अनेक हैं लेकिन ये बाधाएं जैसे ही दूर होगी मानव में स्थायित्व का भाव स्वतः ही आ जायेगा।

इसी प्रकार गाँधीजी ने अहिंसा का भी मानवीय जीवन पर गहरा प्रभाव दृष्टिगत किया है। मून के अनुसार मनसा, वाचा एवं कर्मणा किसी का अमंगल न होने देना अहिंसा है। ईट का जवाब पत्थर के स्थान पर 'जो तूको कांटा बुवै ताहि बोई तू फूल' में विश्वास करना अहिंसा है। अहिंसा का कोई शत्रु नहीं होता। अहिंसा ही मनुष्य को जानवरों से पृथक करती है। यदि हम जानवरों जैसा व्यवहार करने लगेंगे तो हमारा अस्तित्व जानवरों जैसा ही माना जाएगा जो मानवीय जीवन पर गंभीर प्रभाव छोड़ता है।

सत्य और अहिंसा के पालन द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य को सामाजिक सहयोग की भावना से दूसरों को बिना कष्ट पहुंचाये पूरा करता है। यदि सत्य और अहिंसा को अपनी दृष्टि से सम्पूर्ण समाज का संचालन करना हो तो शांति, सद्भाव, भाईचारा, विकास, सहयोग, सहिष्णुता तथा सर्वधर्म समभाव की भावना स्वतः व्याप्त हो जायेगी। सत्य और अहिंसा मानव जीवन को खुशहाल करने, प्रगति करने तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। इन दोनों का प्रयोग करने वाला मनुष्य कभी भी अनैतिक, अमानवीय, अराजक, तथा असंतुष्ट नहीं रह सकता है। सत्य और अहिंसा गाँधीजी के द्वारा व्यावहारिक जीवन में लाया गया महत्वपूर्ण परिवर्तन है। इसका अनुकरण सभी मानव जाति को करना चाहिए।

बोध प्रश्न-2— (1) सत्य का आचरण क्या है?

(2) अहिंसा क्या है?

(3) 'जो तूको कांटा बुवै ताहि बोई तू फूल' का अर्थ क्या है?

(4) सत्य और अहिंसा किस प्रकार मानव जीवन पर प्रभाव डालता है?

16.4 सारांश

इस इकाई में हमने मुख्य तौर पर सत्य और अहिंसा का विस्तृत वर्णन किया है तथा मानव जीवन पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है का वर्णन किया है। गाँधी जी की मूल परिकल्पना में अहिंसा का स्थान सर्वोपरि है। अहिंसा का गाँधीजी ने सूक्ष्म विश्लेषण कर उसे व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय प्ररिप्रेक्ष्य में प्रयोग किया गया है।

सत्य और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं। सत्य और अहिंसा एक दूसरे का अर्थ स्पष्ट करता है। गाँधीवादी अहिंसा मुख्य रूप से आध्यात्मिक लक्ष्य तथा गौण रूप से राजनीतिक व सामाजिक लक्ष्यों से प्रेरित होने के कारण आधुनिक समाज में अपनी लोकप्रियता व स्वीकार्यता आज भी बरकरार है।

16.5 शब्दावली

सर्वधर्मसमभाव : सभी धर्मों के साथ समान भाव होना।

चारित्रिक उत्थान : चरित्र का विकास

अहिंसा के व्रती : अहिंसा का पालन करने वाले।

गाँधीवादी अहिंसा : गाँधीजी द्वारा बताया गया अहिंसा का मार्ग।

स्वीकार्यता : मान्यता

अनवरत उन्नयन : लगातार वृद्धि, बिना रुकावट के आगे बढ़ना।

8.6 उपयोगी पुस्तकें

(1) हरिजन – 17.08.1934

(2) एम0के0 गाँधी–एन आटोबायोग्राफी या दि स्टोरी आफ माई एक्सपेरीमेंट्स विथ ट्रुथ।

(3) वी0पी0 वर्मा : दि पोलिटिकल फिलोस्फी आफ महात्मागाँधी एण्ड सर्वोदय।

(4) यंग इण्डिया : 18.12.1924

(5) सर्वोदय – एम0के0 गाँधी

(6) सक्सेना मिश्र शर्मा– समकालीन भारतीय दर्शन

बोध प्रश्नों के उत्तर –

बोध प्रश्न

- (1) का पालन
- (2) ईश्वर का सही
- (3) महत्वपूर्ण योगदान है।
- (4) एक दूसरे के पूरक
- (5) सत्य तथा ईश्वर की करुणा में अगाध श्रद्धा का होना नितान्त
- (6) अहिंसा के व्रत का अनुपालन
- (7) इसके जीवन की रक्षा हर कीमत पर करनी चाहिए।
- (8) जान की बाजी लगानी पड़े।

बोध प्रश्न–

- (1)–मनसा, वाचा एवं कर्मणा आचरण ही सत्य आचरण है। समय का मानव के सम्पूर्ण जीवन में प्रभाव पड़ता है।
- (2) हिंसा न करना ही अहिंसा है। गाँधीजी के अनुसार मनसा, वाचा एवं कर्मणा किसी का अमंगल न होने देना अहिंसा है।
- (3) इसका अर्थ है कि यदि कोई दोस्त या दुश्मन भी तुम्हारी बुराई करे तो उसके बारे में सत्य और सही सोचना चाहिए। बुराई के कारण अपना नैतिक पतन नहीं कर सकते हैं।
- (4) मानव के जीवन में सत्य और अहिंसा दो ऐसे मार्ग हैं जिस पर चलकर ही विकास किया जा सकता है। असत्य और हिंसा के द्वारा न तो किसी का विकास हुआ है और न होगा।

इकाई—17 सत्याग्रह

इकाई की रूपरेखा

- 17.0 उद्देश्य
- 17.1 प्रस्तावना
- 17.2 सत्याग्रह का अर्थ
- 17.3 सत्याग्रह की उत्पत्ति
- 17.4 सत्याग्रही की योग्यता
- 17.5 सत्याग्रह के व्रत
- 17.6 मुख्य व्रत
 - 17.6.1 सत्य
 - 17.6.2 अहिंसा
 - 17.6.3 ब्रह्मचर्य व्रत
 - 17.6.4 जीभ पर संयम
 - 17.6.5 अस्तेय
 - 17.6.6 अपरिग्रह
- 17.7 गौणव्रत
 - 17.7.1 सामाजिक व धार्मिक सममानसिकता
 - 17.7.2 जीविका श्रम
 - 17.7.3 स्वदेशी
 - 17.7.4 निडरता
 - 17.7.5 विनम्रता
- 17.8 सारांश
- 17.9 शब्दावली
- 17.10 उपयोगी पुस्तकें
- 17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको इस योग्य होना चाहिए कि आप –

- सत्याग्रह का अर्थ और उत्पत्ति को जान सकें।
- सत्याग्रही बनने के लिए आवश्यक योग्यताओं की जानकारी हो सके।
- गाँधीजी ने सत्याग्रह के सन्दर्भ में क्या विचार दिए को बता सकें।
- भगवतगीता और सत्याग्रह किस प्रकार मानवीय जीवन से प्रभावित करते हैं बता सकें।
- सत्याग्रही विचारधारा की प्रासंगिकता सबको बता सकें।

17.1 प्रस्तावना

इस इकाई का उद्देश्य सत्याग्रह का अर्थ और उत्पत्ति के बारे में जानकारी प्रदान करना है। सत्याग्रह मौलिक रूप से गाँधीजी से सम्बन्धित नहीं था उनसे पहले भी उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, कुरान जैसे धार्मिक तथा अन्य अनेक पुस्तकों में सत्याग्रह के विचार का व्यापक उल्लेख मिलता है। इसे व्यवहार में उतारने का काम प्रहलाद, राजा हरिश्चन्द्र, सुकरात, प्लेटो, ईसा मसीह, सम्राट अशोक जैसे अनेक भारतीयों और पाश्चात्य चिंतकों ने समय-समय पर किया है। प्रहलाद शायद ऐसा पहला सत्याग्रही व्यक्ति था। जिसने अपने क्रूर पिता के अत्याचारों के खिलाफ सत्याग्रह का अभिनव प्रयोग किया। तब इसे सत्याग्रह के मूल अर्थ में नहीं समझा गया। गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह रूपी सिद्धांत का जन्म इसके नामकरण के पहले ही अस्तित्व में आ गया था। वास्तव में जब इसका जन्म हुआ था तो मैं खुद भी नहीं जानता था कि यह क्या है।

कुछ पाश्चात्य चिंतकों का विचार है कि गाँधीजी ने सत्याग्रह के विचार को, ईसा मसीह के न्यू टेस्टामेंट विशेष कर पर्वत पर के उपदेश से लिया है। कुछ अन्य लोगों का मानना है कि इस विचार को उन्होंने टालस्टाय की रचनाओं से लिया है, जबकि टालस्टाय ने खुद इसे न्यू टेस्टामेंट से लिया था। वास्तव में गाँधी जी के सत्याग्रह के विचार न तो ईसा मसीह और न ही टालस्टाय से प्रेरित है बल्कि उनकी प्रेरणा का मुख्य आधार उनके अपने वैष्णवी मत थे जिन पर उन्हें अटूट विश्वास था। देखा जाय तो सत्याग्रह भारतीय परम्पराओं से ही उपजी प्रतीत होती है।

17.2 सत्याग्रह का अर्थ

सत्याग्रह शब्द मूल रूप से संस्कृत शब्द है। यह दो शब्दों सत्य और आग्रह के मिश्रण से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। दूसरे शब्दों में सत्य पर टिके रहना तथा सत्य की उपलब्धि हेतु दृढ़तापूर्वक लगे रहना, जमें रहना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह को परिभाषित करते हुए गाँधीजी ने लिखा है—

सत्य प्रेम पूर्वक आग्रह की मांग करता है और इस प्रकार यह आग्रह ताकत के एक पर्यायवाची के रूप में बदले जाते हैं। यही कारण है कि मैंने भारतीय आन्दोलन को निष्क्रिय प्रतिरोध के बजाय सत्याग्रह कहना शुरू किया जिसका आशय ऐसी ताकत से है जिसकी बुनियाद सत्य, प्रेम व अहिंसा के मजबूत खंभों पर टिकी है।

गाँधीजी ने इंडियन ओपिनियन में सत्याग्रह को एक पवित्र उद्देश्य हेतु दृढ़ता के रूप में रेखांकित किया है। यंग इंडिया में वे इस बात की ओ संकेत करते हैं कि सत्याग्रह —‘आत्म दुःखभोग के सिद्धान्त’ का एक नवीन रूप भर है और हिंद स्वराज में आत्मबलिदान को अधिक श्रेयस्कर कहते हैं। तथ एक आत्मबलिदानी यानी स्व दुःख भोगी अपनी गलतियों से दूसरों को कष्ट नहीं पहुंचाता है।

सत्याग्रह, जो गाँधीजी का सर्वोच्च आविष्कार, खोज या कृति है जो सत्य के ऐसे अनवरत व अविराम खोज की बात करता है, जहां हिंसा, घृणा, ईर्ष्या, दंभ व द्वेष का कोई स्थान नहीं है। इस अवधारणा का मतलब निष्क्रिया, दुर्बलता, निःसहायता या स्वार्थपरायणता नहीं है। वास्तव में यह मानवीय मस्तिष्क की ऐसी सोच तथा जीवन दर्शन को इंगित करता है जिसकी बुनियाद पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु दृढ़ इच्छा तथा घृणा पर प्रेम के विजय के सिद्धान्त पर टिकी है। असीम श्रद्धा, हृदय परिवर्तन हेतु स्वैच्छिक आत्म दुःखभोग तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अहिंसक तथा न्याय पूर्ण तरीकों को धीरता तथा सक्रियता से इस्तेमाल करना सत्याग्रह के मूल में है।

सत्याग्रह का अर्थ राजनीतिक तथा आर्थिक आधिपत्य के खिलाफ मानवीय आत्मा के शक्ति की दृढ़ता भी है। आधिपत्य हमेशा अपने झूठ व स्वार्थ के लिए सत्य को खारिज करता है। सत्याग्रह मानवीय चेतना की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। यह चेतना मानव के सत्य की प्राप्ति हेतु अहिंसक संघर्ष की ओर जोरदार ढंग से अभिप्रेरित करती है।

सत्याग्रह लक्ष्य को प्राप्त करने का सरल व सहज मार्ग है। इस पर चलकर ही सत्य को प्राप्त किया जा सकता है। सत्याग्रह श्रद्धा, विश्वास, विवेक, प्रेम और विनम्रता की महानतम् अभिव्यक्ति है। यह अपने आप में एक महान विजय है। सत्याग्रह सत्य के अनसंधान तथा उस तक पहुंचने का अनवरत प्रयास है। यह अपना कार्य शांति, स्थिरता लेकिन तीक्ष्णतापूर्वक करता है। वास्तव में संसार में इसके समान लचीला, सौम्य व स्पष्ट कोई भी ताकत नहीं है। यह अन्याय, अनीति, दमन व शोषण के खिलाफ आत्मबल को खड़ा करता है। शाब्दिक रूप से इसका अर्थ होता है ‘सत्य का दबाव’ जो अपनी अभिव्यक्ति आत्मदुःखभोग, श्रद्धा संकल्प, आत्मशुद्धि तथा आत्मविश्वास में साकार करता है।

सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक विकास में सत्याग्रह की महत्वपूर्ण भूमिका है। सत्याग्रह सभी लोगों के लिए उपयोगी नहीं है। इसका प्रयोग वही कर सकता है जिसमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को मानने तथा व्यवहार में लाने की इच्छा शक्ति हो। सत्याग्रह आत्मबल को बढ़ाकर आन्तरिक शक्ति प्रदान करती है तथा स्थायी परिणाम का निर्धारण करती है।

प्रसिद्ध गाँधीवादी आचार्य जे०वी० कृपलानी के शब्दों में सत्याग्रह प्रहार के अलावा भी कुछ और अधिक की मांग करता है। यह कुछ अधिक संघर्षरत लोगों के सतत् नैतिक उत्थान की बात करता है। इसका अर्थ विरोधियों को नैतिक रूप से परास्त करना भी है। एक सत्याग्रही हड़ताली की अपेक्षा कहीं अधिक बेहतर असहयोगी होता है। वास्तविक रूप में सत्याग्रह सत्य के लिए अनवरत कार्याभिमुख खोज तथा असत्य के खिलाफ अहिंसक संघर्ष है।

सत्याग्रह का अर्थ राजनीतिक में सत्य के प्रयोग से है। सत्याग्रह के अन्तर्गत मानव जाति के भाई-चारे पर जोर था। इसके अंतर्गत अस्तित्व के लिए संघर्ष तथा उसमें एक के ही बच पाने जैसे जैविक सिद्धान्तों को तिलांजलि दी गई थी। सत्याग्रह हाब्स द्वारा की गई मानव जीवन की परिभाषा ‘सभी का सभी के विरुद्ध संघर्ष’ को भी नकारता है। इसमें प्रेम, परस्पर सहयोग तथा सहकार को मानव प्रगति का आधार माना गया है। यह वेदान्त के इस सिद्धान्त ‘समग्र जीवन एक है’ का पालन करता है अथवा ईसाईयों की

मान्यता के अनुसार हम एक दूसरे से संबद्ध हैं। मानव जीवन तथा समाज जैविक है। अपने आप को नुकसान पहुँचाए बिना कोई अपने पड़ोसी का बुरा नहीं कर सकता। गाँधीजी कहते हैं “मनुष्य को भगवान की सम्पूर्ण रचना की भलाई के बारे में दिल से सोचना चाहिए तथा उससे प्रार्थना करनी चाहिए कि वह ऐसा करने की योग्यता प्रदान करे।” सभी प्राणियों के कल्याण के बारे में सोचने में ही व्यक्ति का कल्याण निहित है जो सिर्फ अपने अथवा अपने समुदाय के बारे में ही सोचता है वह स्वार्थी है और उसका कभी भला नहीं हो सकता।

बहादुरी, बलिदान, देशभक्ति, अनुशासन आदि जैसी कुछ अच्छाइयां पारम्परिक रूप में युद्ध से संबंध है लेकिन अब यह अप्रासंगिक है क्योंकि उसके लड़ने के लिए अब अत्यन्त विध्वंसक नए हथियार बना लिए गए हैं। युद्ध में सिर्फ भौतिक एवं नैतिक तबाही और बर्बादी होती है। समस्याओं का हल करने के बजाए इससे वह और पेचीदा हो जाती है। ऐतिहासिक रूप में अगर हम युद्ध के कारणों की पड़ताल करें तो पायेंगे कि पिछली लड़ाई से पैदा हुए असंतुलन तथा अन्याय के कारण ही पहला विश्वयुद्ध पहले से मौजूद असंतुलन के कारण हुआ था लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध का कारण दोनों युद्धों के बीच की अवधि में स्थापित थोपी हुई शान्ति थी। अब कोई भी विश्वयुद्ध पिछले युद्ध के बाद स्थापित अन्यायपूर्ण शान्ति के परिणाम स्वरूप होगा।

गाँधीजी ने सत्याग्रह का प्रयोग सर्वप्रथम द0 अफ्रिका में यह किया था। यह द0 अफ्रिका को श्वेतों का उपनिवेश बनाए रखने के समर्थकों के विरुद्ध उन्हें सूझा था। उन्होंने वहाँ पर सत्याग्रह की तकनीकों को आजमाकर उनमें महारथ हासिल की। लेकिन गाँधीजी ने इसको अपने तकनीक के रूप में कभी प्रचारित नहीं किया। ऐसा शायद उनकी विनम्रता अथवा हरेक नए विचार की उत्पत्ति प्राचीन बौद्धिक विरासत से जोड़ने की भारतीय विचारकों की मानसिकता के कारण भी हो सकता है। महान विद्वान तथा देशभक्त तिलक ने उद्गारों पर ध्यान देना चाहिए। तिलक ने भी गीता पर विद्वतापूर्ण भाष्य लिए थे। वह कहते हैं, “कोई भी नियम तोड़ने की सजा हमेंषा निहित है। लेकिन जब कोई नियम स्वयंमेंव अनैतिक हो और सरकारी अधिकारी उसे थोपना चाहता हो सत्य, न्याय एवं धर्म में हमारी आस्था की परीक्षा आवष्यक हो जाती है और उसके लिए अनैतिक कानून की अवज्ञा की जानी चाहिए। लेकिन सत्य एवं न्याय के प्रति आस्था एवं समर्पण इतने उच्चस्तर अथवा भावप्रवण होना चाहिए कि भक्त अथवा आस्थावान के दिमाग में कर्त्तव्यनिष्ठा के अलावा कोई और नैतिक विचार आना ही नहीं चाहिए। किसी भी बाधा के बावजूद अपने कर्त्तव्य पालन पर अडिग रहने की भावना ही सर्वोच्चता होनी चाहिए। यह गुण अध्ययन अथवा विद्वता से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह अध्यात्मिक शक्ति है। यह उपनिषदों की शिक्षा है। यह अध्यात्मिक शक्ति हालांकि अध्ययन अथवा मनन से प्राप्त नहीं की जा सकती है बल्कि कोई प्रतिबद्ध व्यक्ति गीता के अनुसार प्रायश्चित करके इसे अभ्यास द्वारा प्राप्त कर सकता है।

बोध प्रश्न—

(1) सत्याग्रह का क्या अर्थ है?

(2) गाँधीजी ने सत्याग्रह की व्याख्या इंडियन ओपीनियन और यंग इंडिया में किस

प्रकार की।

(3) सत्याग्रह के लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग क्या हैं?

(4) आचार्य जे०बी० कृपलानी ने सत्याग्रह के सन्दर्भ में क्या विचार दिये?

17.3 सत्याग्रह की उत्पत्ति

सत्याग्रह का सिद्धांत कोई नवीन खोज नहीं है। यह उतना ही पुराना है जितना पतंजलि। गाँधीजी ने इसकी उत्पत्ति को शुद्धता के विचार से जोड़ने का जोरदार प्रयास किया। सत्याग्रह को कामधेनु बताते हुए गाँधी जी ने इसे सत्याग्रह और उसके विरोधी दोनों के लिए उपयोगी बताया। सत्याग्रह का सम्बन्ध वैदिक आर्य युग के यज्ञों से भी रहा है। 'मानव व पशु बलि' के मौलिक रूप तथा सत्याग्रह में इसके समकालीन अभिव्यक्ति के बीच (यह उपनिषदों के बौद्धिक शुद्धिकरण तथा जैनों व बौद्धों के मानवतावादी सरोकारों के तीक्ष्ण बदलावों के दौर से यह गुजरा है।)

गाँधी जी ने इस अनुपम हथियार की खोज दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के खिलाफ अपने अहिंसक संघर्ष के दौरान की। 1906 में गाँधीजी के दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों को संगठित किया तथा अन्यायपूर्ण कानूनों व सार्वजनिक व्यवहारों के खिलाफ प्रतिरोध के एक नवीन तरीके को ईजाद किया जिसे गाँधीजी ने 'निष्क्रिय प्रतिरोध' का नाम दिया लेकिन समय बीतने तथा संघर्ष के तीक्ष्ण होने के साथ ही यह नाम संदेह व संशय के घेरे में आ गया तथा इसे कमजोरों के हथियार के रूप में माना जाने लगा। परिणाम स्वरूप एक ऐसे अंग्रेजी शब्द का इस्तेमाल शर्मनाक माना जाने लगा जो कि आसानी से बोधगम्य नहीं हो।

उन्होंने यह महसूस किया कि जिस आन्दोलन को उन्होंने शुरू किया था वह निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न कुछ अधिक गहरे अर्थों वाला था। सो इस नवीन किस्म के प्रतिरोध के पुनर्नामांकन की महती आवश्यकता को महसूस करते हुए गाँधीजी ने अपने साप्ताहिक पत्र इंडियन ओपीनियन में एक नवीन व उपयुक्त शब्द सुझाने हेतु एक छोटे से पुरस्कार की घोषणा की। उनके एक सहयोगी मगन लाल गाँधी ने 'सदाग्रह' शब्द सुझाया जिसका अर्थ होता है पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अनवरत प्रयास। गाँधीजी ने इसे

पसंद किया लेकिन साथ ही यह भी महसूस किया कि यह इनके विचारों को सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं करता है क्योंकि उनकी नजरों में यह एक ऐसा सत्य बल था जिसकी अभिव्यक्ति, सत्य प्रेम व अहिंसा जैसे दिव्य गुणों से परिचालित होता था। इसलिए उन्होंने इसमें थोड़ा सा संशोधन किया और इसे सत्याग्रह नाम दिया जिसका शाब्दिक अर्थ —सत्य के लिए आग्रह’ है। सत्याग्रह की उत्पत्तियों पर जोसेफ जे डाक के साथ विचार-विमर्श करते हुए गाँधीजी ने निम्न विचार व्यक्त किए उन्होंने कहा—

में याद करता हूँ कि कैसे अपने स्कूल में सीखे एक गुजराती कविता की एक पंक्ति ने मुझे बेहद आकर्षित किया था। इसका भावार्थ कुछ इस प्रकार था— यदि कोई व्यक्ति आपकी जिज्ञासा शांत करता है और बदले में यदि आप भी उसकी जिज्ञासा शांत करते हैं तो इसमें उल्लेखनीय कुछ भी नहीं। असली बात तो तब है जब आप किसी की बुराई के बदल भलाई का दान करते हैं। बचपन की इस अवस्था में इस पंक्ति ने मेरे ऊपर जबरदस्त प्रभाव डाला और मैंने इसे अपने व्यवहार में परिणित करने का भरसक प्रयत्न किया।

भगवद्गीता का आप पर पहला प्रभाव पड़ा होगा? के जवाब में कहा नहीं, हां यह जरूर है कि संस्कृत में लिखी भगवद्गीता से मैं पूरी तरह वाकिफ हूँ, लेकिन इसकी शिक्षाओं को इस विशेष कार्य हेतु सन्दर्भ नहीं बनाया। वास्तव में न्यू टेस्टामेंट ने मुझे निष्क्रिय प्रतिरोध की उपयुक्तता तथा मूल्य के सही रूप में समझाया। जब मैंने पर्वत पर के उपदेश की इन लाइनों को पढ़ा कि बुरे आदमी का नहीं वरन बुराई का प्रतिरोध करो। यदि कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारता है तो झट से अपना बायां गाल भी आगे कर दो तथा अपने दुश्मन को भी अपने प्रियजनों की तरह ही प्रेम करो तथा उसकी भलाई के लिए प्रार्थना करो क्योंकि वह स्वर्ग में रहने वाले तुम्हारे पिता के पुत्रों में कोई एक हो सकता है तो मैं आनन्द और हर्ष से अभिभूत हो गया तथा मुझे लगा कि इसने मेरे अपने विचारों को वहां पक्का कर दिया जहां इसकी मुझे सबसे कम आशा थी। भगवद्गीता ने इस सोच को गहराई प्रदान की तथा टाल्सटाय के स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है ने इसे स्थायित्व प्रदान किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्याग्रह की उत्पत्ति सामाजिक शान्ति बढ़ाने तथा नैतिक उत्थान के लिए आवश्यक मानी गयी। सत्याग्रह ने आपसी समझ, शान्ति व सौहार्द बढ़ाने का कार्य किया है इसकी उत्पत्ति जगत में क्रांतिकारी घटना थी।

बोध प्रश्न :

- 1- सत्याग्रह की उत्पत्ति कहां हुई?

- 2- मगन लाल गाँधी ने सत्याग्रह के सन्दर्भ में क्या विचार दिए।

3- गाँधीजी गुजराती कविता से किस प्रकार प्रभावित हुए।

4- बुरे आदमी का नहीं बल्कि बुराई का प्रतिरोध करो से क्या आशय है?

17.4 सत्याग्रह की योग्यता

महात्मा गाँधी ने कहा मैं भारतवर्ष के प्रत्येक सत्याग्रही के लिए इसे अनिवार्य योग्यता मानता हूँ सत्याग्रही की निम्न योग्यताएं हैं।

- 1- ईश्वर के प्रति उसके मन में जीवन्त आस्था होनी चाहिए।
- 2- किसी भी प्रकार के नशा से उसे मुक्त होना चाहिए।
- 3- स्वभाव से वह खादी बुनने वाला तथा कातने वाला हो हिन्दुस्तानी के लिए यह परम आवश्यक है।
- 4- समय-समय पर तय किये जाने वाले सभी अनुशासनात्मक नियमों के प्रति वह वफादार हो।
- 5- सत्य के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा होनी चाहिए। अर्थात् उसे मानवीय प्रकृति में चिन्हित भलमनसाहत के प्रति उसके मन में पूरी श्रद्धा होनी चाहिए। जिसे वह अपने प्रेम व सत्य से सराबोर कर जागृत करने की अपेक्षा रखता है।
- 6- जेल के नियमों को वह तन-मन से तब तक स्वीकार करें तब तक कि वह उसके आत्मसम्मान को विशेष रूप से ठेस पहुंचाने वाला न हो।

इस प्रकार सत्याग्रह का पालन वही कर सकता है जो उपरोक्त नियमों का पालन सहृदयता के साथ कर सके। सत्याग्रह की योग्यता ही उसे सफलता तक ले जाता है।

सत्याग्रह का मर्म यह है कि जिन्हें अत्याचार सहना पड़े सिर्फ वे ही सत्याग्रह करें। ऐसे मामलों की कल्पना की जा सकती है, जिसमें सहानुभूति पूर्ण कहा जा सकने वाला सत्याग्रह करना उचित हो। सत्याग्रही की जड़ में विचार यह है कि अन्यायी का हृदय परिवर्तन किया जाए कि पीड़ित पक्ष के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग के बिना अन्यायी मन चाहा अन्याय नहीं कर सकता। दोनो ही स्थितियों में अगर लोग अपने ध्येय के लिए कष्ट सहने को तैयार न हो तो सत्याग्रह के रूप में किसी बाहरी सहायता से उनकी सच्ची मुक्ति नहीं हो सकती।

सत्याग्रह के आन्दोलन में लड़ाई का तरीका और रणनीति का चुनाव अर्थात् आगे बढ़े या पीछे हटे सविनय कानून भंग करे या रचनात्मक कार्य तथा शुद्ध निःस्वार्थ मानव सेवा के द्वारा अहिंक बल संगठित

करें आदि बातों का निर्णय परिस्थिति की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है। सत्याग्रही के लिए जो भी योजना बना दी जाए उस पर उसे ठंडे निश्चय के साथ अमल करना चाहिए, न उसे उत्तेजित होना चाहिए और न निराश होना चाहिए।

17.5 सत्याग्रह के व्रत :

सत्याग्रह की सफलता तथा सत्याग्रही को विषम परिस्थितियों में कार्य हेतु शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक रूप से तैयार करने के लिए गाँधीजी ने कुछ विशेष व्रत निर्धारित किये हैं जो एकादश व्रत के नाम से प्रसिद्ध है, सत्याग्रहियों को उन विशेष व्रतों को अपने निजी तथा सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह अपनाने की अपेक्षा रची गई। इस व्रतों को मुख्य तथा गौण दो वर्गों में बांटा गया है।

17.6 मुख्य व्रत

17.6.1 सत्य

सभी व्रतों में सत्य का व्रत सबसे पहले आता है, सत्य के व्रत के अनुपालन को सामान्यतः सत्य बोलने मात्र तक सीमित मान लिया जाता है। लेकिन गाँधीजी के अनुसार इसका वास्तविक अर्थ है विचार, तथाकार्य में सात्विकता सत्यता का अनुपालन। इसलिए सत्य के अनुपालन के दौरान, दुराव, छिपाव, चालाकी, धोखेबाजी तथा कपट को पूर्णतः परे रखा जाता है। सत्य का अनुपालन अनवरत प्रयास तथा जीवन के अन्य निहित स्वार्थों के प्रति उदासी के भाव के साथ किया जाना चाहिए।

इसका अर्थ है सतत् तथा पूर्ण अनाशक्ति। गाँधी जी के अनुसार सत्य के दर्शन का अनुभव अनाशक्ति से ही संभव है। क्रोध, लोभ, डर, दंभ आदि ऐसी बुराई है जो साधनों को भटकाने का कार्य करती है।

गाँधीजी ने सत्य को मूल अर्थ में लिया है। सत्य का आदर्श प्रहलाद का आदर्श है, ईश्वर है अतः अन्तरात्मा के अनुसार जो सही हो उसका मनसा, वाचा एवं कर्मणा आचरण ही सत्य आचरण है। यही सत्याग्रह है। सत्याग्रह निष्क्रिय विरोध नहीं है। उन्होंने इसका प्रारम्भ 1908 में दक्षिण अफ्रिका में किया था। सत्याग्रह शारीरिक बल नहीं है अपितु आत्मबल है आत्मा में प्रेम की लौ जलती है। सत्याग्रही कभी भी जिसका विरोध करता है उसका अहित नहीं चाहता, राम सत्याग्रह—आत्मबल के प्रतीक है। रावण की अनन्त भौतिक शक्ति आत्मबली राम के सामने कुछ भी नहीं है। सत्याग्रह कामधेनु है। सत्याग्रह से सत्याग्रही एवं विरोधी दोनों का लाभ होता है। हरिष्वन्द्र, मीराबाई, डेनियल, एवं सुकरात सत्याग्रही थे। सत्याग्रही अपने सत्य पर अड़ जाता है, 'हार' शब्द उसके शब्दकोष में नहीं है। वह किसी अन्य की प्रतिक्रिया नहीं करता, वह निर्भय होता है। सत्याग्रह मात्र सरकार के विरुद्ध ही नहीं होता, वह किसी भी अत्याचार या अन्याय के विरोध में ही सकता है चाहे वह व्यक्तिगत द्वारा ही, समाज द्वारा हो सरकार द्वारा। गाँधी लिखते हैं कि वह व्यक्ति द्वारा हो, समाज द्वारा हो या सरकार द्वारा। गाँधी लिखते हैं कि थोरो ने अपने ही समाज का जो दास व्यापार में संलग्न था, विरोध किया। इसी प्रकार महान लूथर ने ही अपने ही लोगों के विरुद्ध सत्याग्रह के बल पर जर्मनी को स्वतंत्र किया। गैलीलियो सत्याग्रही था। उसने समाज का विरोध कर, मृत्यु को स्वीकारना अच्छा समझा, किन्तु सत्य से प्रतिमुख नहीं हुआ और इस प्रकार खगोल विज्ञान को उसी अक्षुण्ण देन पृथ्वी गोल है जो सूर्य को चारों ओर चक्कर लगाती है सत्याग्रही का प्रतीक है।

17.6.2 अहिंसा

गाँधी जी कहते हैं मेरी राय में अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्गुण नहीं है। वह एक सामाजिक सद्गुण भी है जिसका विकास अन्य सद्गुणों की भांति किया जाना चाहिए। अवश्य ही समाज का नियमन ज्यादातर आपस के व्यवहार में अहिंसा के प्रकट होने से होता है। मेरा अनुरोध इतना ही है कि इसका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर अधिक विस्तार किया जाए।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ हिंसा का परित्याग है। किसी जीवित प्राणी के प्राण नहीं लेने ही काफी नहीं है। इस व्रत के अनुपालक उन लोगों को भी शारीरिक या मानसिक नुकसान पहुंचाते हैं या पहुंचाने की चेष्टा नहीं करते हैं। जो उनके विचार में अन्यायी व अत्याचारी हैं। सो एक अहिंसा व्रती से इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वह अपने धुरविरोधियों पर भी क्रोध न करें वरन् उसे प्रेम करें। अन्याय व अत्याचार का विरोध करना अहिंसा व्रतियों का धर्म है फिर वह अन्याय माता-पिता का हो, सरकार का हो या किसी और का हो लेकिन अन्यायियों या अत्याचारियों को चोट पहुंचाने की किसी की कार्यवाही अहिंसा में पूर्णतः निषेध है अहिंसा व सत्यव्रत के साधक अत्याचारियों पर प्रेम से विजय पाने की कोशिश करते हैं। वे शोषकों की इच्छा को ढोने के बजाय सजा भोगना पसंद करते हैं तथा उनकी अवज्ञा तब तक जारी रहती है जब तक शोषक खुद परास्त नहीं हो जाते।

मात्र हिंसा न करना ही हिंसा नहीं है। इसका गाँधी ने अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी का अमंगल न होने देना अहिंसा है। ईट का जवाब पत्थर के स्थान पर 'जो तू को काँटा बुवे ताहि बोई तू फुल' में विश्वास करना अहिंसा है। अहिंसक का कोई शत्रु नहीं होता। गाँधी के अनुसार अहिंसा की साधना के द्वारा संसार अहिंसा के व्रती के पैरो में नतमस्तक हो जाता है। सचमुच गाँधीजी अहिंसा को सत्य का पर्याय मानते हैं। उन्होंने सत्य एवं अहिंसा की अभिन्नता पर बार-बार बल दिया; वे दोनो इस प्रकार गुथे हैं कि व्यवहारतः दोनों को पृथक कर पाना असंभव है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कौन कह सकता है कि सीधा है और कौन उल्टा? कभी-कभी गाँधी के सत्य एवं साध्य अन्त में एक ही हो जाते हैं किन्तु स्वयं ईश्वर अत्यन्त प्रेम है। गाँधी ने अहिंसा को प्रेम माना है। अहिंसा मात्र निषेधात्मक अमंगलताहीनता ही नहीं है बल्कि प्रेम की विधायक स्थिति है।

17.6.3 ब्रह्मचर्य व्रत

उपर्युक्त दोनों व्रतों का अनुपालन तब तक संभव नहीं है जब तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन नहीं किया जाए। इस व्रत के लिए सिर्फ यही काफी नहीं है कि कोई किसी औरत को कामुक नजरों से नहीं देखे वरन् उसे अननी पाशविक इच्छाओं को इस तरह से काबू में रखना चाहिए कि वह अपने विचार या कल्पना में भी इन इच्छाओं के वसीभूत नहीं हो पाए। यदि व्यक्ति शादी शुदा है तो उसे अपने पत्नी के प्रति विषयासक्त नहीं रहना चाहिए। वरन् इसके बजाय उसे अपनी पत्नी को जीवन पर्यन्त सखा मानना चाहिए तथा उसके साथ पूर्णतः संबंध स्थापित करना चाहिए।

सचमुच कामेच्छा पर अधिकार है। राष्ट्र सेवी अथवा धर्मव्रती के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है, चाहे वह विवाहित हो अथवा अविवाहित। गाँधी के अनुसार विवाह से एक पुरुष एवं एक स्त्री मात्र जीवन साथी बनते हैं— इस जीवन में एवं आने वाले जीवन में भी। विवाह का आदर्श मांसल प्रेम एवं विषय वासन की तृप्ति नहीं है। अपितु धर्म साधन हेतु सन्तानोत्पत्ति। कामेच्छा मात्र पुत्रपैण का साधन है गाँधी हिन्दूशास्त्र की इस उक्तियों में अक्षरशः विश्वास करते हैं गाँधी ने तो यहाँ तक लिख है कि सत्य एवं अहिंसा का व्रत बिना ब्रह्मचर्य के संभव नहीं है।

17.6.4 जीभ पर संयम (अस्वाद)

जीभ पर संयम रखे बिना उपर्युक्त वर्णित व्रतों पर खरा उतरना संभव नहीं है यह व्रत विशेषकर ब्रह्मचर्य को साधने का सबसे पहला मंत्र है। यौन पिपासा भी निश्चित रूप से स्वाद से इस तरह जुड़ी हुई है कि बिना इस पर प्रभावी नियंत्रण के पाशविक इच्छाओं पर नियंत्रण संभव नहीं हैं सो एक ब्रह्मचर्य व्रत के साधक को भोजन इस विचार से करना चाहिए कि वह इसे स्वाद के लिए नहीं वरन शरीर मस्तिष्क व आत्मा को पूर्णतः स्वस्थ रखने के लिए खाता है।

17.6.5 अस्तेय

किसी दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति उसकी अनुमति या जानकारी के बिना लेना या यह सोच रखना कि यह बेनामी सम्पत्ति है, निश्चित रूप से चोरी है। लेकिन गाँधीजी के अनुसार चोरी में बिना वास्तविक जरूरत के दूसरों से कुछ ग्रहण करना या तत्काल जरूरत से कहीं अधिकमात्रा में किसी सामान को प्राप्त करना या फिर तय समय सीमा से अधिक उसका उपभोग करना इच्छाओं में बेलगाम गुणोत्तर वृद्धि तथा भविष्य हेतु संचय की असीमित ख्वाहिश जबकि किसी और को इसकी तत्काल जरूरत है। वे सब शामिल हैं। उनके अनुसार अपनी वैध जरूरत से अधिक सम्पत्ति रखना या उसकी चाह करना चोरी है।

गाँधीजी के अनुसार प्रकृति हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। सिवाय लालच को छोड़कर। इसका तात्पर्य है कि यदि जरूरत भर की चीजों को लिया जाए तो सभी को सब कुछ मिल सकता है समस्या तब होती है जब व्यक्ति लालच के चक्कर में भण्डारण करने लगता है तो इससे दूसरों को वह वस्तु नहीं मिल पाती जिसकी उसे जरूरत है।

17.6.6 अपरिग्रह

सिर्फ यही काफी नहीं है कि संचय अधिक नहीं किया जाए वरन यह भी आवश्यक है कि अपनी शारीरिक जरूरतों के लिए अत्यंत जरूरी सामानों के अलावा कुछ और नहीं रखा जाए। सो यदि कोई कुर्सी के बिना कार्य करता है तो उसे ऐसा अवश्य करना चाहिए। अतः इस व्रत के अनुपालक अपने जीवन को निरंतर सरलीकृत करेंगे।

अपरिग्रह का अस्तेय के साथ चोली दामन का सम्बन्ध है। कोई चीज वास्तव में चुराई न गई हो तो भी अगर आवश्यकता के बिना उसका संग्रह करते हैं तो वह चोरी का माल समझा जाना चाहिए। परिग्रह का अर्थ है भविष्य के लिए संग्रह करना। सत्य शोधक, प्रेम धर्म का पालन करने वाले कल के लिए कोई चीज संग्रह करके नहीं रख सकता। ईश्वर परिग्रह नहीं करता। वह जिस समय कितनी चीज की जरूरत है उससे अधिक कभी उत्पन्न नहीं करता।

17.7 गौण व्रत –

17.7.1 सामाजिक व धार्मिक सम मानसिकता (सर्व धर्म समभाव)

गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रही को सामाजिक, धार्मिक तथा लैंगिक समानता में पूर्ण विश्वास होना चाहिए। उसे जाति, रंग, नस्ल, लिंग, व्यवसाय, धर्म, जन्मस्थान तथा वास-स्थान से इतर सभी लोगों के प्रति सम मानसिकता की भावना का विकास करना चाहिए इसके साथ ही उसे सभी धर्मों के प्रति सम-आधार भाव रखना चाहिए। उसे छुआ-छूत सहित समाज की सभी विद्रूपताओं तथा असंगतियों के

उन्मूलन का प्रयास करना चाहिए। उसे सांप्रदायिकता समरसता कायम करते हुए समाज के दबे कुचले तबकों के निरंतर उत्थान में अपने आपको समर्पित कर देना चाहिए।

17.7.2 जीविका श्रम (ब्रेड लेबर)

जीविका श्रम के व्रत से आशय है कि प्रत्येक व्यक्ति विशेषकर एक सत्याग्रही को अपनी जीविका पोषण अपने हाथों से उपार्जित श्रम से करनी चाहिए। क्योंकि प्रत्येक आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में शारीरिक श्रम की पहली भूमिका होती है। जीविका श्रम उन लोगों के लिए सच्चा आशीर्वाद है जो अहिंसा का पालन करते हैं। सत्य की पूजा करते हैं तथा ब्रह्मचर्य को अपने जीवन का सहज स्वाभाविक धर्म मानते हैं। यह आज्ञा पालन आत्म सम्मान तथा आत्म दृढ़ता, दूसरों के साथ एकत्व की भावना, सहयोग व व्यवस्था, ऊर्जा साहस, समरसता तथा भौतिक मूल्यों पर दृढ़ रहने जैसी आदतों में निर्णायक भूमिका अदा करता है। गाँधीजी ने जीविकोपार्जन हेतु चरखे को एकमात्र वैश्विक साधन बताया लेकिन उन्होंने कृषि को भी हमेशा आदर्श व सम्मान के भाव से देखा। कर्ताई के अतिरिक्त गाँधीजी ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना सफाई कर्मी खुद होना चाहिए।

उन्होंने महसूस किया कि इस समय समाज में निश्चित रूप से कुछ ऐसी जगह मौजूद है जहां सफाई कार्य में संलग्न लोगों को समाज का बहिष्कृत अंग बनने पर मजबूर किया जाता है। सो प्रत्येक को एक सफाई कर्मी के रूप में अपनी रोटी कमाना चाहिए। इस प्रकार यदि सफाई-कर्म को सही रूप में किया जाय तथा इस पर बुद्धिमत्ता पूर्ण विचार किया जाए तो यह मानवीय एकता की वाहक बन सकती है।

17.7.3 स्वदेशी

गाँधी जी का स्वदेशी प्रेम भारत की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधि का मूल था। उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक प्रयास द्वारा अधिकाधिक स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन तथा प्रयोग करने का प्रयास किया। इनका मानना है था इसके द्वारा न केवल लोगों को रोजगार प्राप्त होगा बल्कि सभी सम्पन्न होंगे। उद्योग धन्धे विकसित होंगे तथा स्वावलम्बन को बढ़ावा मिलेगा। स्वदेशी एक विचार है। उनका मानना था कि यदि हम एक एक रूपया बचाते हैं तो भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयास करते हैं। स्वदेशी के द्वारा श्रम को भी सुरक्षित, सुविधापूर्ण तथा लाभकारी बनाने के लिए गाँधी जी स्वदेशी पर सर्वाधिक बल दिये।

स्वदेशी का उपासक अपने निकट के पड़ोसियों की सेवा को प्रथम कर्तव्य मानकर अपने को समर्पित कर देगा इसमें बाकी के लोगों के हितों को छोड़ने या कुर्बान करने की भी नौबत आ सकती है। इन वस्तुओं को उपयोग करना जिसके निर्माता के प्रति यह भाव हो कि वह संभवतः धोखा दे रहा है, सत्य के सरोकारों के विपरीत है। जो सत्य के व्रती मैनचेस्टर, जर्मनी या फिर अपने खुद के देश के मीलों जहां कि कपट विहीनता के बारे में वे सुनिश्चित नहीं हो में वस्तुओं का प्रयोग किसी प्रकार से नहीं करेंगे।

स्वदेशी व्रत का अनुपालन करने के लिए यह जरूरी है कि वह सादे, सरल तथा फैशन विहीन वस्तुओं का उपयोग करें। उसके कपड़े साधारण ढंग से निर्मित व सादे हों तथा उसमें फैशनेबल बटनों, विदेशी कटावों का भी पूर्णतया निषेध हो। स्वदेशी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होगी। स्वदेशी का पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाए तो अच्छा है, परदेशी तो भयानक है ही।

‘स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः’

स्वदेशी का व्रती ऐसी किसी वस्तु का प्रयोग न करे जिसके निर्माण में ऊपर के व्रतों का उल्लंघन होता हो। इस प्रकार स्वदेशी भावना का व्यक्ति मनेचेस्टर जर्मनी अथवा भारत में भी मिल की बनी वस्तुओं का प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि वह निश्चित रूप से नहीं जाना जा सकता कि मिलों में अस्तेय के व्रत का उल्लंघन नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त मिलों में मजदूरों का शोषण तो होता ही है, मिल की मशीनों के निर्माण में उनके जीवन के साथ खेल खेला जाता है। यही नहीं, अत्याधिक गर्मी से अन्य जीवों की भी हत्या होती है। गंभीर चिंतन से मिलों में ऊपर के कई व्रतों का उल्लंघन होता है। अप्राकृतिक ढंग से शरीर को सुन्दर बनाने से ब्रह्मचर्य में भी बाधा होती है। स्वदेशी भावना का विकास कई स्तरों पर हुआ है। आगे चलकर स्वदेशी खादी-हाथ का कटा-बुना कपड़ा हो गया। खादी चरखा है क्योंकि बिना चर्खे क खादी का निर्माण हो नहीं सकता और भी आगे चलकर स्वदेशी स्वराज का पर्यार्य हो गया। स्वदेशी भावना के पीछे 'स्वयमदासाः तपस्विनं' का मूल विचार है।

गांधी जी का स्वदेशी प्रेम भारत की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधि का मूल था। उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक प्रयास द्वारा अधिकाधिक स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन तथा प्रयोग करने का प्रयास किया। इनका मानना था इसके द्वारा न केवल लोगों को रोजगार प्राप्त होगा बल्कि सभी सम्पन्न होंगे उद्योग-धन्धे विकसित होंगे तथा स्वावलंबन को बढ़ावा मिलेगा। स्वदेशी एक विचार है उनका मानना था कि यदि हम एक एक रुपया बचाते हैं तो भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयास करते हैं। स्वदेशी के द्वारा श्रम को भी सुरक्षित, सुविधापूर्ण तथा लाभकारी बनाने के लिए गाँधी जी स्वदेशी पर सर्वाधिक बल दिये।

17.7.4 निडरता

सत्य और अहिंसा या प्रेम सत्याग्रह के प्रमुख अस्त्र हैं तथा इसके लिए अपेक्षित है पूर्ण निडरता या डरपोक यानी डरने वाला सत्य का अन्वेषण नहीं कर सकता है। सो सत्याग्रहियों को राजा, प्रजा, जाति, परिवार, चोर, डकैत, भयानक, जानवरों तथा मृत्यु तक के भय से अपने आप को आजाद करने की जरूरत है। साहसी बनने तथा अपने आप को बलिदान तथा पीड़ा-भोग हेतु तत्पर रहने के लिए भी निडरता एक आवश्यक शर्त है क्योंकि एक अहिंसक संघर्ष कर्ता को उनकी जरूरत हर वक्त होती है। सभी प्रकार से निडर को बिना पूर्णतः त्यागे अहिंसा के व्रत के मूल रूपेण पालन करना संभव नहीं है।

17.7.5 विनम्रता (विनयशीलता)

सत्याग्रह में विनम्रता का महत्वपूर्ण स्थान है। अखण्डता, अहंकारिता, आत्म महत्त्व, क्रोध तथा दंभ-सारे सत्य के साधनों के लिए बुराई के प्रतीक हैं। अनाशक्ति, निस्कपटता तथा मन की प्रशांति, पूर्वाग्रहमुक्त तथा कार्य करने में कर्तापन की भावना का अभाव, सौम्यता, उत्कृष्टता, क्षमाशीलता तथा धरिताएं ये सब सत्य व अहिंसा के साधनों के वास्तविक गुण हैं। इन सब गुणों को मिला दिया जाए तो उसे विनयशीलता कहा जाता है। इसलिए गाँधीजी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं 'सत्यान्वेषण के सहायक तत्व जितने सरल हैं उतने कठिन भी हैं ये किसी अक्खड़ व्यक्ति के लिए बिलकुल असंभव, लेकिन एक निर्दोष बच्चे को बिलकुल संभव जान पड़ सकता है। सत्य के साधकों को धूल से भी अधिक विनम्र होना चाहिए।

बोध प्रश्न -

- 1- सत्याग्रही के मन में क्या होनी चाहिए?

2— हिन्दुस्तानी के लिए परम् आवश्यक क्या है?

3— सत्याग्रही की दो प्रमुख योग्यताएं बताइए।

17.8 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत हमने सत्याग्रह, इसका अर्थ तथा उत्पत्ति के बारे में गहनता से अध्ययन किया। सर्वप्रथम हमने सत्याग्रह की परिभाषा इसका अर्थ के साथ-साथ इमें शामिल तत्वों के बारे में विवेचना किया। सत्याग्रह के अनिवार्य तत्वों में सत्य, अहिंसा, ईश्वर में श्रद्धा, भाई चारा, नैतिक मूल्यों की सर्वाच्चता तथा साधनों की सुचिता।

तत्पश्चात हमने सत्याग्रह की उत्पत्ति तथा उसका गीता से तुलनात्मक अध्ययन किया। सत्याग्रही की आवश्यक योग्यता के बारे में गहनता से विवेचन किया। सत्याग्रह सत्य को सर्वश्रेष्ठ मानकर उस पर चलने की सीख देता है जो समाज के सभी लोगों के लिए लाभदायक है।

17.9 शब्दावली

तत्पश्चात — एक के बाद दूसरे का वर्णन करना।

आत्मविश्वास— आत्मा की बातों पर विश्वास करना।

पाश्चात्यवासियों पर विचार— पश्चिमी देशों के विचार का वर्णन।

अनुपम हथियार— इसके समान कोई दूसरा हथियार नहीं।

बुराई का प्रतिरोध— बुराई को रोकना/विरोध करना।

आधार : बुनियाद, मूल।

कार्यात्मक : सकारात्मक, उपयोगी, समाज के एकीकरण के लिए अनावश्यक।

अनवरत प्रयास : लगातार प्रयास करना।

जीविका पोषण : जीवन जीने के लिए रोटी की आवश्यकता ।

स्वदेशी : अपने देश का, देश में बनने वाला ।

प्रत्यक्ष कार्यवाही : जो आंखों के सामने किया गया कार्य हो ।

17.10 उपयोगी पुस्तकें

- 1- गौरीकांत ठाकुर— महात्मागाँधी फिलासफी आफ सत्याग्रह किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी ।
- 2- महात्मागाँधी — सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, प्रथम संस्करण, एस. गणेशन, मद्रास ।
- 3- जे.बी. कृपलानी— गांधियन टर्निनलाजी
- 4- यंग इण्डिया
- 5- सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय खण्ड —XIII
- 6- हरिजन
- 7- अनिल दत्त मिश्र— गांधी एक अध्ययन
- 8- एम.के. गाँधी— आटोबायोग्राफी

17.11 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न खण्ड-1

- 1- सत्याग्रह शब्द मूल रूप से संस्कृत से बना है। यह दो शब्दों सत्य और आग्रह के मिश्रण से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है सत्य के लिए आग्रह ।
- 2- गाँधी जी ने इंडियन ओपीनियन में सत्याग्रह को एक पवित्र उद्देश्य हेतु दृढ़ता के रूप में रेखांकित किया है। यंग इंडिया में वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि सत्याग्रह —आत्म दुःखभोग के सिद्धांत' का एक नवीन रूप भर है।
- 3- सत्याग्रह लक्ष्य को प्राप्त करने का सरल व सहज मार्ग है इस पर चलकर ही सत्य को प्राप्त किया जा सकता है। सत्याग्रह श्रद्धा, विश्वास, विवेक प्रेम और विनम्रता की महानतम् अभिव्यक्ति है।
- 4- आचार्य जे.बी. कृपलानी के शब्दों में सत्याग्रह प्रहास के अलावा भी कुछ और अधिक की मांग करता है। यह कुछ अधिक सघर्षरत लोगों के सतत नैतिक उत्थान की बात करता है।

बोध प्रश्न खण्ड-2

- 1- सत्याग्रह की खोज गाँधीजी ने अनुपम हथियार के रूप में दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के खिलाफ अपने अहिंसक संघर्ष के दौरान की।
- 2- मगन लाल गाँधी जो गाँधीजी के सहयोगी थे ने सत्याग्रह के स्थान पर सदाग्रह शब्द सुझाया था जिसका अर्थ होता है पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अनवरत प्रयास ।

- 3- गाँधीजी गुजराती कविता से प्रभावित होते हुए कहा—यदि कोई व्यक्ति आपकी पिपाशा शांत करता है और बदले में आप भी उसकी पिपाशा शान्त करते हैं तो इसमें उल्लेखनीय कुछ भी नहीं।
- 4- गाँधी जी का मानना था कि यदि बुराई का प्रतिरोध करो तो बुरे व्यक्ति ही नहीं मिलेंगे इससे बुराई व्याप्त नहीं होगी। इसी प्रकार इनका कहना था कि मरीज को न समाप्त करके मर्ज को समाप्त करना ज्यादा हितकारी है।

बोध प्रश्न खण्ड—3

- 1- सत्याग्रही के मन में ईश्वर के प्रति जीवन्त आस्था होनी चाहिए।
- 2- हिन्दुस्तानी के लिए परम् आवश्यक खादी बुनने वाला तथा कातने वाला होना चाहिए।
- 3- (i) किसी भी प्रकार के नशा से उसे मुक्त होना चाहिए।
(ii) सत्य के प्रति मन में अगाध श्रद्धा होनी चाहिए।

.....0000.....

इकाई—18 सर्वोदय का अर्थ एवं उत्पत्ति

ईकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 अर्थ एवं उत्पत्ति

18.2.1 सर्वोदय के स्रोत

18.2.2 रस्किन की अन टू द लास्ट

18.2.3 भगवद्गीता

18.2.4 ईश्वस्योपनिषद

18.2.5 बुद्धवाद

18.2.6 जैनवाद

18.3 सारांश

18.4 शब्दावली

18.5 उपयोगी पुस्तकें

18.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य –

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि सर्वोदय का अर्थ एवं उत्पत्ति क्या है तथा इसका स्रोत क्या है? समाज के सभी वर्गों का उदय करना सर्वोदय का मूल आधार है। आज सर्वोदय मात्र एक विचार का स्वप्नलोकीन धारणा का प्रतिनिधित्व नहीं करता है बल्कि मानवीय मस्तिष्क को मानवीय समाज की पुनर्संरचना के लिए पुनर्भिमुख करने का प्रयास करता है।

विश्व समय-समय पर विभिन्न सामाजिक-आर्थिक विचार धाराओं पूंजीवादी, समाजवादी और साम्यवादी के प्रचार, प्रयोग और क्रियान्वयन का साक्षी रहा है। लेकिन समस्त दृष्टिकोणों से सर्वोदय निःसन्देह गुणी प्रारूपों से बहुत अधिक श्रेष्ठ है। यह हमारे सामने एक राष्ट्र के संतुलित और एकीकृत विकास के सामने रखता है जिसमें धनी और निर्धन, विशेषाधिकार सम्पन्न और विशेषाधिकारहीन शासक और शासितों के बीच कोई अंतर नहीं होता। सर्वोदय में हठधर्मिता का कोई स्थान नहीं होता है।

18.1 प्रस्तावना

इस इकाई का उद्देश्य सर्वोदय के अर्थ, उत्पत्ति तथा स्रोत के बारे में विस्तृत चर्चा करना है। इसके विभिन्न पक्षों का अवलोकन कर हम इससे प्राप्त होने वाले लाभों का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। लियो टालस्टाय, थोरो, भगवद्गीता, जैनवाद तथा बुद्धवाद में सर्वोदय का हम स्पष्ट व्याख्या देखते हैं। इन सबक मूल एक है बस कहने का तरीका अलग-अलग है। सभी इस बात पर बल देते हैं कि समाज के सभी वर्गों का सभी प्रकार से उदय हो इसमें किसी को भी कोई भेदभाव नहीं करना चाहिए।

18.2 अर्थ एवं उत्पत्ति

सर्वोदय की उत्पत्ति संस्कृत से हुई जो 'सर्व' और 'उदय' से मिलकर बना है। सर्वोदय का उत्पत्ति मूलक अर्थ सभी का विकास है। इसमें सभी जीवित प्राणी शामिल हैं। अन्य शब्दों में सर्वोदय का अर्थ सभी का जनकल्याण है। यह शब्द पहली बार गुजराती में अनुवाद के लिए शीर्षक के रूप में जान रस्किन की पुस्तक अन टू द लास्ट में प्रकट हुआ। सर्वोदय नौ आलेखों की श्रृंखला का शीर्षक था जिसे गाँधीजी ने लिखा और जिस 1908 में दक्षिण अफ्रीका की साप्ताहिक इंडियन ओपीनियन में गुजराती में प्रकाशित किया।

यह बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक सभी को शामिल करता है। उपभोक्तावाद के विपरीत मत—एक और सभी की भलाई, ऊपर और नीचे, मजबूत एवं कमजोर तथा बुद्धिमान एवं मूर्ख सभी के लिए लागू होता है। अहस्तक्षेप नीति के विपरीत, जो सर्वोत्तम ही जीवित रहता है। सर्वोदय सभी के अस्तित्व और विकास में विश्वास करता है। बिनोवा भावे के लिए 'सर्वोदय का विचार' गीता ने उपदेश के अनुसार एक व्यक्ति को सभी की भलाई के लिए स्वयं में समाविष्ट होना।

सब के जनकल्याण के संकेत के अतिरिक्त सर्वोदय दो और अर्थों को बताता है पहला— वैश्विक जनकल्याण और दूसरा सभी का एकीकृत विकास। अस्तक्षेप का दर्शन कुछ के द्वारा बहुतों के शोषण पर आधारित है। उपयोगितावादी विचारधारा अल्पसंख्यक की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए बहुसंख्यक समर्थन करता है। सर्वोदय इन सिद्धांतों को अस्वीकार करता है जा कुछ के आनन्द के लिए है और वर्ग, वंश, रंग, प्रजाति क्षेत्र और धर्म से परे सभी के जन कल्याण की वकालत करता है। सर्वोदय का दर्शन मानवीय समाज की पुनर्संरचना का प्रयास करता है, या मानवीय मस्तिष्क को पुनराभिमुख करता है। इसका अर्थ जनकल्याण एवं सौभाग्य सबके लिए है। सभी हितों की टकराहट के बिना एक साथ विकास करें।

सर्वोदय के अर्थ की व्याख्या करते हुए दादा धर्माधिकारी ने कहा कि सर्वोदय एक बृहद संकेत वाला शब्द है और यह न केवल बहुतों या अधिकांश बल्कि सबों को आत्मसात करता है।

सर्वोदय एक दर्शन है जो मानवीय मस्तिष्क और आत्मा की अपूर्णता के विरुद्ध रोक लगाता है जो मानवीय मस्तिष्क और आत्मा की अपूर्णता के विरुद्ध रोक लगाता है। सर्वोदय शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में बृहद तौर पर दृष्टिकोण है— पहला यह सूक्ष्म रूप है, जिसका सामान्य अर्थ है एक और सब का उदय, दूसरा इसका बृहद रूप सभी के उदय का संकेत देता है। वैश्विक जन कल्याण सब के सर्वांगीण विकास का संकेत देता है। लेकिन यह कई अन्य अर्थों का भी संकेत देता है। इसके नकारात्मक अर्थ में, यह कभी भी किसी एक व्यक्ति को शेष मानव जाति से अलग आनन्द के लिए नहीं छोड़ता है। एक सकारात्मक अर्थ यह व्यक्ति के विकास के सभी संकल्पों को प्रोन्नत करता है। बिनोवा भावे के अनुसार इसका अर्थ सब पीड़ाओं को दूर, सभी को प्रसन्न करना ही नहीं है बल्कि समानता पर आधारित एक विश्व स्थिति को लाना है। गाँधीजी के लिए सर्वोदय एक बृहद अर्थों में स्व-त्याग एवं स्वार्थहीन सेवा सहित एक का सभी से

समाविष्ट होना है। इसका उद्देश्य न केवल न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति है बल्कि सभी व्यक्तियों के नैतिक आध्यात्मिक आशय का विकास करना है।

आज के युग की जो अकांक्षा है उससे सर्वोदय के लिए अनुकूल वातावरण पैदा हुआ है। उस अकांक्षा की पूर्ति के लिए सर्वोदय के सिद्धान्त और नीति के सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं है। सर्वोदय का दर्शन समग्र जीवन के लिए होना चाहिए, निरपेक्ष होना चाहिए और सार्वभौम होना चाहिए। उसमें देश-काल की मर्यादाएं न होनी चाहिए। लोग कालानुक्रम में और इतिहास के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। यहाँ कालक्रम और इतिहास की बात नहीं कही जा रही है। कालातीत सिद्धान्त के माने यह है कि सिद्धान्त के विनियोग बदलते रहेगे; उसे लागू करने की पद्धति में 'परिवर्तन' होता रहेगा लेकिन सिद्धान्त नहीं बदलेगा। बात यह है कि अहिंसा का पुजारी उपयोगितावाद का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो सर्वभूतहितवाद यानी सबके अधिकतम लाभ के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में मर जायेगा। इस प्रकार वह इसलिए मरना चाहेगा कि दूसरे जी सके। दूसरों के साथ-साथ वह अपनी सेवा भी आप मर कर करेगा। सबके अधिकतम सुख के भीतर अधिकांश का अधिकतम सुख भी मिला हुआ है और इसलिए अहिंसावादी और उपयोगितावादी अपने रास्ते पर कई बार मिलेंगे। किन्तु अंत में ऐसा भी अवसर आयेगा जब उन्हें अलग-अलग रास्ते पकड़ने होंगे और किसी-किसी दषा में एक दूसरे का विरोध भी करना होगा। तर्कसंगत बने रहने के लिए उपयोगितावादी अपने को कभी बलि नहीं कर सकता।

अहिंसावादी हमेशा मिट जाने को तैयार रहेगा। यदि हम चाहते हैं कि हमारा सर्वोदय अर्थात् सच्चे लोकतंत्र का सपना सच्चा साबित हो तो हम छोटे से छोटे भारतवासी को भारत का उतना ही शासक समझेंगे जितना देश के बड़े से बड़े आदमी को। इसके लिए शर्त यह है कि सब शुद्ध हो, या न हुए हो तो शुद्ध हो जाएं। और शुद्धता के साथ-साथ बुद्धिमानी भी होनी चाहिए। तब कोई भी अपने दिल में जाति-अजाति और सवर्ण-अवर्ण के बीच भेदभाव नहीं रखेगा। हर एक सबको अपनी बराबरी का समझेगा और उन्हें प्रेम के रेषमी जाल में बांध रखेगा। कोई किसी हो अछूत नहीं मानेगा। हम मेंहनत करने वाले मजदूर और घनी पूँजीपति को समान समझेंगे। सबको अपने पसीने की कमाई से ईमानदारी की रोजी कमाना आता होगा और वे मानसिक और शारीरिक श्रम में कोई फर्क नहीं करेंगे। यह आदर्श स्थिति जल्दी लाने के लिए हम अपने आपको स्वेच्छा से भंगी बना लेंगे। जिस किसी में भी बुद्धि होगी वह कभी अफीम, शराब या किसी नषीली चीज को नहीं छुएगा। प्रत्येक पुरुष स्वदेशी का पालन जीवन व्रत के रूप में करेगा और हर एक स्त्री को जो अपनी पत्नी नहीं है उसकी उम्र के हिसाब से अपनी माता, बहन या पुत्री समझेगा और अपने हृदय में उसके प्रति कभी काम वासना नहीं रखेगा। जब जरूरत पड़ेगी वह अपने प्राण देने को तैयार होगा मगर दूसरे की जान लेने की कभी इच्छा नहीं करेगा। ध्येय की सबसे स्पष्ट व्याख्या और कद्रदानी से भी हम उस ध्येय नहीं पहुँच सकेंगे अगर हमें उसे प्राप्त करने के साधन मालूम नहीं होंगे और हम उनका उपयोग नहीं करेंगे। इसलिए मुझे तो मुख्य चिन्ता साधनों की रक्षा और उनके अधिकाधिक उपयोग की है। गाँधी जी का मानना था कि अगर हम साधनों की चिन्ता रख सकें तो ध्येय की प्राप्ति निश्चित है। मैं भी अनुभव करता हूँ कि ध्येय की ओर हमारी प्रगति ठीक उतनी ही होगी जितने हमारे साधन शुद्ध होंगे। दादा धर्माधिकारी तथा विनोबा भावे ने सर्वोदय के सन्दर्भ में अपने मत दिये हैं जो सर्वोदय को उच्च स्थान प्राप्त कराते हैं।

मित्रों का सम्मान करते हुए विनोबा भावे ने सर्वोदय को स्पष्ट करते हुए कहा कि भारत के गाँवों को स्वावलम्बी बन जाना चाहिए और उन्हें जहाँ तक संभव हो कीमतों के उतार-चढ़ाव से बचा लेना चाहिए। जरूरी कच्चा माल गाँव में ही पैदा होता हो तो उन्हें अपने ही गाँव में अपनी जरूरत का पक्का

माल तैयार कर लेना चाहिए। यंत्रों पर सारे समाज का अधिकार होना चाहिए। उत्पादन और अंतिम वितरण के बीच में कोई दलाल नहीं होने चाहिए। अहिंसा के आधार पर खड़ा समाज बीच के दलालों के मारफत काम नहीं कर सकता। सबको खाना मिलना चाहिए और सबको काम करना चाहिए। राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था की योजना सम्मिलित परिवार के ढंग पर होनी चाहिए। अगर चरखे से सबको काम मिल सके तो उसे काम में लेना चाहिए। अगर आप सारे राष्ट्र के लिए योजना नहीं बना सकते और आपको भेदभाव करना ही पड़े तो उस सूरत में मैं अपने को साम्यवादी मानकर कहता हूँ कि अपनी योजना बनाने में आपको गरीबों के पक्ष में भेदभाव करना चाहिए संक्षेप में सर्वोदय की मेरी रूपरेखा यही है।

18.2.1 सर्वोदय के स्रोत

सर्वोदय का सिद्धांत किसी एक ग्रंथ से नहीं लिया गया है बल्कि यह कई ग्रंथों का समन्वय है। विभिन्न स्रोतों ने गाँधीजी को उनके सर्वोदय के आशय को विकसित करने में सहयोग किया। ये थे—रस्किन की पुस्तक—अन टू द लास्ट, टालस्टाय की—द किंगडम ओर गाड विद इन यू, थोरो की सविनय अवज्ञा, भगवद्गीता, ईशावाशयोपनिषद, बुद्ध, जैन और इस्लाम इत्यादि।

18.2.2 रस्किन की अन टू दिस लास्ट —

गाँधीवादी दर्शन का सर्वोदय की खोज भारतीय अध्यात्म और धार्मिक विरासत की शिक्षाओं में की जा सकती है। यद्यपि गाँधी जी इस तथ्य को स्वीकारते हैं कि उन्हें तात्कालिक प्रेरणा रस्किन की अन टू दिस लास्ट से मिली, जिसमें सर्वोदय का अर्थ चित्रित था। सर्वजन कल्याण गाँधीजी के दर्शन का मूलाधार उसी दिन से बन गया जब उन्होंने गुजराती में छपे सर्वाधिक प्रसिद्ध 30 हजार शब्दों वाली पुस्तक हिंद स्वराज या इण्डियन होमरूल 1909 में लिखी।

गाँधीजी के अनुसार अन टू दिस लास्ट की मुख्य शिक्षाएं हैं —

- (1) व्यक्ति की भलाई में सब की भलाई निहित है।
- (2) एक वकील के कार्य का मूल्य एक नाई के कार्य के बराबर है। इसी प्रकार सब को अपने कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन का अधिकार है।
- (3) एक श्रमिक का जीवन जैसे खेत जोतने वाला और दस्तकारों का जीवन अन्य लोगों के जीवन की तरह ही है।

गाँधीजी ने स्वयं मत व्यक्त किया कि उन्होंने इसे बाद में सर्वोदय शीर्षक से गुजराती में अनुवाद किया। गाँधीजी और रस्किन दोनों ही गंभीरतापूर्वक सामाजिक जन कल्याण से संबंधित थे।

18.2.3 भगवद्गीता —

गाँधीजी ने अपनी प्राथमिक शक्ति और प्रेरणा भगवद्गीता से ही ग्रहण की। गाँधीजी के लिए गीता 'शाश्वत मां' है। उनके अनुसार गीता का सार आत्मानुभूति है। वह कहते हैं कि आत्मानुभूति और इसका अर्थ गीता की विषय वस्तु है। आगे वह कहते हैं जो गीता की भावना को जो पढ़ता है वह अहिंसा के रहस्य, व स्वयं को अनुभव करने का रहस्य—भौतिक शरीर के द्वारा करने की शिक्षा देती है।

गीता का मुख्य उद्देश्य धर्म की स्थापना करना है। यह सभी के लिए शांति और सौभाग्य लाना चाहता है यह संक्षिप्त रूप में हिन्दू विचारधारा को प्रस्तुत करता है जो बदले में, सभी प्राणियों के लिए भाई चारे की बात करता है। जैसे कि ईश्वर और इसकी सभी रचनाएं एक हैं यह सभी स्वार्थहीन सेवाओं का,

सभी जीवों के जन कल्याण को बढ़ावा देने की महत्ता को रेखांकित करता है। सर्वधर्म के द्वारा गीता का लक्ष्य –सर्वभूतहित' या सभी प्राणियों की भलाई भी है। इस प्रकार गीता सर्वजन कल्याण या सर्वोदय का उपदेश देती है जिससे गाँधीजी के विचार और क्रिया को प्रभावित किया।

18.2.4 ईशावास्योपनिषद –

ईशावास्योपनिषद का पहला श्लोक सर्वोदय की विचारधार से संबंधित है। छंद का पहला हिस्सा समानता और भ्रातृत्व को समाविष्ट करते हैं और दूसरा हिस्सा समाज के लिए त्याग, अ-ग्रहणशीलता, अशोषण के विचार पर आधारित है। गाँधीजी के अनुसार ईश्वर पूरे विश्व में व्याप्त हैं। यह श्लोक समानता और भ्रातृत्व का उपदेश देता है जो सर्वजन कल्याण के मौलिक, सिद्धांत है। वे जोर देते हैं कि –विश्व बंधुत्व केवल मानवीय प्राणियों का भ्रातृत्व नहीं है बल्कि यह सभी जीवित प्राणियों का है। मैं इस मंत्र को प्राप्त करता हूँ।

18.2.5 बुद्धवाद

महात्मा बुद्ध के अनुसार सभी के जीवन से दुःखों को समाप्त करना होगा ताकि निर्वाण के परमानंद की प्राप्ति हो सके। यह उनके जीवन में यहां और वहां अनुभव किया जा सकता है। यह सभी प्राणियों के पूर्ण और निश्चित ज्ञान के लिए जाना जाता है। गाँधीजी बुद्ध के दर्शन से अत्यधिक प्रभावित और गहराई से प्रभावित हुए थे। जिसने विश्व प्रेम, जीवित प्राणियों के प्रति अहिंसा, त्याग और सन्यास को सभी के लिए जनकल्याण को बढ़ावा देने के लिए उपदेश दिया। बुद्ध ने पवित्रता पर जोर दिया। इस विचार ने गाँधीजी को प्रभावित किया, उन्होंने स्थिर भाव से कहा कि साधन और साध्य में गहरा सम्बन्ध होता है। बुद्ध ने मध्यम मार्ग का सन्देश दिया, इसी प्रकार सर्वोदय में, यह माना गया कि कोई भी चरम कदम नहीं उठा सकता है।

18.2.6 जैनवाद

जनकल्याण जैन धर्म का आदर्श है। पांच महाव्रतों में एक का निर्माण अहिंसा करता है। अहिंसा का सकारात्मक पक्ष सभी प्राणियों के लिए प्रेम है, न केवल मनुष्य बल्कि सभी के लिए। एक जैन तीर्थंकर का यह कर्तव्य है कि वह अपना सम्पूर्ण जीवन पूरे ब्रह्माण्ड के जीवों की प्रसन्नता के लिए समर्पित कर दे।

संक्षेप में महात्मा गाँधी ने सर्वोदय को लेकर व्यापक रूप में अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है उनके अनुसार यही हम चाहते हैं कि हमारा सर्वोदय अर्थात् सच्चे लोकतंत्र का सपना सच्चा साबित हो तो हम छोटे से छोटे भारतवासी को भारत का उतना ही शासक समझेंगे जितना देश के बड़े से बड़े आदमी को। इसके लिए शर्त यह है कि सब शुद्ध हों या न हुए हो तो शुद्ध हो जाए और शुद्धता के साथ-साथ बुद्धिमानी भी होनी चाहिए। तब कोई भी अपने दिल में जाति-पांति और सवर्ण-अवर्ण के बीच भेदभाव नहीं रखेगा। हर एक सबको अपनी बराबरी का समझेगा और उन्हें प्रेम के रेशमी जाल में बांध रखेगा। कोई किसी को अछूत नहीं मानेगा।

हम मेहनत करने वाले मजदूर और धनी पूंजीपति को समान समझेंगे। सबको अपने पसीने की कमाई से ईमानदारी की रोजी कमाना आता होगा और वे मानसिक और शारीरिक श्रम में कोई फर्क नहीं करेंगे। यह आदर्श स्थिति जल्दी लाने के लिए हम अपने आप को स्वेच्छा से भंगी बना लेंगे। जिस किसी में भी बुद्धि होगी वह कभी अफीम, शराब या किसी नशीली चीज को नहीं छुएगा। प्रत्येक पुरुष स्वदेशी का पालन जीवन व्रत के रूप में करेगा और हर एक स्त्री को जो अपनी पत्नी नहीं है उसकी उम्र के हिसाब से

अपनी माता, बहन या पुत्री समझेगा और अपने हृदय में उसके प्रति कभी काम वासना नहीं रखेगा। जब जरूरत पड़ेगी वह अपने प्राण देने को तैयार रहेगा मगर दूसरे की जान लेने की कभी इच्छा नहीं करेगा, यही सर्वोदय का सर्वोच्च आदर्श जो व्यक्ति के जीवन को सुखमय बनाता है।

बोध प्रश्न –1

(1) सर्वोदय शब्द का अर्थ बताइए?

(2) विनोबा भावे के अनुसार सर्वोदय की व्याख्या करिए।

(3) दादा धर्माधिकारी के अनुसार सर्वोदय की व्याख्या करिए।

(4) सर्वोदय के स्रोत कौन-कौन से हैं?

(5) अन दू दिस लास्ट से गाँधी जी किस प्रकार प्रभावित हुए।

18.3 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत हमने सर्वोदय का अर्थ, उसकी उत्पत्ति तथा विभिन्न ग्रन्थों व विद्वानों द्वारा सर्वोदय के सन्दर्भ में दिये गये विचारों का अध्ययन किया है। सर्वप्रथम हमने सर्वोदय के उसकी उत्पत्ति का वर्णन किया तत्पश्चात्, दादा धर्माधिकारी, विनोवा भावे, गीता, जैन व बौद्ध धर्म, अन टू द लास्ट, इत्यादि के विचारों का विस्तृत अध्ययन किया है।

सर्वोदय भारत के प्राचीन आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की नींव पर आधारित एक नया समाज बनाना चाहता है और समकालीन समस्याओं की चुनौतियों को पूरा करने का प्रयास करता है। सर्वोदय सामाजिक और राजनीतिक अभिमुखीकरण के मुक्तिदाता का दर्शन है जहां पीड़ा है सर्वोदय उसका दमन करता है। यह मानवीय भावनात्मक एकीकरण और सर्वोच्च बौद्धिक आकांक्षा का चरमोत्कर्ष है।

18.4 शब्दावली –

- (1) उद्धरण – ऊपर उठाना, उद्धार करना। लेख या ग्रंथ से गृहीत अंश।
- (2) चकराना– चकित होना।
- (3) जनाधिकार – जनता को कानून द्वारा प्राप्त अधिकार
- (4) अल्प संख्यक– समाज में जिसकी भागीदारी संख्या में कम हो।
- (5) जन कल्याण– सभी लोगों का हित/कल्याण।

18.5 उपयोगी पुस्तकें –

- (1) विनोवा भावे– स्वराज शास्त्र, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मंडल
- (2) अनिल दत्त मिश्र– गाँधी एक अध्ययन
- (3) यंग इंडिया – एम0के0 गाँधी
- (4) हरिजन– एम0के0 गाँधी
- (5) के0एम0 रघुनाथ चेट्टी– सर्वोदय एण्ड फ्रीडम ए गांधियन एप्रेजल डिस्कवरी पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली।
- (6) बी0पी0 पाण्डेय– गाँधी सर्वोदय एण्ड आर्गेनाइजेशन, चुग पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
- (7) जे0एन0 मोहंती– सर्वोदय एण्ड अरविंदो – ए एप्रोचमेंट, गाँधी मार्ग खण्ड-4

18.6 बोध प्रश्नों के उत्तर–

- (1) सर्वोदय शब्द की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है जो सर्व यानी सभी और उदय यानी उत्थान से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है सभी का उत्थान, सभी का कल्याण।
- (2) आचार्य विनोवा भावे के अनुसार सर्वोदय शब्द दो स्तरीय अर्थ पर नियंत्रण रखता है, पहला सर्वोदय का अर्थ वैज्ञानिक ज्ञान से पीड़ा और गरीबी दूर कर सभी को प्रसन्न करना है। दूसरा देवत्व, दया और समानता से पूर्ण विश्व राज्य की स्थापना सर्वोदय कहलाता है।
- (3) सर्वोदय की व्याख्या करते हुए दादा धर्माधिकारी ने कहा कि सर्वोदय एक वृहत संकेत वाला शब्द है और यह न केवल बहुतां या अधिकांशों का बल्कि सबों को आत्मसात करता है।

(4) सर्वोदय का स्रोत एक ग्रंथ नहीं है न तो एक विद्वान बल्कि इसमें कई ग्रन्थों का समन्वय है। विभिन्न स्रोतों ने गाँधी जी को उनके सर्वोदय से आशय को विकसित करने में सहयोग किया यह हैं— रस्किन की पुस्तक अन टू दिस लास्ट, टालस्टाय की – द किंगडम आफ गाड विद इन यू थोरो की सविनय अवज्ञा, भगवद्गीता, ईशावास्योपनिषद, बुद्ध, जैन व इस्लाम हैं।

(5) अन टू दिस लास्ट की मुख्य शिक्षाएं जैसे व्यक्ति की भलाई में सब की भलाई निहित है, एक वकील और नाई का कार्य बराबर है तथा श्रमिक का जीवन अन्य जीवों की तरह है। यही सब सिद्धांत से गाँधी जी प्रभावित हुए थे।

.....000.....